इतिहास एवं पुरातत्त्व को जनपद जालौन की देन

बुन्देलखंड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)
में इतिहास विषयान्तर्गत पी-एच.डी.
की उपाधि के लिए प्रस्तुत
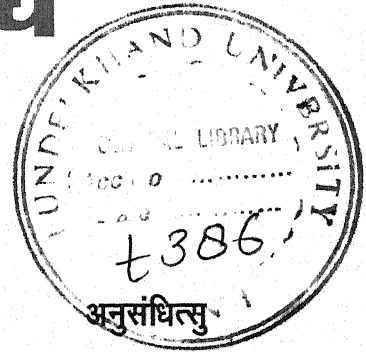
शोध प्रबन्ध

2002

BUNDELKHAND UNIVERSITY
CENTRAL LIBRARY
Acc. No. ....
t386

शोध पर्यवेक्षक
डॉ. श्री मोहनलाल श्रीवास्तव
एम.ए., डी. फिल.
रीडर एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
उरई (उ.प्र.)

अनुसंधित्सु
कु. अपर्णा खरे
एम.ए. (प्रा.भार.इति. संस्कृति एवं पुरातत्त्व हिन्दी)
आत्मजा- डॉ. रामस्वरूप खरे
5, प्राध्यापक निवास, राठ रोड
उरई (उ.प्र.

शोध केन्द्र
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई

इतिहास एवं पुरातत्त्व को जनपद जालौन की देन

(सन् 1800 ई. तक)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)
में इतिहास विषयान्तर्गत पी-एच.डी. की उपाधि
के लिए प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

2002

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. श्रीमोहन लाल श्रीवास्तव
एम.ए., डी.फिल.
रीडर एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
उरई (उ.प्र.)

अनुसंधित्सु

कु. अपर्णा खरे
एम.ए. (प्रा.भार.इति.,संस्कृति एवं पुरातत्त्व, हिन्दी)
आत्मजा - डॉ. रामस्वरूप खरे
5, प्राध्यापक निवास,
राठ रोड , उरई (उ.प्र.)

शोध निर्देशक का प्रमाण पत्र

मुझे यह प्रमाणित करते हुए अत्यधिक हर्ष का आनन्दानुभव हो रहा है कि **कु. अपर्णा खरे** आत्मजा **डॉ. रामस्वरूप खरे**, पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं प्राचार्य डी.वी.पी.जी. कॉलेज, उरई ने मेरे निर्देशन में इतिहास विषयान्तर्गत 'इतिहास एवं पुरातत्त्व को जनपद जालौन की देन' शीर्षक से शोधकार्य भलीभाँति सम्पन्न किया है।

प्रस्तुत विषय पूर्णरूपेण मौलिक एवं अत्यन्त श्रमसाध्य था किन्तु शोधार्थिनी ने जनपद जालौन के ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक स्थलों पर जा-जाकर जो दुर्लभ सामग्री प्राप्त की वह उसकी सफल शोधवृत्ति का परिचायक है। इसमें उसने अशेष धैर्य, दृढ़ लगन, स्वाध्याय, कठिन परिश्रम एवं संचायिका प्रवृत्ति का सहज परिचय दिया है जो प्रंशस्य है।

मेरी दृष्टि में यह सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध नितान्त मौलिक और अनेक अनुद्घाटित तथ्यों को सुस्पष्ट करने वाला मील का पत्थर सिद्ध होगा।

शोधार्थिनी ने विश्वविद्यालयीन परिनियमावली के अनुसार दो सौ दिन की उपस्थिति पूर्ण करके इस शोध प्रबन्ध को सम्पन्न किया है।

अतएव मैं इस शोध प्रबन्ध को सुयोग्य परीक्षकों के निरीक्षणार्थ प्रस्तुत करने की अनुशंसा करता हूँ।

मेरी कामना है कि शोधार्थिनी का भावी जीवन सफल एवं मंगलमय हो।

दिनाँक :

हस्ताक्षर

S.M. Srivastava

(डॉ. श्री मोहन लाल श्रीवास्तव)

रीडर एवं इतिहास विभागाध्यक्ष

दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई (उ.प्र)

प्राक्कथन

मैंने जब जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.) से प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विषय लेकर सन् 1994 में स्नातकोत्तर परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की तब मेरे मन में इस विचार ने अंगड़ाई ली थी कि मैं आगे चलकर अपने गृह जनपद की ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक उपादेयता पर शोध कार्य अवश्य करूँगी।

यद्यपि यह कार्य अत्यन्त कठिन एवं श्रमसाध्य था फिर भी संकल्प तो संकल्प होता है। यदि उसके पीछे सच्ची निष्ठा, दृढ़ लगन और आत्मविश्वास हो तो उसे पाने की प्रबल संभावना बन ही जाती है।

ग्रीष्मावकाश में जब मैं अपनी जन्मस्थली उरई वापस लौटी तब पिताश्री से इस सम्बन्ध में मँत्रणा की और अपनी बाल बुद्धि पर हँसी भी खूब, किन्तु उन्होंने मुझे सुझाव दिया कि इस सम्बन्ध में डी.वी.पी.जी. कॉलेज के रीडर एवं इतिहास विभागाध्यक्ष डॉ. श्रीमोहन लाल श्रीवास्तव से सम्पर्क करके सम्यक मार्गदर्शन प्राप्त करूँ।

एक सप्ताह उपरान्त भेंट हो पाई। उन्होंने निर्देशन देना तो स्वीकार कर लिया पर साथ ही साथ कहा कि पहले शोधकार्य से सम्बन्धित कुछ ठोस सामग्री उन्हें

दिखाऊँ । मैंने जनपद जालौन के गजेटियर तथा अन्य ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक सामग्री का अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया । तीन माह पश्चात डॉक्टर साहब ने कहा -'मुझे विश्वास है कि तुम 'इतिहास एवं पुरातत्त्व को जनपद जालौन की देन' विषय पर शोध कार्य अवश्य ही पूर्ण कर लोगी ।'

मैंने तुरन्त पी-एच.डी. का आवेदन पत्र मँगाया और उसे भरकर विश्व विद्यालय प्रेषित कर दिया । मेरी प्रसन्नता का तब पारावार लहरा उठा जब विद्या परिषद् की 11.08.1997 को हुई बैठक के निर्णयानुसार मुझे उक्त शीर्षक से शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने की अनुमति मिल गई ।

बस, फिर क्या था । मैं लग गई पूरे मनोयोग से अपने कार्य को पूर्णता देने के निमित्त, डॉ. लाल के शोध-निर्देशन का सम्यक आलोक पाकर ।

विषय का भलीभाँति प्रतिपादन किया जा सके, इसके लिए मैंने अपने शोध प्रबन्ध को निम्नाँकित परिच्छेदों में विभक्त किया है :-

प्रथम परिच्छेद में जनपद जालौन का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया है । इसके अन्तर्गत मैंने जनपद की स्थिति, भौगोलिक सीमा एवं परिवेश, सामाजिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तथा साहित्यिक पृष्ठभूमि पर संक्षेप में प्रकाश डाला है ।

द्वितीय परिच्छेद ***'जनपद जालौन का ऐतिहासिक अध्ययन'*** से सम्बन्धित है । इसके अन्तर्गत पृष्ठभूमि के रूप में मैंने प्रागैतिहासिक, आद्य ऐतिहासिक, वैदिक महाजनपदीय एवं वर्तमान युगीन कालखण्डों का विवेचन प्रस्तुत किया है । इसमें पूरी तरह से मेरी दृष्टि पुरातात्त्विक इतिहास पर केन्द्रित रही है ।

तृतीय परिच्छेद ***'जनपद जालौन का पुरातात्त्विक अध्ययन'*** को समर्पित

है। इसके अन्तर्गत मैंने पुरातत्त्व की सम्यक परिभाषा, पुरातत्त्व का इतिहास (उद्भव एवं विकास), पुरातत्त्व के स्रोत तथा उपलब्ध पुरातात्त्विक सामग्री का सर्वेक्षण उपशीर्षकों पर विचार प्रस्तुत किया है।

चतुर्थ परिच्छेद ***'जनपद जालौन में उपलब्ध साहित्य'*** को समर्पित है। इसके अन्तर्गत मैंने जनपद के प्राचीन प्रकाशित ग्रंथों का अन्वेषण तथा पांडुलिपियों का संकलन, प्राचीन पत्र, राजाज्ञाएँ तथा सनदों आदि का संकलन देखने हेतु अनेक संग्रहालयों की शरण ली है।

पंचम परिच्छेद 'जनपद जालौन के स्थापत्य' से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत मैंने जनपदीय स्मारकों, मंदिरों, ऐतिहासिक भवनों तथा दुर्ग एवं गढ़ियों का भ्रमण तथा अवलोकन करके उनकी प्राचीनता तथा स्थापत्य कला प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है।

षष्ठ परिच्छेद का शीर्षक ***'जनपद जालौन में उपलब्ध मुद्राएँ'*** है। इसके अन्तर्गत मैंने व्यक्तिगत रूप से अनेक मुद्राविदों और संकलनकताओं से भेंट की। परिणामस्वरूप उपलब्ध मुद्राओं को प्राचीन मुद्राएँ, मध्यकालीन मुद्राएँ, आधुनिक मुद्राएँ तथा अन्य मुद्राओं के रूप में वर्गीकृत किया है।

सप्तम परिच्छेद ***'जनपद जालौन में उपलब्ध मूर्तियाँ'*** है। इसके अन्तर्गत यहाँ प्राप्त मूर्तियों को मैंने चार प्रकार की मूर्तियों में विभाजित किया है, जैसे-1. ब्राह्मणी मूर्तियाँ 2. जैन मूर्तियाँ 3. बौद्ध मूर्तियाँ एवं 4. लौकिक मूर्तियाँ। इस वर्गीकरण में मैंने मूर्तिविज्ञान की सहायता ली है।

अष्टम परिच्छेद ***'जनपद जालौन में उपलब्ध चित्रकला'*** से सम्बन्धित है।

इसके अन्तर्गत मैंने प्राप्त सामग्री के आधार पर उसे ऐतिहासिक चित्रकला, धार्मिक चित्रकला, तान्त्रिक चित्रकला तथा लोक चित्रकला के रूप में विभाजित किया है।

नवम् परिच्छेद *उपसंहार* से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत मैंने इतिहास को जनपद जालौन की देन एवं पुरातत्त्व को जनपद जालौन की देन उपशीर्षकों पर विचार करते हुए सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध का निष्कर्ष देने का प्रयास किया है।

इसके अतिरिक्त शोध प्रबन्ध में दो **परिशिष्ट** भी हैं, जिनके अन्तर्गत मैंने सन्दर्भित ग्रंथों की सूची, सम्बन्धित मानचित्र एवं उल्लेख्य चित्रों का संकलन किया है।

शोधकार्य का मार्ग निस्संदेह कंटकाकीर्ण मार्ग होता है, पर यदि गुरु-जनों के शुभाशीषों का सम्बल मिल जाए तो सारा का सारा कठिन और कंटकाकीर्ण मार्ग अत्यन्त सुगम और सुखद हो उठता है।

अपने विद्वान शोध निर्देशक डॉ. एस.एम.लाल का मैं किन शब्दों में आभार व्यक्त करूँ ? यदि उनका सम्यक सानिध्य और समुचित मार्गदर्शन न मिलता तो यह शोध प्रबन्ध कदापि पूरा नहीं हो पाता।

अपने पिताश्री युगकवि डॉ. राम स्वरूप खरे की प्रताड़ना और प्रेमपूर्वक चेतावनी को मैं कभी भी विस्मृत नहीं कर पाऊंगी। जब-जब ऐसे हताशा और कार्य से उदासीनता के क्षण आये तब-तब उन्होंने सम्यक मार्गदर्शन के साथ-साथ अशेष वात्सल्य की वर्षा की और कार्य को पूरा करने की अनुपम प्रेरणा दी। उनके व्यक्तित्व के सामने नतमस्तक हूँ।

महिमामयी माँ श्रीमती कमलादेवी खरे ने जो समय सम्पदा और सुमति प्रदान

की, अपार प्रेम की पुण्यतोया में अवगाहन कराया वह कभी न भूलने की वस्तु ही नहीं अपितु मेरे जीवन की थाती है। उनके शुभाशीषों के कारण ही मैं यह दुर्गम शोध पंथ पार कर सकी। उन्हें विनम्र प्रणाम।

बुन्देलखण्ड संग्रहालय के निदेशक एवं संस्थापक डॉ. हरीमोहन पुरवार 'बुंदेलरत्न' तथा उनकी विदुषी धर्मपत्नी श्रीमती संध्या पुरवार ने जो अयाचित सहायता प्रदान की उसे जीवन में कभी भी विस्मृत नहीं कर पाऊंगी। शब्द बौने से लगते हैं। उनकी मंगलकामनाओं ने मुझे बड़ा सम्बल प्रदान किया है, फिर वे तो अपने ही हैं।

अपर्णा

- कु. अपर्णा खरे

समर्पण

इतिहास एवं पुरातत्त्व जगत के मूर्धन्य विद्वान

डॉ.बृजवासी लाल श्रीवास्तव

एवं

पिताश्री सुविख्यात साहित्यकार एवं युगकवि

डॉ. रामस्वरूप खरे

तथा विदुषी माता

श्रीमती कमलादेवी खरे

के कर कमलों में यह कृति

सश्रद्ध समर्पित !

इस आशा-अपेक्षा के साथ कि-

इसमें जो अभाव और त्रुटियाँ रह गईं हों

उन्हें मेरी अल्पज्ञता मानते हुए

मुझे अपना अशेष शुभाशीष प्रदान करें

जिससे

मैं अपने भावी जीवन को

समृद्ध, समुज्ज्वल और प्रेरणास्पद बना सकूँ

- अपर्णा

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

जनपद जालौन का सामान्य परिचय

प्रथम अध्याय

जनपद जालौन का सामान्य परिचय

कालिदास का मेघ जब अपने दूतकर्म का निर्वाह करने के लिए दशार्ण प्रदेश के ऊपर से गुजर रहा था तो वहां का सौन्दर्य देखकर मुग्ध हो ठिठका ही रह गया। दशार्ण से आशय है ऐसा भूभाग जो दस नदियों से घिरा हो। परिवर्तन की विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरता हुआ कालांतर में यही भूभाग बुंदेल खण्ड के नाम से पहचाना जाने लगा। जालौन जनपद भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से बुंदेलखंड का सबसे महत्वपूर्ण जिला है। इसने प्रत्येक कालखण्ड में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। कहते हैं कि जालवन नामक ब्राह्मण द्वारा बसाये जाने के कारण इसका नाम जालौन पड़ा। वर्तमान में इस जनपद का प्रशासनिक मुख्यालय झांसी और कानपुर के लगभग बीचोंबीच स्थित ऐतिहासिक नगर उरई है। यह झांसी से 112 किलोमीटर तथा कानपुर से 105 किलोमीटर दूर स्थित है। बीचोंबीच यानी हृदय प्रदेश में होने के कारण ही उसे 'उर ही' कहा गया। ऐसा माना जाता है कि 'ही' के उच्चारण में 'ह' शनैः शनैः लोप हो गया और इसे उरई कहा जाने लगा। क्रौंच ऋषि के नाम पर कोंच तथा कालप्रियनाथ के आधार पर कालपी भी इसी प्रकार के उल्लेख्य नाम हैं, जो अब तहसीलों के प्रधानास्पद हैं।

जनपद जालौन की भौगोलिक स्थिति

जनपद जालौन 26^0 और 25^0 -46 अंश उत्तरी अक्षांश तथा 79^0.52 और 78^0. 56 अंश पूर्वी देशांतर रेखाओं के मध्य स्थित है।

जालौन जनपद के मध्य में यद्यपि कोई विशाल नदी या पर्वत नहीं है परंतु इसके सीमांत पर तीन दिशाओं में यमुना,सिंध तथा पहूज जैसी नदियां बह रही हैं। ये नदियां जहां इस जनपद को धन-धान्य से सम्पन्न करती हैं वहीं इसकी प्राकृतिक छटा में चार चांद भी लगाती हैं। यह जनपद पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर 90 किलोमीटर तथा उत्तर से दक्षिण की ओर 80 किलोमीटर की दूरी तक फैला हुआ है। इस कारण यह लगभग वर्गाकार हो गया है। जालौन जनपद की सीमा इस प्रकार है -

उत्तर : इटावा, कानपुर व कानपुर देहात जिला एवं यमुना नदी।

दक्षिण : झांसी जिला एवं बेतवा नदी।

पूर्व : हमीरपुर जिला।

पश्चिम : मध्य प्रदेश के भिण्ड व दतिया जिले एवं पहूज नदी।

पिछले वर्ष सन् 2001 ई. में हुई जनगणना के अनुसार जालौन जनपद की वर्तमान जनसंख्या 14,55,857 है। इनमें 7,88,262 पुरुष तथा 6,67,595 महिलाएं हैं। वर्ष 1981 की जनगणना के समय जिले की जनसंख्या 986238 थी। 1961 की जनगणना की तुलना में वर्ष 1971 में 22.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी जबकि 1981 की जनगणना में वृद्धि दर 21.2 प्रतिशत रही इससे जिले में जनसंख्या घनत्व 217 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर हो गया। वर्ष 1971 में जनसंख्या का 86.25 प्रतिशत

ग्रामीण क्षेत्र में निवास करते थे, जबकि 1981 में यह प्रतिशत 80.11 हो गया। यह गांव से शहरों की ओर बढ़ते पलायन का परिणाम था ।

जनपद में पहली जनगणना की सूचना वर्ष 1853 की मिलती है। तब केवल कालपी और कोंच परगनों में यह जनगणना की गई थी जो उस समय हमीरपुर जनपद में शामिल थे। दोनों की सम्मिलित आबादी उस समय 1,08,754 थी। अगली गणना वर्ष 1865 में की गई। इस समय जिले का स्वरूप लगभग आजकल के स्वरूप जैसा हो गया था। जनसंख्या 4,05,604 पाई गई थी। वर्ष 1872 की जनगणना में जनसंख्या 4,04,384 थी। 1881 की जनगणना में रामपुरा, गोपालपुरा और जगम्मनपुर रियासतों को छोड़ दिया गया था फिर भी जनसंख्या 4,18,142 थी इस तरह 1872 के मुकाबले लगभग 3.38 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई। 1891 में फिर जनगणना की गई। इस समय माधौगढ़ परगना समाप्त कर दिया गया था और उसके गाँव, कोंच और जालौन परगनों में मिला दिये गये थे अर्थात अब जनपद में केवल चार परगने थे। जनसंख्या पाई गई 3,66,341 यानी 1881 की तुलना में 5 प्रतिशत की कमी हो गई थी। 1891 में केवल कोंच और कालपी ही 10 हजार से ज्यादा की जनसंख्या के नगर थे। 1901 में जनसंख्या 4,24,017, 1911 में 4,31,158, 1921 में 4,31,164 , 1931 में 4,52,074, 1941 में 5,15,478, 1951 में 5,55,572, 1961 में 6,63,168 तथा 1971 में जनसंख्या 813490 हो गई थी।

अपनी स्थिति के कारण दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही भोपाल-झाँसी-कालपी मार्ग उत्तर भारत से विन्ध्याचल पर्वत मालाओं से दक्षिण की ओर जाने के

लिये जाना जाता है। कालपी पूर्व से पश्चिम को भी जोड़ता था और पश्चिम द्वार के नाम से भी जाना जाता था। अंग्रेजों ने भी जनपद में सड़कों के विकास की ओर ध्यान दिया। अकालों के समय में खासतौर से 1897 के अकाल में लोगों से सड़कें बनवाकरं अन्न वितरण किया गया। इसी कारण वर्ष 1907 तक जनपद में काफी सड़कें बन गई थीं। 1882 से 1889 के मध्य जनपद में रेलवे का पदार्पण हुआ। 22 लाख 66 हजार 6 सौ 37 रुपये में कालपी का पुल 1887 में बन कर तैयार हुआ था। कोंच-एट रेलवे लाइन 1905 में बन कर तैयार हुई।[1]

जमीन का ढाल नदियों के बहाव को देखते हुए उत्तर-पश्चिम की ओर प्रतीत होता है। इन नदियों के अलावा जनपद में बहने वाले कई बड़े नाले भी बरसात के दिनों में छिटपुट नदियों का रूप ले लेते हैं। यूं तो पूरा जनपद प्राय: चौरस भू-भाग है किन्तु कोंच तथा दक्षिण की ओर सैदनगर, सुनवई, छिरावली, गुमावली, सला तथा पहाड़गांव के पास कतिपय छोटी-छोटी पहाड़ियां हैं। जनपद के प्रमुख बरसाती नालों में मलंगा नाला, रावर नाला, नोन नाला तथा चरबाई नाला प्रमुख हैं।

मलंगा नाला समथर की ओर से आता है। यह कोंच, जालौन और कालपी तक प्रवाहित होते हुए ग्राम महेबा के पास नून नदी में मिल जाता है। ग्राम धंजा की ओर से बहने वाला पसा नाला पहाड़ियों से होकर जालौन के पास मलंगा में मिल जाता है। नोन नाला बसोव ग्राम की ओर से सिमरिया तथा खैती होकर उरई-कोंच की सीमा का निर्धारण करता है और औता के निकट उरई नद में मिल जाता है। इसे गोहानी नाला भी कहते हैं। कुसमिलिया के पास परबाई नाला है

जो कालपी और उरई की सीमा में अबाध प्रवाह से बहता हुआ महोबा के निकट नून नदी में मिल जाता है।

जनपद जालौन की जलवायु समशीतोष्ण है। यहाँ ग्रीष्म ऋतु में अधिक गर्मी तथा शीत ऋतु में अधिक ठंड पड़ती है। यहां जाड़ा, गर्मी और बरसात तीन मौसम होते हैं। इस जनपद में झर, काबर, पहुआ तथा राकड़ भूमि उपलब्ध है। यह भूमि रबी व खरीफ दोनों ही फसलों के लिए अत्यन्त अनुकूल है। इसी कारण कृषि पूरे जनपद का प्रमुख उद्योग है। यहां के अधिसंख्य परिवार खेती करते हैं। यहां की अर्थव्यवस्था का मेरु दण्ड खेती ही है। उरई, कालपी तथा कोंच के दक्षिण पूर्व और जालौन के दक्षिण-पश्चिम भाग में मार मिट्टी की प्रचुरता है। यहां गेहूं, चना, जौ और अलसी की पैदावार प्रचुर मात्रा में होती है। काबर मिट्टी भी रबी की फसल के लिए उपयुक्त और उपयोगी है। पडुआ अर्थात पीली मिट्टी जालौन तथा कोंच तहसील के दक्षिणी भाग में है। यदि पर्याप्त खाद और पानी सही समय पर मिलता रहे तो इस मिट्टी में रबी और खरीफ दोनों ही फसलों की अच्छी उपज ली जा सकती है। सिंचाई के समुचित साधन उपलब्ध होने के कारण इस क्षेत्र में कृषि उत्पादन का औसत बहुत अच्छा रहता है।

राकड़ मिट्टी वाली जमीन बहुधा नदी-नालों के आसपास पायी जाती है। इसमें कंकड़ और सोरा का अंश विद्यमान रहता है। यह मिट्टी खरीफ की फसल के लिए अनुकूल होती है। नदियों की रेत में खरबूज और तरबूज बोए जाते है। ककड़ी भी यहां का प्रिय फल है। कालपी और गोपालपुर इस मिट्टी के लिए प्रसिद्ध हैं। कहीं-कहीं जमीन ऊसर भी है। ऐसी जमीन में कुशादि घास मिलती है।

सम्पूर्ण जनपद में सिंचाई के प्रमुख स्त्रोत कुंए और तालाब ही हैं। नहरों से निकले हुए छोटे-छोटे बम्बे और रजवाहे जनपद की सैकड़ों एकड़ भूमि को सिंचाई के लिए जल उपलब्ध करा रहे हैं। सिंचाई का यह साधन कुंओं की अपेक्षा अधिक अनुकूल और उत्तम इसलिए भी है क्योंकि अपेक्षित विद्युत आपूर्ति न हो पाने के कारण जनपद में कूपजल की उपलब्धता का शत-प्रतिशत दोहन नहीं हो पाता है।

अन्य क्षेत्रों की तरह जालौन जनपद में भी रबी की फसल क्वांर-कार्तिक (अक्टूबर-नवंबर) में बोई जाती है और ग्रीष्म ऋतु के यौवन काल से पूर्व ही फागुन-चैत (मार्च-अप्रैल) में यह फसल पककर काटने योग्य हो जाती है। गेहूं यहां की मुख्य फसल है। इसके अलावा सरसों, चना, जौ,मटर, राई, धनिया, अलसी, मसूर आदि रबी फसलें भी खूब उगाई जाती हैं।

मानसून आते ही यानी आषाढ़ के महीने में खरीफ फसलों की बुवाई शुरू हो जाती है। यह फसल कड़ाके की ठण्ड शुरू होने से पूर्व ही अर्थात कार्तिक - अगहन माह में काट ली जाती है। जनपद की प्रमुख खरीफ फसलों में ज्वार, बाजरा, उड़द, मूंग, तिल, अरहर, सन, मक्का आदि उल्लेखनीय हैं। जायद की फसल में आम और पपीता जैसे फल तथा सभी प्रकार की साग-सब्जी जैसे आलू, बैगन, पालक, टमाटर, गोभी, कद्दू, घुइयां (अरबी), भिण्डी, गाजर, मैथी, बथुआ, चौलाई,तोरई, कुलफा आदि उगाते हैं। जिन क्षेत्रों में सिंचाई के लिए प्रचुर पानी है वहां गन्ना की फसल भी उगाई जाती है। जनपद में गन्ने की सबसे ज्यादा पैदावार माधौगढ़ में होती है।

जनपद का मुख्यालय उरई रेल व सड़क मार्ग से भारत के प्रायः सभी प्रमुख शहरों से सीधा जुड़ा है। उरई रेलवे स्टेशन मध्य रेलवे के झांसी डिवीजन के अंतर्गत आता है। प्रतिदिन लगभग एक दर्जन रेलगाड़ियां यहां रुकती हैं। कोंच, एट, उरई, आटा और कालपी इस जनपद के प्रमुख स्टेशन हैं। मुख्य रेलवे मार्ग के अलावा एट स्टेशन से कोंच तक एक उप रेलमार्ग भी है। जनपद मुख्यालय उरई राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक 25 से जुड़ा है। इसके अलावा प्रांतीय राजमार्ग भी हैं। सम्पूर्ण जनपद में कच्ची-पक्की सड़कों का जाल बिछा हुआ है। राज्य परिवहन निगम की तथा निजी यात्री बसें यातायात का प्रमुख साधन हैं। सड़क से दूर बसे गांवों तक पहुंचने के लिए जीप, ट्रेक्टर तथा बैलगाड़ियों का प्रयोग किया जाता है।

जालौन जनपद की 80 प्रतिशत से अधिक जनता कृषि कार्य करती है, शेष 20 प्रतिशत आबादी व्यापार, नौकरी तथा मजदूरी करती है। गाय, बैल, भैंस, भेड़ तथा बकरी यहां के प्रमुख पालतू पशु हैं। जनपद में रहने वाली पेशेवर जातियों में सुनार, लुहार, बढ़ई, दर्जी, तेली, कुम्हार, धोबी, कोरी व चमार प्रमुख हैं। इन जातियों में यद्यपि नौकरियों के प्रति रुझान बढ़ा है किन्तु ज्यादातर परिवार अभी भी पैतृक धंधा करके ही अपनी आजीविका चला रहे हैं। जनपद का कालपी शहर कागज उद्योग के लिए विख्यात है। यहां कागज बनाने के कई छोटे-छोटे कारखाने हैं। करघे से वस्त्र तैयार करने का काम भी कई घरों में किया जाता है। उरई के औद्योगिक विद्यालय में काष्ठ कार्य व अन्य विधाओं का प्रशिक्षण दिया जाता है। जनपद के कई कस्बे अपने विशिष्ट उद्योगों के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध

हैं। इनमें कोटरा में पीतल के बर्तन, कोंच में चाकू, ताले, उस्तरे आदि का निर्माण, वस्त्रों की रंगाई और छपाई तथा घुरट में बनने वाली खस और केवड़ा की इत्र गंधी देशभर में मशहूर है। उरई में एक विशाल औद्योगिक क्षेत्र भी विकसित हो रहा है, जहां देश की लब्धप्रतिष्ठित कंपनियां अपने कारखाने लगा रही हैं।

जनपद जालौन की सामाजिक स्थिति

जनपद जालौन सर्वधर्म समभाव का श्रेष्ठतम उदाहरण है। यहां की बहुसंख्यक आबादी हिन्दू है, मुस्लिम समुदाय भी काफी संख्या में है। अन्य धर्मावलंबियों की संख्या यद्यपि बहुत ज्यादा नहीं है, लेकिन वे भी अत्यन्त गरिमा और सम्मान के साथ जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

बुंदेलखण्ड के अन्य जनपदों की भांति जालौन जनपद में भी ब्राह्मणों में जुझौतिया, कन्नौजिया, सनाढ्य, सरबरिया, क्षत्रियों में सूर्य, चन्द्र और नागवंशी, राजपूत तथा बुंदेला क्षत्रिय हैं। जनपद में राजपूतों की 65 जातियां पायी जाती हैं। वैश्यों में अग्रवाल, अग्रहारी, गहोई, केशरवानी और मारवाड़ी प्रमुख हैं।

ये लोग वाणिज्य एवं व्यापार करते हैं। शूद्र जाति के अन्तर्गत अनेक जातियाँ हैं। यह अपने पूर्ववर्ती उद्योग धंधों में लगे रहते हैं यथा- बसोर बाँस की चटाइयाँ, टोकरी, डलियाँ आदि बनाते हैं, माली खजूर के पत्तों से विवाह के लिए मौर (मुकुट), फूलों के गजरे, मालायें तथा पान के बीड़े बनाकर बेचते हैं। काछी अपनी बाड़ियों में साग-सब्जी-भाजी तथा फलदार वृक्ष लगा कर ग्रामीणों

की माँग पूरी करते हैं। बढ़ई खेती के काम में आने वाले उपकरण-हल,बखर,बैलगाड़ी तथा अन्य लकड़ी का सामान बना कर कृषि कार्य में सहायक बनता है। लुहार लोहे के औजार हँसिया, हल का फल, कुल्हाड़ी, गंडासा बनाता है तो सुनार सोने, चाँदी, काँसे तथा गिलट के आभूषण बनाते हैं। ठठेरे पीतल की बर्तनों की माँग पूरी करते हैं। कड़ेरा रुई धुन कर, नाई बाल काट कर और अन्य कार्यों में किसानों का कार्य करके पारिश्रमिक पाता है। कोरी कपड़ा बुनता, तेली तेल पेरता और मोची जूते-गाँठता है। रंगरेज कपड़ों की रंगाई-छपाई करके धंधा करता है। गड़रिया भेड़-बकरियों को पालता है उनकी ऊन निकाल कर मोटे कम्बल बनाता है। अन्य उद्योगों में केवट, धोबी, भट, खटीक, भरभूँजा, कहार, गुसाई और योगी जातियाँ हैं। अपराधी जातियों में नट, कन्जर और बेड़िया हैं। इसके अतिरिक्त खंगार, डाँगी, बलरिया, डुभार तथा कलार आदि हैं। मुसलमान जातियों में धुनियाँ, शेख, वैहना आदि हैं। इस प्रकार यहाँ के निवासी उद्योग धंधों, कृषि कार्य, मजदूरी तथा नौकरी आदि विभिन्न व्यवसायों में लगे हैं।

यहाँ के हिन्दुओं ने म्लेच्छों को बहिष्कृत किया जो उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाते हैं। अलबरूनी ने लिखा है- 'हिन्दुओं के पूर्वज उतने संकीर्ण विचारों के नहीं थे जितने कि वर्तमान पीढ़ी के हैं।'[2] पराशर स्मृति के अनुसार बहुत से ब्राह्मण एवं क्षत्रिय अब कृषि कार्य करने लग गये हैं। सचमुच प्राचीन युग में जहाँ केवल वैश्य ही कृषक थे वहाँ मध्य युग में वैश्य कृषि कार्य से विरत हो गये और शूद्रों के साथ ब्राह्मणों और

क्षत्रियों ने इसे हस्तगत कर लिया और वे ही आज प्रमुख कृषक हैं।'[3] पुलिस रक्षक के स्थान पर भक्षक का कार्य करती है। आज सम्पूर्ण जनपद में आतंक का साम्राज्य है।

यहाँ के लोगों का पहनावा साधारण है। बड़े-बूढ़े लोग आधी बॉहों की बंडी फतुही पहनते हैं। कंधे पर बिछौना सिर पर अंगोछा। राज दरबारों में जाने की पोशाक अंगरखा मिरजई पाँव में सराई और सिर पर पगड़ी रहा करती थी। वीर बुन्देलों का सैनिक वेश बड़ा आकर्षक और प्रभावशाली था। वे कमर में कटार, हाथ में गैंड़ा की छाल धारण कर, अंग में सुरसी का वागा (अंगरखा या अंगरक्षक) और सिर पर निरभोक्ता पाग से विभूषित हो रणयात्रा पर प्रस्थान करते थे। एक लोकगीत से इसकी पुष्टि होती है। यथा-

कहाँ धरी है करहा कटरिया,
कहाँ धरी गेंड़ा की धार।
कौनन ठगी करहा कटरिया,
घुल्लन टँगी गेंड़ा की ढार।
कहाँ धरौ सुरसी को बागो,
कहां निरमौला पाग।
जाभ धाने में धरौं सुरसी को बागो,
ऊपर धरी निरमौला पाग ॥[4]

यह तो बुन्देल खण्ड की प्राचीन काल के रहन-सहन की झॉकी थी किन्तु अब इसमें बहुत परिवर्तन हो गया है। प्रायः सभी बड़े-बड़े कस्बों एवं ग्रामों में

साप्ताहिक हाट लगती है। अब आजकल बुन्देले राजपूतों की आर्थिक स्थिति शोचनीय है। इसकी अभिव्यक्ति लोकगीत की निम्नांकित पंक्तियों में दृष्टव्य है :-

ऐंठ दतिया में, पैठ दतिया में। मिरचन घोर खायें, पथरौटिया में ।।[5]

स्त्रियाँ साधारण लहंगा पहनती है अब धोती-साड़ी का चलन बढ़ चला है श्रमिक स्त्रियाँ धोती का कछोटा लगा कर काम करती हैं। हाथों में खग्गा, बरा, करूना, दोहरी, चूरा, बेगुआ, कॉच की चूड़ियाँ उंगलियां में अँगूठी, कानों में कन्न फूल (कर्णफूल) तरकियों, बालियाँ, बांहों में विजुल्ला, बाजूबंद, सिर पर शीश फूल, बीज, सांकर आदि पहनती हैं। कमर में करधौनी पैरों में बिछुआ अनौटा, सांकर छल्ली भोरवार बिछिया धारण करती है। पैरों में भारी- भारी कड़े, गूजरी और पैजना पहने जाते हैं। स्त्रियाँ दांतों में सोने की कीलें जड़वाती हैं। हाथ, पाँव और ठुड्डी पर गोदना गुदवाती हैं। ग्रामीण स्त्रियाँ आज भी सिर पर गागर रखे कुओं से पानी लाती हैं। पनघट का वर्णन लोक साहित्य में प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है। अपने पतियों के साथ ग्रामीण स्त्रियां कंधे से कंधा मिला कर कृषि कार्य में हाथ बॅटाती हैं। इस प्रकार वे दाम्पत्य जीवन का सहज ही आनन्द प्राप्त करके 'कर्म ही पूजा है' सिद्धान्त पर अपनी आस्था रखते हुए अर्थ, धर्म और काम की सरणियों से गमन करती हुई मोक्ष की अधिकारिणी बनती हैं। भारतीय समाज में विवाह एक समझौता न होकर आध्यात्मिक प्रक्रिया है। पुरा ग्रन्थों में भारतीय नारी ने यदि किसी व्यक्ति को मन से वरण कर लिया तो उसी को पति रूप में स्वीकार कर पाणिग्रहण किया। भारत देश जैसी सावित्रीय पवित्रता अन्यत्र दुर्लभ है। मनु ने आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया है -

(1) ब्राह्म (2) दैव (3) आर्य (4) प्रजापत्य

(5) आसुर (6) गान्धर्व (7) राक्षस (8) पैशाच।

इनमें सबसे श्रेष्ठ ब्राह्म विवाह माना जाता है। अच्छे शीलवान, गुणवान वर को स्वयं बुलाकर उसे भूषण वस्त्र से अलंकृत व दूजित करके कन्या दान करना श्रेष्ठ कोटि का ब्राह्म विवाह है, और निकृष्ट कोटि का राक्षस तथा पैशाच विवाह माना जाता है। इसमें किसी कन्या का बलात अपहरण करके उपभोग किया जाता है। इस प्रकार प्रथम के चार विवाह श्रेष्ठ और अन्त के चार विवाह निष्कृष्ट माने जाते हैं। शकुन्तला एवं दुष्यन्त का गान्धर्व विवाह लोक प्रसिद्ध है। भीष्म ने काशीराज की कन्या का हरण करके राक्षस विवाह किया। वर्तमान में जो विवाह प्रचलित है उसे ब्राह्म और दैव का मिश्रित रूप समझना चाहिये।

प्राचीन काल की परम्परा का पालन आज भी थोड़े बहुत अन्तर के साथ विवाह के क्षेत्र में प्रचलित है। जनपद जालौन में भी प्राय: सभी जातियों में सप्तपदी [6] का विशेष महत्व है। इसे भॉवर फिराना भी कहते हैं। सप्तपदी के वाक्य बड़े ही अर्थ पूर्ण हैं। अर्थात् वर कहता है-हे वधू इच्छा शक्ति प्राप्त करने के लिए एक पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर। तेज प्राप्त करने के लिये दूसरा पग चल तथा मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर। आनन्द मय होने के लिये तीसरा पग चल तथा मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर। आनन्द मय रहने के लिये चौथापग चल तथा मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर। प्रजा के लिये पॉचवाँ पग चल तथा मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर। नियम पालन करने के लिये छठा पग चल तथा मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर। हम दोनों में परस्पर

मैत्री रहे इसके लिये सातवां पग चल तथा मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

कन्या वर के प्रत्येक सत्संकल्प में सहायता देने का वचन देती है। कहा भी है-'संता सप्तपदी मैत्री' सात कदम चल लेने से सज्जनों में मैत्री हो जाती है। केवल इस जनपद में ही नहीं वरन् सारे देश में ही लड़की का विवाह पिता के लिये एक समस्या बन गया है। वह वर के चुनाव के लिये वर्षों भटकता फिरता है। दहेज की प्रथा ने भीषण रूप धारण कर लिया है, पिता चिन्ता के मारे घुल-घुल कर मर जाता है। दहेज रूपी दानव के कारण ही लड़कियों को भी आत्म हत्या करनी पड़ती है अथवा किसी न किसी बहाने से इन्हें मौत के घाट उतार दिया जाता है। कभी-कभी धन के अभाव में अथवा लालच के वशीभूत होकर कुछ व्यक्ति अपनी बेटियों को धनी घर अथवा बूढ़े वर को सौंप देते हैं, जिसके कारण कन्या आजन्म दुखी रहती है।

वाल्मीकि रामायण [7] काल में त्रिपदी विवाह का महत्व था। उस समय लड़की ससुराल गमन के पूर्व विवाह संस्कारों को विवाह के नाम से अनिहित किया गया है, और उत्तरार्ध संस्कारों को समुद्राह कहा गया है। 'त्रिपदी' का वाग्दान निम्नांकित श्लोक से स्पष्ट है :-

सीतां रामायभदद्र ते उर्मिला लक्ष्मणा यवै। त्रिर्वदामि न संशय: ॥

स्वयं-वरण का भी प्रसंग वेद में आता है, परन्तु वह केवल क्षत्रिय-कन्याओं के ही लिये विशेषत: होता था, कन्या-सामान्य के निमित्त नहीं। ऋग्वेद [8] में उस पिता की प्रसन्नता का उल्लेख है जो अपनी दुहिता के वर का प्रबन्ध कर अपने में बड़ा सुखी होता है। शतपथ ब्राह्मण [9] में सुकन्या का नि:सन्दिग्ध कथन है कि -

मेरे माता-पिता ने मुझे जिस पति के हवाले किया है, उसे मैं जीते जी नहीं छोड़ूँगी। माता-पिता की इच्छा पर ही कन्या का विवाह निर्भर होता था। इसकी पुष्टि राजा रथ बीति [10] के आख्यान से भी होती है। राजा से श्यावाश्व ऋषि ने उसकी कन्या से विवाह का प्रस्ताव किया। राजा ने अपनी विदुषी रानी शशीयसी की सम्मति से ऋषित्व प्राप्त कर लेने के बाद ही ऋषि को पुत्री का पाणिग्रहण कराया। फलत: विवाह के विषय में माता-पिता की सम्मति कन्या के लिये सर्वथा मान्य ग्राह्य होती थी। वेद में बाल-विवाह का कहीं भी संकेत नहीं मिलता , किन्तु पता नहीं कैसे यह प्रथा बुन्देल खण्ड के जनपदों में प्रचलित हो गयी। जालौन जनपद भी इसका अपवाद नहीं।

जालौन जनपद में विवाह का प्रारम्भ 'पक्की' से होता है। इसे फलदान या टीका चढ़ाना कहते हैं। लड़की का पिता अपने कुटुम्बियों को लेकर टीका चढ़ाने कुछ निश्चित रुपये, वस्त्र,फल,फूल मिष्ठान आदि लेकर वर पक्ष के यहां जाता है। वर पक्ष वाले बड़ा उत्सव मनाते हैं, मंगल गीतों का आयोजन होता है। शुभ मुहूर्त में लड़की वाला वर को रुपये, सुपाड़ी देता है, हल्दी का टीका लगाता है, परिणाम स्वरूप इसे तिलक चढ़ाना भी कहते हैं। वर पक्ष वाले सगाई चढ़ जाने पर पान के बीड़े, बतासे अथवा मिठाई आदि बाँटते है। सगाई से दोनों पक्षों की वचनबद्धता हो जाती है। वास्तव में मांगलिक कार्यों का शुभारंभ पीली चिट्ठी से होता है। कन्या से वर पक्ष को यह वैवाहिक सूचनाओं की लिखित एवं प्रामाणिक संविदा होती है। इसे हल्दी के छीटें दे कर पीला कर देते हैं। इस प्रकार इस चिट्ठी में लगुन, तेल, तिलाई, विवाह आदि सम्पूर्ण रस्मों की निश्चित

तिथियों का विवरण लिखा होता है। लग्न पत्रिका लड़की के हाथ पर रखी जा कर लड़के के यहां भेजी जाती है। पत्रिका के साथ धन, वस्त्र, मिठाई मेवा एवं अन्य सामान इत्यादि भेजे जाते हैं। लग्न आ जाने के उपरान्त बहन अपने भाई के यहां भात मांगने जाती है।[11] जामुन के पत्तों से हरे बांसो से मण्डप आच्छादित किया जाता है। मान्यता है कि हरदौल और राजा जुझार सिंह की बहन कुंजावती दतिया के निकटस्थ ग्राम में विवाही थीं। उनकी पुत्री का विवाह था। विवाह के अवसर पर बहन भाई के घर भात मांगने जाती है। राजा जुझार सिंह को दोष लग चुका था। हरदौल की मृत्यु हो चुकी थी। इस विषम परिस्थिति में कुन्जावती ने भाई हरदौल की जुगयाना स्थिति समाधि पर जाकर भात मांगना उचित समझा और वे ओरछा जाकर हरदौल की समाधि के सन्मुख उपस्थित हो रुदन करती हुई भात मांगने लगी। समाधि से गम्भीर स्वरों में स्नेह-पूर्ण भावों से युक्त एक आवाज गूँजी। बहन को पूर्ण विश्वास हो गया और वह जुहार कर अपने घर वापस लौट आई। मंडप के दिन भ्राता हरदौल ने अप्रत्यक्ष रूप से बहन कुंजावती को भात दिया :-

महासोर भओ मरे हरदौल भात दओ।
लाला की करनी कदु वरनी नहूँ जात।
मण्डप के नैचे सामान ना समात।
दान दायजौ सुहात जड़े गानें जवारात।
सब नओ नऔ, महा सोर भयो.........।

मान्यजनों द्वारा गड्ढे में सुपारी व पैसे रखा कर 'खाय' को प्रतिष्ठापित

कराया जाता है। उसे नेग दिया जाता है। तेल-हल्दी चढ़ने के एक दिन पूर्व रात्रि में 'रतजगा' होता है। जिसमें वैवाहिक अनुष्ठान सम्पादित किये जाते हैं। बारात जाने के पूर्व-वर की 'विन्नायकी' का कार्यक्रम होता है। तदुपरान्त बारात का प्रस्थान। प्राचीन काल में जहां चौबीस दिन बारातें रुका करती थी अब वहां मात्र चौबीस घन्टे में ही विवाह सम्पन्न होने लगा है। जनपद जालौन में आज भी 'जामा' पहनाने तथा 'मौर' बांधने का प्रचलन है। सामाजिक कुरीति के रूप में कहीं-कहीं दहेज की प्रथा भी दृष्टिगोचर होती है।

जालौन जनपद का मुख्य व्यवसाय अपने पूर्वज आर्यों की भॉति ही कृषि पालन एवं गो- पालन रहा है। भोर होते ही गायें गोशाला से गोष्ठ में चरने के लिये गोपाल की संस्था में भेज दी जाती है , जहाँ वे दिन भर चरती हैं। प्रातः एवं गोधूलि के उपरान्त दुग्ध दोहन किया जाता है। गृह स्वामी की पुत्री ही यह कार्य सम्पादित किया करती थी इसीलिये उसे 'दुहिता' कहा जाता था। गोवत्सों के सम्हालने का वर्णन अर्थर्वेद [12] में बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में कच्चे मकानों के उपर छाने के लिये खपरैल तथा पक्के भवनों के निर्माण हेतु ईंट और गुम्मों का श्रमिकों द्वारा निर्माण किया जाता है।

जनपद जालौन का राजनीतिक परिचय

जालौन जनपद के राजनैतिक परिचय को जानने के लिये राष्ट्रीय राजनैतिक जीवन की झॉकी पर दृष्टिपात करना होगा क्योंकि आज भौतिकवाद एवं आध्यात्मवाद में अत्याधिक संघर्ष चल रहा है। विज्ञान के कारण नये-नये आविष्कार हो रहे हैं। इन सबने हमारे राजनैतिक जीवन को भी आन्दोलित किया

है। समाज और राजनीति के क्षेत्रों में भी आधुनिक युग में जो प्रगति हुई है, उसका आधारभूत कारण मनुष्य की भौतिक उन्नति ही है। व्यावसायिक क्रान्ति के कारण ही मनुष्य बड़े पैमाने पर आर्थिक उन्नति करने में समर्थ हुआ। यांत्रिक शक्ति से चलने वाले विशालकाय कारखानों में कार्य करने के लिये हजारों मनुष्य बड़े नगरों में एकत्र होने लगे। इस नई परिस्थिति के कारण व्यावसायिक जीवन का स्वरूप ही एकदम परिवर्तित हो गया। इस दशा में विचारशील मनुष्यों ने सोचना शुरू किया कि विविध मनुष्यों में परस्पर किस प्रकार का सम्बन्ध होना चाहिये। इसी कारण 'समाजवाद' आदि नई विचारधाराओं का विकास हुआ, जो मानव समाज के स्वरूप को ही परिवर्तित कर देने के लिये प्रयत्नशील हैं। छापेखाने कागज आदि के आविष्कार के कारण विद्या व ज्ञान केवल कतिपय व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं रह गये, सर्वसाधारण जनता को भी शिक्षित होने व नये विचारों से परिचित होने का पर्याप्त अवसर मिला। राजाओं के एकतंत्र शासन व कुलीन वर्ग के विशेषाधिकारों के विरुद्ध भावना उसमें उत्पन्न हुई, और लोकतन्त्रवाद का विकास हुआ।[13]

जिस प्रकार लार्ड कर्जन के भारत में सप्तवर्षीय शासन को उसके दैनन्दिन जीवन और कार्य का इतिहास माना जाता है उसी प्रकार हम भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास को महात्मा गांधी के जीवन का इतिहास मान सकते हैं।[14] गांधी जी का व्यक्तित्व कभी प्रत्यक्ष और कभी अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन में निरन्तर छाया हुआ था। सर्वप्रथम असंतोष की लहर मजदूर, कृषक एवं छोटे-छोटे गृह उद्योग के कार्यकर्ताओं में व्याप्त हुई।

इस स्थिति में राष्ट्रीय आन्दोलन सामूहिक रूप नहीं ले सका, फलतः जो आदर्श इन मध्यम वर्ग के समाज के सम्मुख रखे गये उनका भरपूर पालन हुआ। इन लोगों को पता था कि उनकी शक्ति ब्रिटिश शासन को चुनौती देने लायक नहीं बनी।[15] सन् 1907 में कांग्रेस के दो दल बन गये। उदार दल का नेतृत्व गोखले और अनुदार दल का नेतृत्व तिलक कर रहे थे। भारत में प्रतिनिधित्व के आधार पर शासन चलाने की माँग होने लगी, साम्राज्यवाद की डॉवाडोल स्थिति के कारण भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ हो गये। सन् 1919 में सामूहिक असन्तोष के फलस्वरूप अनेकानेक हड़तालें प्रारम्भ हो गयीं। सन् 1920 में स्वराज्य स्थापना के उद्देश्य से फिर दोनों दल एकमत होकर गांधी जी के नेतृत्व में कार्य करने लगे। उनका प्रत्येक वाक्य मान्य हुआ, वे प्रत्येक योजना को शान्तिपूर्ण ढंग से क्रियान्वित करना चाहते थे।

इस समय तक भारत में कई कारखाने खुल चुके थे। कपड़े का पहला कारखाना भारत में 1818 ई. में खुला था। किन्तु सन् 1905 के स्वदेशी आन्दोलन के पश्चात् ही भारत के अनेक धनी व सम्पन्न लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। बड़े-बड़े कारखानों की स्थापना के अनन्तर ही श्रमिकों एवं पूँजीपतियों की अन्य देशों की भाँति ही समस्यायें उत्पन्न हुई। परिणामस्वरूप श्रमी-संघों (ट्रेड यूनियन) की स्थापना हुई तथा भारत में भी अन्य देशों की भाँति सोशलिज्म, कम्युनिज्म आदि नये आन्दोलन शुरू हो गये।

यूरोप में हो रहे युद्धों ने सामान्य लोगों में राजनीतिक चेतना का संचार किया। आर्थिक दृष्टि से भारत की जनता अशान्ति और विद्रोह की अवस्था में

को मुक्त कर दिया गया।

सन् 1930 में नमक सत्याग्रह को दबाने का प्रयास किया गया किन्तु जनता की शक्ति, साहस और सहनशक्ति के आगे सरकार को झुकना पड़ा। सन् 1933 में गांधी जी ने उपवास प्रारम्भ किया जिसके परिणाम स्वरूप ऊँच-नीच का भेदभाव दूर करने का प्रयत्न किया।[18] सन् 1936 में लखनऊ में हुये अधिवेशन में सरकार की नीति की कड़ी निन्दा की गई। देश के लगभग 21 हजार लोग नजरबन्द थे। भारतवासी रूस की क्रान्ति एवं उन्नति को अपना आदर्श मान कर हिंसात्मक क्रान्ति में विश्वास करने लगे। नई साम्यवादी पार्टी का गठन हुआ। श्री सुभाषचन्द्र बोस को नजरबन्द बनाये जाने से सुलगती अग्नि और अधिक रूप में भभक उठी। ब्रिटिश शासन ने गोलियों से दमन किया , बन्दी गृह भर दिये , ऐसी परिस्थिति में-'करो या मरो' तथा 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा' के नारे बुलंद हो उठे। शासन ने जितनी जनता दमन की चेष्टा की उसमें उतना ही ज्वार आता गया।

इसी समय द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। कांग्रेसी सरकार ने इस्तीफा दे दिया। इसके पूर्व वाइसराय ने गांधी जी और राजेन्द्र बाबू को समझौते के लिये बुलाया जिसमें साम्प्रदायिकता के आधार पर फूट डालने की बात उठाई ।[19]

विज्ञान के विकास से अन्तर्राष्ट्रीयता अधिक पनपी। रेल, तार, डाक, जहाज, बिजली आदि साधनों के कारण देशकाल की दूरी दिन प्रतिदिन कम होती गई। पूँजीपतियों के गुट में ब्रिटेन का उत्थान एवं पतन भी हमारे नेताओं ने देखा। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् जनता में भी राजनैतिक चेतना जाग्रत हुई। बुद्धिजीवियों पर प्रत्येक घटना का प्रभाव पड़ने लगा। 'वैयक्तिक जीवन' की एकान्तिकता का प्रभाव

बढ़ने लगा। जीवन अधिक संघर्षमय प्रतीत होने लगा। भौतिकवादी सभ्यता में जीवन के शान्ति और प्रेममय पक्ष का ऐसा निराकरण किया गया कि इसकी प्रतिक्रियावश लोग प्रकृति की ओर अधिक उन्मुख हुये। इसी कारण छायावादी कवियों में प्रकृति की चर्चा और यांत्रिक युग का विरोध पाते हैं। बुन्देली कवियों ने अपनी हिन्दी कविताओं में इसका स्वरूप प्रस्तुत किया गया है , परन्तु बुन्देली कविताओं में वे जनजीवन और संस्कृति के अधिक नजदीक हैं।'[20]

जनपद जालौन का सांस्कृतिक परिचय

भारतीय संस्कृति के मूलतः दो स्वरूप सर्वत्र विद्यमान हैं। एक रूप जन संस्कृति और दूसरा अभिजन संस्कृति का। जन संस्कृति की अविरल अविच्छिन्न धारा से शक्ति लेकर तथाकथित जिस संस्कृति का निर्माण किया जाता है , वह अभिजन संस्कृति होती है। लोक संस्कृति का सीधा सम्बन्ध व्यापक जन समाज से होता है अतः लोक संस्कृति की वैसे ही परम्परा मिलती है जैसे मानव समाज की।

बुन्देलखण्ड के सन्दर्भ में विचार करने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि भारतीय संस्कृति को कमल के नाल की उपमा दी जा सकती है। जैसे कमल दण्ड में से एक से एक परतें निकलती आती हैं उसी प्रकार भारतीय संस्कृति के आवरण के उपरान्त प्रादेशिक विशेषताओं और प्राकृतिक गुणों के आधार पर दूसरा आवरण दृष्टिगत होने लगता है। व्यापक भारतीय संस्कृति के घटक के रूप में जाने कितनी ब्रज, बुन्देली, अवधी, मालवी, निमाड़ी, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी आदि-आदि स्थानिक संस्कृतियां विद्यमान हैं। उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम की सभी भाषाओं और बोलियों के अनुसार संस्कृति के स्वरूप में व्यापकता आती गई है। लोक संस्कृति की पहचान

लोक में प्रचलित विभिन्न कलाओं, साहित्य, धर्म, आचार,विचार, रीति-रिवाज, भाषण के विभिन्न प्रयोग आदि में होती है। बुन्देलखण्ड के निर्माण काल से ही लोक ने जिस संस्कृति को अपनाया , वह इस प्रदेश की संस्कृति के नाम से पहचानी गई। बुन्देलखण्ड की मूल संस्कृति सामन्तवाद की देन है । मूल से हमारा तात्पर्य उस आधारभूत तत्व से है जिसके कारण बुन्देलखण्ड बना।

काशी की सूर्यवंशी गहिरवार शाखा का एक शासक यदि राज्य में हिस्सा पाने से वंचित न किया जाता तो कदाचित् बुन्देलखण्ड का निर्माण न होकर कुछ और हुआ होता ? इसलिये मूल रूप में सामन्तवाद से सामन्ती व्यवस्था का जन्म ही यहाँ बुन्देलखण्ड के अस्तित्व का आधार है। हेमकरन ने अपना खोया राज्य पाने के लिये विन्ध्यवासिनी देवी का आश्रय लिया और उपासना के बल पर श्रम के सहारे एक नये राज्य की कल्पना को साकार किया। यही तो मुख्य रहस्य है कि बुन्देला जाति एक छोटे प्रदेश की शासक बनी और अपनी नीतियों और शौर्य के बल पर उसे व्यापक बुन्देलखण्ड के रूप में परिणत कर दिया। अभिजन गौण हो गया लोक व्यवहार की दृष्टि से, परन्तु जन संस्कृति के अपने मानदण्ड बने। ये मानदण्ड ही बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति का स्वरूप स्पष्ट करते हैं ।[21]

बीसवीं शताब्दी के इस दशक में अब यह कहने में कोई कठिनाई नहीं है कि संसार का समस्त ज्ञान दो शाखाओं में कहीं न कहीं जाता है। एक शाखा भौतिकवादी और दूसरी भाववादी विचार का ज्ञापन कराती है। इन्हीं के अन्तर्गत व्यक्ति, समाज और देश विशेष के सारे राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कार्यकलाप, विकसन और सम्बन्धों की व्याख्या दी जाती है। भौतिकवादी भौतिक प्रगति के आधार पर दावा

करते हैं कि वे संस्कृति, आर्थिक क्षेत्र और राजनीति में अपनी क्रियाशीलता के कारण अग्रसर हो रहे हैं। आस्थावान होकर वे अपने परिवेश का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में उन्नयनशील होने का दम भरते हैं और संस्कृति को सृजनशील और जनकल्याणी घोषित करते हैं। इनके व्यवस्थित क्रियाकलाप समाज के निष्क्रिय जीवन और अवरुद्ध सृजनशीलता में संस्कृति के विकास के माध्यम से प्राण शक्ति भरते हैं। संस्कृति इनकी दृष्टि में मनुष्य मात्र को वास्तविक आनन्द और तृप्ति देने वाली साधिका है। इससे संपृक्त मानव ही स्वतन्त्र और मूल्यप्रधान जीवन व्यतीत करता है। भौतिकवादियों के इस तर्क को चुनौती देने वाली एक और विचारधारा है जो भौतिकवादी व्यवस्था को घोर यांत्रिकता की जननी मानती है और उसमें संस्कृति की अवस्थिति को भी नकारती है।

सहज ही एक प्रश्न आड़े आता है कि क्या भौतिकता या भौतिकवादी व्यवस्था मनुष्य को मशीन का ऐसा पुर्जा बना देती है कि उसे किसी भी अन्य पुरजे से बदला जा सकता है।[22] यदि ऐसा है तो निश्चय ही 'आज के जीवन में व्याप्त नैराश्य, भय, संकल्पहीनता, अकेलापन आदि भौतिकवाद की देन है। यहाँ सांस्कृतिक संकट[23] की दशा उत्पन्न होती है।

वस्तुत: भौतिकवादी व्यवस्था में वैज्ञानिकता का आग्रह अधिक है किसी अन्य व्यवस्था की तुलना में। संस्कृति में 'संस्कार की क्रिया'[24] की सम्पन्नता किसी निश्चित विधान का संकेत देती है, जिसमें एक लक्ष्य होता है, एक मूल्य रहता है जो जीवन को जीने योग्य बताता है।[25] अर्थात् जड़ जीवन या निष्क्रिय जीवन में प्रगति का पथ संस्कार वही प्रशस्त करता है।

इसीलिए टी.एस.इलियट और कार्ल मार्क्स संस्कृति को प्रगतिदाता मानते हैं तथा मूल्यों और जीवन विवेक से संपृक्त करते हैं। मार्क्स से ज्यादा भौतिकवादी व्यवस्था का हामी कोई दूसरा नहीं है। तो भौतिकवाद किस प्रकार यांत्रिकता बढ़ाता है ? हम कह सकते हैं कि इस नारे के पीछे की पूंजीवादियों, सांमतवादियों या मार्क्सवादियों की साजिश है। जहाँ कहीं मध्ययुगीन परिवेश, सामन्तवाद, धर्मतंत्रवाद अपनी नींव धसकते देखते हैं तो 'दौड़ो, बचाओ' का नारा न लगा कर आनिश्चय, भ्रम, पलायन, अकेलापन, संकल्पहीनतापूर्ण जीवन का ढिंढोरा पीटने लगते हैं। आज का यह मूल्य संकट वास्तव में उन अनास्थावादियों की देन है जिन्होंने कभी भी जनचेतना, वर्ग भागीदारी, लोकधर्मिता को अपने स्वार्थों के कारण प्रश्रय नहीं दिया है और जिनको अपने पुश्तैनी अधिकारों में थोड़ी सी खरोंच लगने पर भी अवरुद्ध सृजन शीलता और सांस्कृतिक संकट की स्थितियाँ प्रतिभासित होने लगती हैं। बात यहीं नहीं रुक जाती, ये विशिष्ट वर्ग की व्यवस्थायें अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये वह सब करने को तैयार हो जाती हैं जो भ्रम के आवरण में उनकी रक्षा करें। उन्हें संस्कृति सार्वभौमिक (यूनीवर्सल) और सार्वजनिक विशिष्ट वर्ग (इलाइट) की ही धरोहर लगती है।[26]

इस संदर्भ में ऐतिहासिक विकास क्रम कुछ और ही तथ्य प्रस्तुत करता है जिन देशों में भौतिकता का विकास नहीं होता, संस्कार की क्रिया अवरुद्ध हो जाती है। उनकी संस्कृति मृत हो जाती है। स्पेग्लर यदि इस दशा में भारत, चीन और इस्लामी देशों की संस्कृतियों को मरा हुआ मानते हैं तो अतिशयोक्ति नहीं करते।[27]

संस्कृति की परिणिति सभ्यता में होती है। यह बात स्वीकार की जा सकती है पर

यह मानना सम्भव नहीं कि सभ्यता के बिना संस्कृति हो सकती है। संस्कृति और सभ्यता का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है इसीलिये यह भी कहा जाता है कि संस्कृतिहीन सभ्यता हो सकती है पर सभ्यताहीन संस्कृति नहीं। जड़ सभ्यता और जड़ संस्कृति दोनों प्रगति में बाधक होती हैं, इसीलिये सभ्यता (जिसे हम आधुनिकीकरण का परिणाम मानते हैं) के लिये संस्कृति का होना आवश्यक है। स्पष्ट है कि सभ्यता की रीढ़ संस्कृति है अतः यह कहना गलत है कि आधुनिकीकरण और सभ्यता जनविरोधी हैं दोनों की संस्कृति के विकास में अमूल्य भूमिका होती है।

'आधुनिकीकरण' के ऊपर एक प्रश्न चिह्न अक्सर लगाया जाता है कि इसमें 'सामाजिक विरासत' [28] अथवा 'सामाजिक-परम्परा'[29] का निषेध होता है और उससे व्यक्ति स्वतंन्त्रता को धक्का पहुँचाता है। बात कुछ उल्टी ही है। आधुनिकीकरण का आधार सभ्यता होता है, और सभ्यता औद्यौगीकरण, तकनीकी विकास, नगरीकरण, भौतिक उपलब्धियों की कुल जमा होती है। 'सभ्यता के स्तर पर पहुँचने में मनुष्य की सुरक्षा और स्वतंन्त्रता निश्चित हो जाती है। वस्तुतः सभ्यता का निर्माण करके मनुष्य ने जीवित रहने की कठिन क्रिया को रोचक तथा रसपूर्ण बना लिया है, आनन्द तथा रस का स्त्रोत बना डाला है।[30] फिर आधुनिकता प्रगति विरोधी हुई या विकासोन्मुख ? यहीं पर हम यह तय कर लें कि जिस संस्कृति में सामान्य जन के जीवन की सुरक्षा, स्वतंत्रता व प्रगति के अवसर उपलबध होते हैं वह जन विरोधी कैसे हो गई ? संस्कृति में लोकपक्ष ही प्रधान होता है। जिन देशों की संस्कृतियों में जन-सामान्य जन को नकार कर विशिष्ट वर्ग (इलाइट) महत्वपूर्ण हुआ है वह एक ऐसी संस्कृति प्रस्तुत करता है, जिसे

अभिजन अर्थात् खास वर्ग की संस्कृति कहा जाता है। अभिजन संस्कृति की जनक शासन व्यवस्था, पूंजीवादी व्यवस्था या धर्मतंत्री व्यवस्था होती है। इसमें फोक (जन) का पूर्ण निषेध होता है। वह 'फोक कल्चर' को प्रस्तुत नहीं करती है। वह कर भी नहीं सकती क्योंकि उसमें लोकधर्मिता का अभाव होता है। यदि वह लोकधर्मिता के तत्व से अनुप्राणित हो जाये तो उसका आभिजात्य खतरे में पड़ जायेगा। बात साफ है कि लोकधर्मिता के हटने पर संस्कृति कृत्रिमता, आरोपण, निष्क्रियता और स्थिरता के गर्व में गिर जाती है। उसकी 'ग्रेट ट्रेडीशन' या 'यूनीवर्सलाइजेशन' [32] की भावना की अनुपस्थिति अभिजन संस्कृति को पैदा करती है जिससे साहित्य , कला, जीवन, दर्शन आदि का रूप निष्प्राण होता है। मूल्यों से इसका सीमित सरोकार होता है जो सीमित तबके तक ही होता है। जाहिर है कि अभिजन संस्कृति अपनी जननी जन-संस्कृति को ही नकारती है।

अभिजन संस्कृति वैसे व्यापक जन-संस्कृति की धारा में अपनी एक खास भूमिका अदा करती है। एक दूसरे पर प्रभाव डालने की प्रक्रिया में यह अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये जो कुछ भी सम्भव हो सकता है, करती है। भ्रम, अनिश्चय, मूल्यहीनता, व्यक्ति पूजा के वातावरण के निर्माण में वह कभी त्यागी, कभी कृत्रिम जनहितैषी, कभी अभिजात्य वर्ग के रूप में प्रस्तुत होती है। जन-संस्कृति की शक्तिमत्ता से आक्रान्त अभिजन संस्कृति अपने व्यक्तिवादी स्वरूप को ढकने के लिये अनेक मुखौटे अपनाती है। इन्हीं से सावधान रह कर लोक सामान्य यदि असलियत को सामने ले आता है तो अभिजन संस्कृति के संवाहकों की पराजय होती है। बौद्धिकता को अक्सर अवांछित की संज्ञा दी जाती है और संस्कृति संकट [33] का प्रसार-प्रचार होता

है। यह असंगत और गलत है क्योंकि जन-सामान्य का बौद्धिकता से घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। उदाहरण के लिये जन द्वारा निर्मित चित्र संस्कृति सर्जना का अंग माना जाता है। पर बौद्धिक कहलाने वाले इंजीनियर की डिजाइन का कहीं ठौर ठिकाना नहीं होता। यहाँ बौद्धिकता चित्रकार के साथ सघन रूप से संपृक्त है और वह लोक धर्मिता की पक्षधर है।

इस प्रकार समस्त क्रिया व्यापारों में संस्कृति लोकधर्म की ही संवाहक होती है अतः लोक धर्मिता को संस्कृति की समृद्धि और विकास के निमित्त आवश्यक तत्व मानना होगा। लोकधर्मिता जहाँ भी होती है वह साहित्य या कला अमर या शाश्वत हो जाता है। जिस संस्कृति, साहित्य, कला, जीवन दर्शन, भाषा और संस्कारों में लोकधर्मिता के तत्वों का अभाव होता है वे मृत हो जाते हैं। इसके विलोम में लोकधर्मिता से संपृक्त होने पर वे विशिष्ट वर्ग से दूर स्थालोक की आत्मा के रूप में स्थाई महत्व के हो जाते हैं। निष्कर्ष यह है कि लोकधर्मिता को काटकर संस्कृति संस्कृति नहीं रह जाती है।

संस्कृति के नियामक तत्वों में भाषा, साहित्य, कलायें, संस्कार, रीति-रिवाज और जीवन दर्शन को परिगणित किया जाता है। 'इतिहास से हमें संस्कृतियों की विविधता मिलती है जिसका निरूपण विभिन्न जातीय तथा स्थान सम्बन्धी मानव समुदायों में हुआ है और जिन पर किसी कौम के इतिहास की तथा एक निश्चित भौगोलिक तथा सामाजिक वातावरण में उसके जीवन की छाप होती है।[34]

जालौन जनपद की सांस्कृतिक विवेचना के पूर्व में उसके भाषा एवं साहित्य सम्बंधी प्रकरण पर भी विचार करना होगा। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में पश्चिमी हिन्दी से

प्रादुर्भाव 'बुन्देली' बोली का व्यवहार दृष्टिगोचर होता है इसके विकास का क्रम इस प्रकार है :-

जालौन जनपद झाँसी जनपद के उत्तर में स्थित है। इनकी पूर्वी सीमा पर निभट्टा एवं लोधन्ती बोलियाँ प्रचलित है शेष भाग में प्रामाणिक बुन्देली का प्रभाव है। मध्य जालौन 'ऐ' 'औ' की अपेक्षा 'ए' एवं 'ओ' का प्रयोग होता है।[36] पश्चिमी जालौन में मुख्य अन्तर उच्चारण के विवृत होने में है। 'ए' तथा 'औ' का 'ऐ' एवं 'औ' को कर्म सम्प्रदान के चिन्ह स्वरूप कों काँ कौं, हौ चल्यौ, गअउ, की, करौ तथा बड़ों का प्रयोग होता है। सर्वनामों में 'वह' तथा 'यह' क्रमशः बउ एवं जउ हो जाते है।[37] अन्यत्र डॉ. ग्रियर्सन ने प्राचीन एवं सांस्कृतिक बुन्देलखण्ड की दक्षिणी सीमा नर्मदा नदी तक मानी है।[38] सुप्रसिद्ध भाषाविद्[39] का मन्तव्य भी यहाँ दृष्टव्य है :-
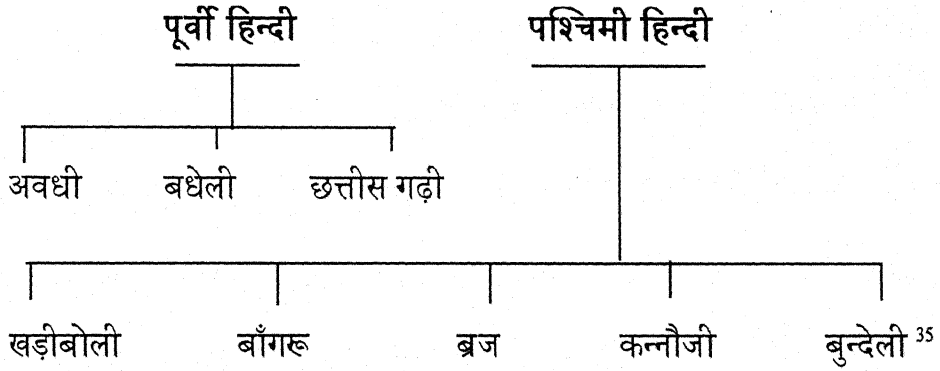
'बुन्देली बुन्देलखण्ड की बोली है। शुद्ध रूप में यह झाँसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, ओरछा, सागर, भोपाल, नरसिंहपुर, सिवनी तथा होशंगाबाद में बोली जाती है। इसके कई मिश्रित रूप दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट तथा

छिंदवाड़ा के कुछ भागों में पाये जाते हैं।'इसके बोलने वालों की संख्या लगभग 80 लाख है। यह ओकार बहुला है। मूल बुन्देलखण्डी में अब काव्य सर्जना की जा रही है। इसका लोक-साहित्य यत्र-तत्र विपुल राशि में अपने उद्धार की प्रतीक्षा कर रहा है।[40]

जनपद जालौन का साहित्यिक परिचय

साहित्य दो रूपों में दृष्टिगोचर होता है। प्रथम है शिष्ट साहित्य तथा द्वितीय है लोक साहित्य। इन दोनों ही रूपों में लोक कल्याण की भावना सन्निहित रहती है। कहा भी गया है-'स हितेन साहित्यम्' । इस प्रकार सच्चे अर्थ में ज्ञानराशि के समुच्चय को ही साहित्य की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। सच्चिदानन्द ब्रह्म की भाँति साहित्य में तीनों तत्त्व सत्, चित और आनन्द समाविष्ट रहते हैं। इसीलिए उसे सत्यं, शिवं और सुन्दरम् से युक्त माना जाता है। कविवर सुमित्रानन्दन पंत के मतानुसार -

'वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप, हृदय में बनता प्रणय अपार।
लोचनों में लावण्य अनूप , लोक सेवा में शिव अविकार ॥'

जालौन जनपद की साहित्यिक स्थिति आदि काल से ही समृद्ध है। महान साहित्यकार श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास और वाल्मीकि के पश्चात कालपी के श्रीपति सत्रहवीं शताब्दी में हुए थे, जिनका प्रभाव रीतिकाल के प्रमुख आचार्य भिखारीदास पर भी पड़ा था। इसके अतिरिक्त कालपी के रसिकेन्द्र, प्रसिद्ध निबन्धकार ब्रजमोहन वर्मा, कृष्ण बलदेव वर्मा का भी महत्व कम नहीं है। उरई में 'हनुमत्पताका', 'गंगा गुणमंजरी' एवं 'छविरत्नम' के प्रणेता कालीदत्त नागर 'काली' कवि रीतिकालीन काव्य परम्परा के एक सिद्धहस्त कवि हो गए हैं। पं. गोरेलाल तिवारी, दीवान

शत्रुघ्न सिंह, पं. चतुर्भुज शर्मा इत्यादि इस जनपद के सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक हैं। शैलेन्द्र कुमार सिंह ने इस परम्परा को और आगे बढ़ाने का प्रयास किया है। ठाकुर धनूसिंह यहाँ के प्रथम कोशकार हैं। नाथूराम 'फोकस' ने हास्य-व्यंग्यात्मक काव्य सर्जना करके इस जनपद का नाम रोशन किया। जहाँ डॉ. आनन्द एवं कृष्ण विद्रोही ने वीररस की धारा प्रवाहित की वहीं पं. शिवानन्द मिश्र 'बुन्देला' एवं पं. राम मोहन शर्मा 'मोहन' ने राष्ट्रीय विचारधारा से परिपूरित उत्कृष्ट एवं प्रेरक साहित्य का सृजन करके जनजागरण का शंख फूँका।

जिस प्रकार वैदिक तथा लौकिक संस्कृत से जो पवित्र तोया पयस्विनी प्रवाहित हुई, उसमें अनेक ख्यात कवि एवं साहित्यकारों ने अपने को स्नात करके कृतकृत्य माना ठीक उसी प्रकार पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश की भी अपनी एक अनुपम अक्षुण्ण्य धारा इस क्षेत्र में प्रवाहित हुई। संस्कृत के मूर्धन्य महाकवि श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास ने इसी जनपद की धरती पर कलित कालिन्दजा के रम्य तट पर बैठकर न केवल 'महाभारत पुराण' की रचना की अपितु अन्य सप्तदश पुराण तथा अष्टादश उपपुराणों का वृहद वाङ्मय प्रणीत किया। महाराज वेदव्यास के पिताश्री पराशर ने लघु पाराशरी एवं वृहत् पाराशरी (ज्योतिष शास्त्र) रचकर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया। इसी क्रम में आज भी इस जनपद के अनेक कवि संस्कृत काव्य तथा साहित्यधारा को प्रवाहमान किये हुए हैं। इनमें उरई के बालमुकुन्द शास्त्री, पं. राजाराम शास्त्री एवं कोंच के पं. रामनाथ चतुर्वेदी, पं. तुलसीराम चौबे, पं. गयादीन चतुर्वेदी, पं. कालीचरण दीक्षित, पं. जुगलकिशोर चतुर्वेदी (पिण्डारी), पं. सूर्यप्रसाद पटैरिया(जालौन), पं. राधाचरण खेमरिया (जालौन), पं. महादेव प्रसाद उपाध्याय

(रामपुरा), पं. विश्वनाथ चतुर्वेदी (इटौरा), पं. रामदत्त त्रिपाठी (पढ़कुला जालौन) एवं सरावन जालौन निवासी पं. हरिनारायण दीक्षित उल्लेख्य हैं। पं. शालिग्राम शास्त्री उरई तथा विवेकानन्द श्रीवास्तव उरई वर्तमानकाल में भी इस काव्यधारा को गौरवपूर्ण ढंग से अग्रसर किये हुए हैं।

पालि, प्राकृत, अपभ्रंश की उपत्यकाओं से निःसृत पूर्वी हिन्दी एवं पश्चिमी हिन्दी के तट निस्संदेह प्रणम्य हैं जिनमें राष्ट्रभाषा हिन्दी का अथाह और विमल जल इस भूखण्ड को संतृप्त कर रहा है। अकबर के नवरत्नों में से एक बीरबल (उपनाम 'ब्रह्म' तथा राशिनाम महेशदास दुबे) तथा वंशगोपाल बंदीजन जालौन जनपद के विशिष्ट एवं उल्लेख्य कवि हैं। तदनन्तर कालपी के ही आचार्य श्रीपति मिश्र ने इस काव्य परम्परा को अग्रसर करने का श्रेय प्राप्त किया। इनके लगभग दस ग्रंथ चर्चित रहे हैं। कोंच में जन्में फत्तेसिंह (कायस्थ)जिनका रचनाकाल लगभग सं. 1760 है तथा जो पन्ना दरबार के राजकवि थे, इसी जनपद के थे। दस्तूर मालिका के कवि कमलाजन कायस्थ (रचनाकाल सं. 1847), अभय मंजरी के रचयिता दुर्गाप्रसाद श्रीवास्तव अकोड़ी, वंशगोपाल बन्दीजन (रचनाकाल सं. 1730) तथा कालपी के वकील बाबू मुथुरा प्रसाद 'लंकेश' (जन्म-सं. 1899 तथा रचनाकाल सं. 1925) तथा कालीदत्त नागर (जो गुजराती ब्राह्मण थे तथा उनकी पत्नी का नाम अन्नपूर्णा था) इस जनपद के सुविख्यात तान्त्रिक एवं महाकवि थे। हनुमत पताका, गंगा गुण मंजरी तथा छविरत्नम इनके प्रकाशित काव्य ग्रंथ हैं। ये ग्रंथ सं. 1951 में वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित हुए थे। ऋतु राजीव, रसिक विनोद, कविकल्पद्रुम आदि इनके प्रमुख अप्रकाशित काव्य ग्रंथ हैं।

रामरत्न शर्मा 'रत्नेश' सुपुत्र श्री गिरधारी लाल गुबरेले कालपी, पं. शिवचरण लाल सारस्वत (1867-1936), रोशन सिंह बँगरा (जन्म सं. 1930), कोंच निवासी रामचरण लाल, पं. नाथूराम शुक्ल 'सेवक'(जन्म-सं. 1941), कोशकार मुंशी धनूसिंह (उपनाम-वीरेन्द्र), 'फड़ साहित्य' के प्रणेता कोंच निवासी मोहनलाल दाऊ तथा मन्नूलाल चौधरी आदि के नाम भी काव्य सर्जना के क्षेत्र में उल्लेख्य हैं। यहाँ लोक साहित्य भी प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है। आवश्यकता है सुयोग्य शोधकर्ताओं के कुशल हाथों की जो इस पर पड़ी हुई धूल को झाड़-पोंछकर उसे प्रकाश में लाकर उसका अभिनव मूल्यांकन कर सकें।

काली कवि के शिष्य एवं राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के बहनोई द्वारिका प्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र' कालपी(1889-1943 ई.) यहाँ की अनूठी काव्य प्रतिभा थी। इनके लगभग 18 ग्रंथ अब तक जानकारी में आ चुके हैं। पं. बेनीमाधव तिवारी (आटा), कालीचरण दीक्षित 'फणीन्द्र' कोंच(1893-1942 ई.), पं. रामनाथ चतुर्वेदी 'विप्र'(सं. 1953-1992), पं. भगवानदास भट्ट इटौरा, रामसहाय पटसारिया कोंच समकालीन कवि के रूप में उल्लेख्य माने जाते हैं। फाग साहित्य के प्रणेताओं में बज़ीर अहमद 'वज़ीर', जगदेव सहाय 'जगदेव' तथा रामकिशुन विशेष रूप से चर्चित रहे हैं। सन् 1900 में जालौन में जन्मे डॉ. आनन्द, नीति साहित्य के प्रणेता कविवर दीनानाथ 'अशंक'(जो लोधी परिवार में सम्वत् 1958 में पहाड़गांव-जालौन में जन्मे), सरयूप्रसाद शास्त्री(पहाड़गांव, सं. 1990), पं. मोहनलाल शांडिल्य कोटरा, जालौन (जन्म सं. 1960), पं. कमलानन्द कंज(दहगंवा, जालौन, जन्म सं. 1960), चुर्खी निवासी रामेश्वर दयाल 'श्रीकर'(जन्म सं. 1961), पं. शिवसहाय स्वामी

'आरण्यक'(जन्म सं. 1965), हास्य व्यंग्य के श्रेष्ठ कवि गांधीराम 'फोकस', पं. दशराम मिश्र 'कक्काजू' दहगुवां जालौन (ज.सं.1967),'मित्रबंधु' के नाम से 'शिवशतक' तथा 'वनवास' काव्य के प्रणेता लाला केदार नाथ कोंच(ज.सं. 1965), श्रीनिवास सक्सेना'नीरस' उरई (ज.सं. 1966), भगवानदास शुक्ल 'दास' कोंच(सं. 1969-2042), शम्भूदयाल 'शशांक'(ज.सं. 1970), स्वतंत्रता सेनानी महाकवि शिवराम श्रीवास्तव 'मणीन्द्र' उरई (ज.सं. 1968), लक्ष्मीनारायण मित्तल 'अमौलिक' जालौन (ज.सं. 1969), पं. प्रभूदयाल द्विवेदी कोंच(ज.सं.1969) तथा कन्हैयालाल मिश्र 'कमलेश'(ज.सं. 1970) भी इस धारा के अप्रतिम कवि हैं। जनपद के श्रेष्ठ गीतकारों में रामेश्वर दयाल श्रीवास्तव 'प्रमत्त'(ज.सं.1970), धीरज सिंह सिकरी-जालौन (ज.सं. 1971), पं. बालकृष्ण शर्मा 'विकास'(ज.सं. 1972 उरई), सुन्दर लाल 'सुन्दर' कोटरा, सूर्यप्रकाश दीक्षित उरई, कु. विमला सक्सेना उरई (सन् 1919-1943), ब्रह्मानन्द मिश्र 'मीत'दहगुवां जालौन(ज.सं. 1977), रामबाबू अग्रवाल, आचार्य भागीरथ सिंह नूरपुर जालौन, राजाराम पाण्डेय जालौन, मोरध्वज प्रलयंकर उरई, लक्ष्मण गणेश दीक्षित रागी उरई, विजय कुमार पाण्डेय उरई, मुन्नालाल नामदेव उरई, वन्दना सिन्हा कालपी, अश्विनी कुमार मिश्र उरई, मुहम्मद नईम कोंच, पं. गयाप्रसाद 'अरविन्द'कुठौन्द-जालौन, पं. रामाधार शर्मा 'नूतन', शम्भूजी श्रीवास्तव, सच्चिदानन्द मिश्र 'कुसुमाकर', पं. शालिगराम चतुर्वेदी, रामगोपाल राजौरिया 'भृंग', कृष्ण दीक्षित 'विद्रोही', रामस्वरूप 'सिन्दूर', दिनकर शुक्ल, बद्रीप्रसाद पांचाल 'योगेश', यज्ञदत्त त्रिपाठी, मदन गोपाल तिवारी, सत्यनारायण गुबरेले, योगेश्वरी प्रसाद 'अलि', डॉ. दिनेश चन्द्र द्विवेदी, अनिल मित्तल, शिखा

गर्ग, गोपाल प्रसाद 'पंकज', शारदा प्रसाद उदैनिया 'मनोज'(कोंच), गोविन्द प्रसाद चतुर्वेदी, शिवानन्द मिश्र 'बुन्देला', राधेश्याम दाँतरे (कोंच), श्याम सुन्दर गुप्त(उरई), अवध बिहारी लोहिया'कण' (कोंच), रामरूप पंकज कोंच, परमात्मा शरण शुक्ल 'गीतेश' उरई, रवीन्द्र शर्मा जालौन, नीलम कश्यप जालौन, पं. राममोहन शर्मा 'मोहन', वजरंग विश्नोई कालपी, अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद', कृष्ण दयाल सक्सेना 'निस्पृह', राधेश्याम योगी जालौन, हरिश्याम पारथ उरई, हरिनारायण श्रीवास्तव 'विकल' जालौन, महेन्द्र पाटकार जालौन, आदर्श प्रहरी उरई, श्याम सुन्दर श्रीवास्तव 'कोमल' कालपी, प्रदीप दीक्षित उरई, रामजी सक्सेना, डॉ. अलका नायक, डॉ. वीणा श्रीवास्तव, डॉ. रेनू चन्द्रा, विनोद भावुक उरई, सुशील श्रीवास्तव 'फर्जी' जालौन, विनोद गौतम, कुँवर अभिमन्यु सिंह, गिरधर खरे, अर्जुन सिंह 'चाँद', प्रदीप श्रीवास्तव, मायासिंह, असित मित्तल, रविशंकर मिश्र उरई, नासिर अली 'नदीम' जालौन, डॉ. नीलम मुकेश, निर्मला शर्मा, सुशीला मिश्रा, कुसुमांजलि शर्मा, मिथलेश तरसौलिया, विवेकानन्द श्रीवास्तव, असीम मधुपुरी आदि उल्लेख्य हैं। इनके अतिरिक्त डॉ. रामस्वरूप खरे, कैलाशनाथ प्रियदर्शी, संतोष दीक्षित एवं सिद्धगोपाल मिश्र 'सुधाकर' आदि ने अन्यान्य जनपदों से आकर इस जनपद के काव्य वैभव को उच्चतम शिखरों तक पहँचाया। निस्सन्देह इन सबकी सारस्वत साधना एवं अवदान अप्रतिम है।

'कदौरवी', बेख़ुद, हकीम अब्दुल रब साहब, मुहम्मद फ़ारूक़ वफ़ा, शिफ़ा युसुफी, अब्दुल रहीम अख़्तर, युसुफ इश्तियाक़, शमीम अंसारी, अली इश्तेयाक साहेब, बाबू खाँ 'पागल', हफीज़ अंसारी, सिराज़ तनवीर, ओमप्रकाश श्रीवास्तव

'नदीम', ज़मील अहमद खाँ 'अंजुम', मौला रजीउर्रहमान, तपिश सिद्दीकी, अली अख्तर आब्दी, मुहम्मद मुवीन, मसूद आलम कुदारी, जावेद कुदारी, शरीफ़ अंसारी, रसूल अहमद सागर रामपुरा, शफीक उर्रहमान 'कश्फी' उरई इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सभी शायरों ने हिन्दी में भी काव्य सर्जना की है।

इस प्रकार इस जनपद में गंगा-जमुनी तहज़ीब को संवारते हुए अनेक कवियों, कवयित्रियों और शायरों ने अपना पूरा-पूरा योगदान दिया है। इससे यह जनपद अमन-चैन और साम्प्रदायिक सद्भाव की मिसाल बना हुआ है।

'गद्यं कवीनां निकषं वन्दन्ति' के अनुसार गद्य विधा लेखन का निकष अर्थात कसौटी मानी जाती है। जनपद के गद्यकारों में सर्वप्रथम ऊमरी जालौन निवासी ठाकुर छोटेलाल का नाम स्मरण आता है जिन्होंने संवत् 1978 में 'पतिव्रता द्रोपदी' उपन्यास लिखकर प्रकाशित कराया। इस उपन्यास लेखन की परम्परा में राधेश्याम दाँतरे द्वारा प्रणीत 'वसुन्धरा', 'प्याज की परतें', गोपाल नारायण राही का 'काँटों के फूल', इमामउल्ला खाँ गौरी का 'शिकस्त डाकू' तथा 'बदनसीब माँ', कुसुमांजलि शर्मा के 'टुकड़ों में बात' (कहानी संकलन), 'सीपी भर सुख' तथा 'गाँव का देवता' (बाल उपन्यास), गोपालपुरा निवासी वशीर अहमद 'विनय' ने 'राजनर्तकी' उपन्यास लिखा। विनेन्द्र स्वरूप सक्सेना 'दीपेश' उरई के 'रानी मार्गो' तथा 'अमलतास' उपन्यास भी उल्लेखनीय हैं। इसके अलावा महिला कथाकारों व उपन्यासकारों में उषा सक्सेना, प्रतिभा जौहरी, इन्दिरा स्वरूप आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेख्य हैं।

मूलचन्द्र अग्रवाल कोटरा वालों की 'एक पत्रकार की आत्मकथा' तथा चतुर्भुज

शर्मा उरई द्वारा प्रणीत 'विद्रोही की आत्मकथा' इस जनपद के आत्मकथा साहित्य की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। शोधपरक लेखों के लिए डॉ. जयदयाल सक्सेना, डॉ. रामशंकर द्विवेदी, डॉ. राजेन्द्र कुमार पुरवार, डॉ. हरीमोहन पुरवार, डॉ. भगवान सिंह सेंगर, डॉ. दिनेश चन्द्र द्विवेदी, समीक्षा दर्शन के प्रणेता डॉ. नारायणदास समाधिया डी. लिट., डॉ. कृष्णजी डी.लिट., रणवीर सिंह सेंगर, डी.के. सिंह, मुंशी सहाय श्रीवास्तव जालौन, डॉ. सुरेखा नायक, डॉ. जयश्री पुरवार, डॉ. आदित्य कुमार, डॉ. शारदा अग्रवाल, डॉ. जगदीश प्रसाद पचौरिया, डॉ. गोविन्द सिंह निरंजन, डॉ. राजेन्द्र कुमार निगम, डॉ. अभय कुमार सक्सेना, डॉ. अशोक कुमार यादव, डॉ. विजय कुमार यादव, डॉ. रामकिशोर गुप्त पहारिया, डॉ. रामभरोसे सिंह सेंगर, डॉ. वीणा श्रीवास्तव, डॉ. दुर्गाप्रसाद श्रीवास्तव डी.लिट., डॉ. श्रीमती कमला गुप्ता आदि सदैव स्मरण किये जायेंगे।

जालौन जनपद में शिष्ट साहित्य के अन्तर्गत बहुत कुछ है। जो भी प्रकाशित हो सका वह तो न के बराबर है। प्रचुर परिमाण में यह साहित्य अब भी गाँव-गाँव में विद्यमान है। इसको उजागर करने के लिए इसकी समुचित खोज और प्रकाशन व्यवस्था परमावश्यक है। अनेक साहित्यकार ऐसे हैं जो अर्थाभाव के कारण अपनी श्रेष्ठ कृतियों का प्रकाशन अद्यावधि नहीं करा सके हैं। यदि ऐसा प्रयास नहीं किया गया तो ये अमूल्य सारस्वत धरोहर काल के गर्त में समा जायेगी।

पत्रकारिता एवं संपादकीय लेखों के लिए बाबू कृष्ण बलदेव वर्मा एवं ब्रजमोहन वर्मा (दोनों ही कालपी निवासी) के नाम स्मरणीय एवं उल्लेखनीय हैं। हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में भी इस जनपद का अनूठा योगदान रहा है। आवश्यकता है

प्राचीन समाचारपत्र-पत्रिकाओं का संग्रह करके उनमें प्रकाशित सामग्री के पुनः प्रकाशित कराये जाने की, ताकि नयी पीढ़ी भी उससे लाभान्वित हो सके। यहाँ के ग्रामीण अंचल में आज भी अनेक महत्वपूर्ण पांडुलिपियाँ इधर-उधर अव्यवस्थित रूप से पड़ी हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से उनकी देखरेख के साथ-साथ उनका संकलन, अध्ययन, शोध और सुरक्षा परमावश्यक है। मैंने स्थानीय बुन्देलखण्ड संग्रहालय, भरत चौक उरई में बहुत सी ऐसी सामग्री देखी है जो अत्यन्त मूल्यवान है। बहुत से प्राचीन और ऐतिहासिक महत्व के दस्तावेज और चिट्ठयाँ भी गाँवों में मौजूद हैं। दानपत्र, ताम्रपत्र, रियासती आदेश और प्रशस्तिपत्रों में भी साहित्य की किरणें उद्भासित होती हैं।

इस जनपद का लोक साहित्य यहाँ की ग्रामीण भाषा 'बुन्देली' में उपलब्ध है। लोकगीत के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के संस्कारगीत, पर्वगीत, जातीय गीत एवं बालक- बालिकाओं के क्रीड़ागीतों के साथ-साथ लोरियाँ अत्याधिक प्रसिद्ध हैं। यहाँ के देवी गीत, लाँगुरिया आदि बड़े ही मनमोहक हैं।

बुन्देली के प्राचीन कवियों में जगनिक, विष्णुदास, केशवदास, गोरेलाल, ईसुरी, पद्माकर, ठाकुर, बोधा, अग्रदास, अक्षर अनन्य, हरिसेवक मिश्र, मदनेश, काशी हंसराज, ब्रजबिहारी इत्यादि प्रसिद्ध हैं तो वर्तमान में इस परम्परा का निर्वाह करने वाले स्वनामधन्य गुणसागर सत्यार्थी, जलज, बुन्देला, अनुरागी, लक्ष्मीप्रसाद 'वत्स', अवधेश, प्रकाश, जानकी प्रसाद द्विवेदी, शिवप्रसाद चतुर्वेदी, रामचन्द्र भार्गव, शिवप्रसाद 'हरि', लोकनाथ द्विवेदी, रामस्वरूप हैयारण 'मित्र', सुधाकर शुक्ल, ज्वाला प्रसाद ज्योतिषी, संतोषसिंह, बाबूलाल, माधव शुक्ल 'मनोज' एवं दुर्गेश दीक्षित इत्यादि विख्यात हैं।

इस जनपद में बुन्देली लोकोक्तियाँ, मुहावरे और पहेलियाँ भी प्रचुर परिमाण में विद्यमान है। लोकोक्तियों के संदर्भ में यह अवतरण पठनीय है- 'लोकोक्तियाँ मानवीय ज्ञान के चुभते हुए सूत्र हैं। अनन्तकाल तक धातुओं को तपाकर सूर्य रश्मिाँ नाना प्रकार के रत्नों, उपरत्नों का निर्माण करती हैं जिना आलोक सदा छिटकता रहता है। इसी प्रकार लोकोक्तियाँ मानवीय ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिनसे बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है।' [41]

बुन्देली लोक साहित्य में घाघ, भड्डरी की लोकोक्तियाँ एवं कहावतें अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इनमें से कुछ दृष्टव्य हैं :-

अ. काँटो बुरौ करील कौ, घाघ बदरिया घाम।
सौत बुरी है चून की, औ साझे को काम॥

ब. प्रातकाल खटिया से उठकैं पियै तुरन्तै पानी।
ता घर वैद कभी ना जावै, बात घाघ है जानी॥

स. तीतर पंखी बादली, विधवा काजर रेख।
वा वरसै वा घर करै, या में मीन न मेख॥ [42]

इसी प्रकार मुहावरे भी हैं जिन्हें गाँव में परस्पर बातचीत करते हुए लोग अपनी बात को प्रभावी बनाते हैं। 'हिन्दी में लक्षणा अथवा व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य को 'मुहावरा' कहते हैं।' कतिपय मुहावरे दृष्टव्य हैं :-

अ. शिष्यत्व ग्रहण करने के लिए : 'कण्ठी बाँध लेना'

ब. कोसने के लिए : ' तेरी ठठरी बँधे'

साहित्य, संस्कृति, सभ्यता और लोक व्यवहार के ज्ञान प्रकाशन की क्षमता रखने

वाली अनबूझ बातें कठिन होने पर पहेलियाँ बन जाती हैं। बालक-बालिकाओं के साथ-साथ प्रौढ़ मनुष्य भी इनसे अपना मनोरंजन करके आश्चर्य प्रकट करते हैं। कुछ पहेलियाँ दृष्टव्य हैं :-

1. हाँती कौ मौं भारी पेट। **अर्थ** गणेश

2. दिन की भरी रात की रीती। **अर्थ** अरगनी

3. नाँय गई, माँय गई, चौंखरे सौ टाँग गई। **अर्थ** ताला

4. तनक सौ लरिका बम्मन कौ
   टीका लगायँ चन्दन कौ। **अर्थ** उड़द का दाना

5. जब हती मैं गोरी नारी तब सई मैंने मार।
   अब पैनी मैंने लाल घँघरिया अब सैंहों॥ **अर्थ** कच्ची-पकी गागर

लोकगीत :- ये अनाम कवियों द्वारा समाज में प्रचलित हो जाते हैं। डॉ. चिन्तामणि उपाध्याय अपनी सुप्रसिद्ध कृति 'मालवीय लोकगीत : एक विवेचनात्मक अध्ययन' के पृष्ठ 9 पर लिखते हैं -'लोकगीत सामान्य लोकजीवन की पार्श्वभूमि में अचिन्त्य रूप में अनायास ही फूट पड़ने वाली लयात्मक अभिव्यक्ति है।'

इसी प्रकार डॉ. सदाशिव फड़के का भी अभिमत है कि -'शास्त्रीय नियमों की परवाह न करके सामान्य लोक व्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपनी आनन्द तरंग में जो छन्दोबद्ध वाणी व्यक्त करता है, वही लोकगीत है।' [44]

कतिपय बुन्देली लोकगीत इस सन्दर्भ की पुष्टि में अवलोकनीय है :-

'आज दिन सोंनें को महाराज।

सोंनें कौ सब दिन सोंनें की रात, सौंनें कौ कलस धराओ महाराज॥

गउवा कौ गोबर मँगाओ मोरी सजनी, ढिक घर-आँगन लिपाओ महाराज ॥

ढिक घर-आँगन लिपाओ बारी सजनी, मुतियन चौक पुराबौ महाराज ॥'

बुन्देली की 'फागें'और 'गारी' लोकगीतों में सर्वाधिक मनोहारिणी होती हैं। दोनों के उदाहरण दृष्टव्य हैं :-

'पनियाँ भरन गई संग गई ननदी,

कुअला गई तौ संग गई ननदी,

ढीमर खों देख मचल गई ननदी।'[45]

- 'बनें दूल्हा छवि दखौ भगवान की, दुलिन्ह बनी सिय जानकी।'[46]

इसी प्रकार समूचे लोक साहित्य के संकलन, सुरक्षा और प्रकाशन की भी सुव्यवस्था होनी ही चाहिये। यदि शोधार्थी अपने-अपने क्षेत्रों में यह कार्य सम्पादित कर सकें तो बहुत सारा बहुमूल्य लोक-साहित्य उजागर हो सकता है।

नि:स्सन्देह शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य एक ऐसी जीवनदायिनी धारा के समान है, जिसमें अवगाहन करके प्रत्येक प्राणी ब्रह्मानन्द सहोदर की प्राप्ति करके स्वयं को कृतकृत्य कर सकता है।

इस प्रकार इस जनपद के शिष्ट और लोक साहित्य का भविष्य अत्यन्त समुज्ज्वल है। मुझे पूरा-पूरा विश्वास है कि यह धारा अनवरत रूप से प्रवहमान होती हुई न केवल इस जनपद का अपितु पूरे राष्ट्र का साहित्यिक भण्डार भरने में अप्रतिम सिद्ध होगी।

सन्दर्भ सूची

1. प्रगति दर्पण वर्ष 1987-88 पृष्ठ-2

2. अलबरूनी का भारत-अनु.संतराम, पृ. 28

3. हिस्ट्री आफ हिन्दू मेडीकल इण्डिया, भाग 2 पृ. 182

4. बुन्देली लोक गीत भाग 2 अप्रकाशित पृ. 337सम्पादक डॉ. रामस्वरूप श्रीवास्तव 'स्नेही'

5. वही पृष्ठ 337।

6. 1. इष एक पदी भव सामामनुव्रता भव।

   2. उर्जे द्विपदी भव सामामनुव्रता भव।

   3. रायस्योषाय त्रिपदी भव सामामनुव्रता भव।

   4. मायो भव्याय चतुष्पदी भव सामामनुव्रता भव।

   5. प्रजाम्य: पंचपदी भव समायनुव्रता भव।

   6. ऋतुभ्य: षटपदी भव सा माममनुव्रता भव।

   7. सखा सप्तवदी भव सा मामनुव्रता भव।

8. पिता यत्र दुहितु: सेकभृंजन् संशग्म्येन मनसा दधेन्वे, ऋ. 2/3/1।

9. 'साहोवाच यस्मै मां पिता दान्नैवाहं तं जीवन्तं हास्यामीति' शतपथ 4/1/5/9।

10. दृष्टव्य बृ. देवता 5/50/80।

11. हरदौल चरित्र , पृ. 7

12. तं वो दस्ममृतीशहं वसोर्मन्दानमन्धस:
    अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवा भहे। अथर्व 20/9/1

13. भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास : सत्यकेतु विद्यालंकार पृष्ठ 564

14. सरजार्ज इनवर्ट बी-इंडिया एण्ड दी पासिंग आफ एम्पायर पृ.-178

15. रजनी पाम दा-इंडिया टुडे एण्ड टुमारो पृष्ठ- 121

16 राष्ट्रीयता और समाज वाद, आचार्य नरेन्द्र देव पृ. 38

17. बुन्देली काव्य परम्परा, डॉ. बलभद्र तिवारी,पृ.-17

18. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, पृ.-531।

19. कांग्रेस का इतिहास भाग 2, डॉ. पट्टाभि सीतारमैया पृ.-149

20. बुन्देली काव्य परम्परा, द्वितीय खण्ड, डा. बलभद्र तिवारी, पृ.-26 .

21. बुन्देली लोक काव्य, भाग 3, डॉ. बलभद्र तिवारी पृ.- 271-72 .

22. मेन इन दी मार्डन एज, कार्ल यास्पर्स, पृ. 42-43

23. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डॉ. देवराज, पृ. 1,2,

24. द प्लेस आफ द थ्योरी आफ सिविलिजेशन इन द सोशियालाजी आफ कल्चर, डान मार्टिन्डेल, पृ.-37

25. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डा. देवराज, पृ. 148

26. द स्टडी आफ काम्पलेक्स कल्चर्स,टूवर्ड्स ए सोशियालाजी आफ कल्चर इन इण्डिया, प्रो. एस.सी. दुबे, पृ.-408 .

28. द स्टडी आफ काम्लेक्स कल्चर्स, प्रो. एस.सी.दुबे, पृ.-410-11 .

29. वही, पृष्ठ 413-14.

30. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डॉ. देवराज, पृ.-164 .

31. फोक कल्चर एण्ड ओरल ट्रेडीशन, श्री एस.एल. श्रीवास्तव पृ.-10.

32. वही, पृ. 10.

33. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डा. देवराज पृ.-1,2

34. ऐतिहासिक भौतिकवादी, ब. केलने और म. कोवाल जोन, पृ.-158-159

35. भाषाविज्ञान, डॉ. रामस्वरूप खरे, प्रथम सं. 1985 पृ. 125.

36. भारत का भाषा सर्वेक्षण खण्ड नौ डॉ. ग्रियर्सन, पृ.- 227.

37. वही, भाग 9, पृष्ठ 227

38. वही, भाग 9, पृष्ठ 86

39. हिन्दी भाषा का इतिहास, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 66

40. भाषा विज्ञान, डॉ. रामस्वरूप खरे, पृ.-128 .

41. राजस्थानी लोकोक्ति संग्रह : डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल , भूमिका भाग से

42. बुन्देली कहावत कोश : सम्पादक - कृष्णानन्द गुप्त, पृ. 9

43. त्रिपथगा (मार्च 1965) : पं. रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 30

44. लोक संस्कृति विशेषाँक, सम्मेलन पत्रिका , पृ. 250

45. स्वरूप फाग संकलन : डॉ. रामस्वरूप खरे, पृ. 9

46. स्वरूप गारी संकलन : डॉ. रामस्वरूप खरे, पृ. 7

द्वितीय अध्याय

जनपद जालौन का ऐतिहासिक अध्ययन

द्वितीय अध्याय

जनपद जालौन का ऐतिहासिक अध्ययन

यद्यपि जनपद के स्वरूप में तो जालौन का गठन सन् 1854 में हुआ किन्तु इसका इतिहास अनेक रोमांचकारी उतार-चढ़ावों की दिलचस्प घटनाओं से परिपूर्ण है। इतिहासविदों का मानना है कि वैदिक काल में यमुना नदी के उत्तर में आर्यों की बस्तियां थीं और दक्षिण में सघन वन। इनमें निवास करने वालों को दस्यु, यातुधान और राक्षस कहा गया है।[1] इसी क्षेत्र को आजकल जालौन जनपद के नाम से जाना जाता है।

यमुना के दक्षिण में आर्यों के प्रवेश की एक निश्चित नीति का आभास मिलता है। आर्यों का बुद्धिजीवी वर्ग, जो मुनि कहलाता था, वह सबसे पहले अपने कुछ शिष्यों के साथ दक्षिण में प्रवेश करके एकान्त स्थानों, जंगलों, नदियों के किनारे आश्रमों की स्थापना करता था। फिर जन साधारण आते थे और क्षेत्र पर अधिकार हो जाता था। आर्य सभ्यता के प्रचार-प्रसार के लिए जनपद में, कालपी में कालप तथा वेद व्यास का आश्रम, उरई में उद्धालक, आरुणि और उनके पुत्र श्वेतकेतु, परासन में पारासर तथा रोमई में यमुना तट पर लोमेश मुनि के आश्रम स्थापित हुए। जब आर्यों का बुन्देलखण्ड में प्रवेश हुआ, तो सबसे पहले इसी (जालौन) क्षेत्र की उपजाऊ भूमि में बसे।[2] जालौन जनपद तथा इससे लगे हुए क्षेत्रों में जो आर्य सबसे पहले आकर बसे वो चेदि थे।[3] चेदि देश यमुना से लेकर कुरू और मत्स्यदेश के मध्य में था। पुराणों तथा

महाभारत में वर्णित राजा ययाति ही इस क्षेत्र (जालौन) के प्रथम ज्ञात सम्राट हैं।[4] मनु के नाती ऐल पुरूरवा से जो वंश चला, वह चन्द्रवंश कहलाया। ऐल के पुत्र आयु, आयु के पुत्र नहुष तथा नहुष के पुत्र ययाति थे। राज्य के बँटवारे में ययाति के बड़े पुत्र यदु को चम्बल, बेतवा, केन नदियों की घाटियों वाला क्षेत्र प्राप्त हुआ था।[5] इससे कहा जा सकता है कि जालौन के क्षेत्र से यदु वंश का शासन ही समाप्त हो गया। परन्तु इक्ष्वाकु वंश की इकतालीसवीं पीढ़ी के अयोध्या के राजा सगर ने सम्पूर्ण उत्तर भारत पर अधिकार कर लिया।[6] इसी वंश के राजा कोशिका ने चेदिराज पर अधिकार कर लिया।[7] (चेदियों के ऊपर चलने वाला) की उपाधि धारण की।[8] जालौन जनपद का क्षेत्र उत्तराधिकार में वसु के पुत्र प्रत्याग्रह को प्राप्त हुआ।

महाभारत काल में कुरु वंश का शासन जालौन क्षेत्र से चेदि राजा शिशुपाल द्वारा समाप्त कर दिया गया था। उसकी राजधानी चन्देरी थी।[14] शिशुपाल का वध श्रीकृष्ण के द्वारा हुआ परन्तु चेदि राज्य महाभारत के युद्ध में पाँडवों के साथ रहा। शिशुपाल के पुत्र धृष्टकेतु तथा सरभ ने पाण्डवों का साथ दिया था। अतः कल्पना की जा सकती है कि महाभारत युद्ध के पश्चात जालौन क्षेत्र में चेदि राज्य ही रहा होगा।

ईसा से चार सौ वर्ष पूर्व जालौन जनपद का क्षेत्र महापद्म नन्द के अधिकार में आ गया था।[15] वह उत्तरी भारत का पहला महान सम्राट था, जिसके राज्य की सीमायें हिमालय से विन्ध्याचल तक थी।[16] ई. पू. 321 तक नंद वंश के शासक इस क्षेत्र को अपने अधिकार में किये रहे।

ई. पू. 321 में चन्द्रगुप्त मौर्य ने घनानन्द को हराकर मौर्य साम्राज्य की स्थापना की। चन्द्र गुप्त के साम्राज्य में नर्मदा के डार का समस्त भाग आ गया था।[17] अतः

जालौन का क्षेत्र भी मौर्य साम्राज्य में आ गया। मौर्य साम्राज्य काफी बड़ा था इसलिए उसे सुविधा के लिए चार भागों में बाँटा गया था। बिन्दुसार के समय में जालौन का क्षेत्र अवन्ति प्रान्त में था, जिसकी राजधानी उज्जैन थी। इस समय जालौन अशोक के आधीन था क्योंकि बिन्दुसार ने अवन्ति प्रान्त का राज्य कार्य अशोक को सौंप रखा था।[18] अशोक ही बिन्दुसार के बाद साम्राज्य का उत्तराधिकारी हुआ।

मौर्यों के पश्चात कुछ वर्षों तक जालौन का क्षेत्र शुंग राजाओं के आधीन रहा। मौर्य सम्राट बृहद्रथ का सेनापति पुष्पमित्र शुंग बौद्ध धर्म का विरोधी था। उसने बृहद्रथ को मार कर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। वैदिक साहित्य, तिब्बती तारानाथ तथा पाणिनी के मतानुसार शुंग ब्राम्हण थे।[19] हो सकता है पुष्पमित्र ब्राम्हण होने के कारण बौद्ध धर्म का विरोधी रहा हो। पुष्पमित्र ने अग्निमित्र को विदिशा का सूबेदार नियुक्त किया, जालौन का क्षेत्र इसी सूबे के अन्तर्गत था।[20] शुंग वंश का अन्तिम राजा देवभूति अत्यनत कामुक, विलासी तथा लम्पट था, उसको उसके मंत्री वसुदेव ने षड़यंत्र करके मरवा कर शुंग वंश का अन्त कर दिया।[21]

पहली शताब्दी के अन्त तक जालौन कुषाण साम्राज्य के आधीन हो गया था। कनिष्क कुषाण वंश का प्रतापी राजा था। जालौन क्षेत्र से कुषाण साम्राज्य का अन्त वासुदेव (150-176 ई.) के काल में हुआ। नरवर के पास पवाया के नागवंशी भारशिवों ने इस क्षेत्र से कुषाण साम्राज्य का अन्त करके एक नये साम्राज्य की नींव रखीं।[22]

चौथी शताब्दी में जालौन का क्षेत्र गुप्त वंश के अधिकार में आ गया था।[23] इस

वंश में कई प्रसिद्ध सम्राट हुए, जिनमें चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त, स्कन्दगुप्त आदि प्रमुख हैं। बुद्धगुप्त के समय में यमुना और नर्मदा के मध्य का शासन उसके मांडलिक रश्मिचन्द्र के पास था।[24] जिसके दो सरदार मातृविष्णु और धान्यविष्णु सारा राज्य संभाले थे।

समुद्रगुप्त के समय से ही हूणों के आक्रमण भारतवर्ष में होने लगे थे। हूण राजा तोरमण ने पाँच सौ ई. के लगभग यहाँ पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त की।[25] राजतंरगणी में तोरमण की विजयों का उल्लेख है। तोरमण के बाद उसका पुत्र मिहिरकुल गद्दी पर बैठा। 525 ई. तक मिहिरकुल ने पंजाब से ग्वालियर तक के क्षेत्र को अपने अधिकार में कर लिया था। इस प्रकार जनपद का इलाका भी उसके राज्य में ही था। मिहिरकुल ने अपना प्रभाव जालौन क्षेत्र में लगभग चालीस वर्षों तक कायम रखा।[26]

गुप्त वंश धीरे-धीरे कमजोर हो रहा था। इस कमजोरी का फायदा उठाकर मन्दसौर के राजा यशोधर्मन ने पश्चिमी मालवा में अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली थी। यशोधर्मन ने मिहिरकुल को हराकर इस क्षेत्र से भगा दिया।[27] यशोधर्मन का राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में ट्रावनकोर तक था। इससे प्रतीत होता है कि उसका राज्य जालौन के क्षेत्र में जरूर रहा होगा। यशोधर्मन के बाद हर्षवर्धन ने इस क्षेत्र पर 606 से 648 ई. तक राज्य किया।[28] हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद कुछ वर्षों तक का इतिहास अन्धकार में है। सम्भवतः 800 ई. में प्रतिहारों (परिहार) ने यहाँ अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था। इस वंश के प्रमुख राजा नागभट्ट और उसका नाती मिहिरभोज था। गुर्जर और परिहार जालौन के इलाके में शान्तिपूर्वक राज नहीं

कर सके। उनको राष्ट्रकूटों, कलचुरी राजाओं के आक्रमणों का सामना करना पड़ रहा था। चन्देल भी अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे।

चन्देल राजा हर्ष के पुत्र यशोवर्मन ने कन्नौज के परिहारों की युद्ध में सहायता की थी। अत: उनको चित्रकूट का क्षेत्र और कालिंजर का किला परिहारों से उपहार स्वरूप प्राप्त हुआ।[29] इन किलों के प्राप्त होने से चन्देलों की शक्ति बहुत बढ़ गई। कहने को तो जालौन का क्षेत्र परिहारों का था परन्तु वास्तविक रूप से यह चन्देलों के अधिकार में आ गया था।[30]

चन्देल वंश के संस्थापक ननुकर थे।[31] इस वंश के प्रमुख राजाओं में जयशक्ति, राहिला, हर्ष यशोवर्मन तथा धंग थे। धंग का राज्य पूरे बुन्देलखण्ड में था। कहा जाता है कि सौ वर्ष की आयु होने पर धंग ने गंगा, यमुना के संगम पर जल समाधि लेकर मृत्यु का वरण किया था।[32] धंग के बाद उसका पुत्र गंड इस क्षेत्र को अपने अधिकार में किये रहा। गंड के शासनकाल में मुसलमानों के आक्रमण भारतवर्ष में होने लगे थे। महमूद गजनवी के आक्रमणों का विरोध करने के लिए भारत के नरेशों ने एक संघ बनाया था। इस संघ में गंड भी शामिल था, इस कारण महमूद गजनवी ने चन्देल साम्राज्य में आक्रमण करके भारी लूटपाट की और लूट का धन लेकर लौट गया,अत: जालौन चन्देलों के आधीन बना रहा।[33]

चन्देल वंश में एक राजा परमार्दि देव हुआ (1165-1203) जिसको इस क्षेत्र में परमाल के नाम से जाना जाता है। परमाल के समय में उरई माहिल परिहार की राजधानी थी, जो चन्देलों के आधीन थे। परमार्दिदेव ने माहिल की बहिन मल्न्हा से विवाह कर लिया था। यही नहीं माहिल की दो अन्य बहिनों देवला तथा तिलका का

विवाह भी, माहिल की इच्छा के विरुद्ध अपने दो सरदारों दस्यराज और बच्छराज से करवा दिया था। परमाल ने माहिल को अपना मंत्री बना दिया था परन्तु इस पर भी माहिल का क्रोध शान्त नहीं हुआ था। वह अन्दर ही अन्दर परमाल से बदला लेने के लिए कूटनीतिक चालें चलकर उसको नीचा दिखाने का प्रयत्न करता रहता था। माहिल जैन धर्म को मानने वाला था [34] अतः खुद को युद्ध से अलग रखता था। दस्सराज और बच्छराज से माहिल के द्वेष का एक कारण यह भी था कि ये दोनों सरदार बनाफर जाति के थे और क्षेत्र में इस जाति की गिनती क्षत्रियों में नहीं की जाती थी, इसलिए इन विवाहों के कारण माहिल अपने को बहुत अपमानित महसूस करता था।

कनिष्क के शासनकाल में उसका बनारस का क्षत्रप बनस्पर था। बाद में बनस्पर महाक्षत्रप भी बना। बनस्पर के वंशज ही बुन्देलखण्ड में बनाफर कहलाने लगे। [35] चन्देलों के समय में अपनी वीरता तथा युद्ध कौशल के कारण ये प्रसिद्ध थे परन्तु समाज में ये निम्न कोटि के माने जाते थे। आल्हा खण्ड काव्य में इनको जगह-जगह 'ओछी जाति बनाफर क्यार' से सम्बोधित किया गया है। बुन्देलखण्ड में इनकी बोली बनाफरी कहलाती है।[36] कूटनीति के चतुर खिलाड़ी माहिल एक बार बिठूर के मेले में गये हुये थे। मेले में उनकी मुलाकात माधौगढ़ के राजा जम्मी से हुई। जम्मी अपनी बहिन के लिये मेले से कोई अमूल्य उपहार ले जाना चाहता था। माहिल ने जम्मी को सलाह दी कि यहाँ पर उपहार योग्य कोई वस्तु नहीं मिलेगी यदि उपहार देना ही है तो दसरापुरा गाँव में देवला के गले में पड़े नौलखा हार को प्राप्त करके ले जाओ। जम्मी ने आक्रमण करके दस्सराज और बच्छराज का वध कर दिया तथा नौलखा हार और अन्य

कीमती सामान जीतकर अपने साथ ले गया। यह माहिल की पहली कूटनीतिक सफलता थी, लेकिन ये सफलता पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं हुई क्योंकि माहिल की बहिन मलन्हा ने अपने पति परमाल को इस बात के लिये मना लिया था कि उसकी दोनों विधवा बहनें तथा उनके पुत्र आल्हा, ऊदल और मलखान वयस्क होने तक महोबा में राज परिवार के साथ रह सकें।

उद्दल अभी कम उम्र के ही थे जब वह शिकार खेलते हुये उरई की सीमा तक आ गये। प्यास से व्याकुल उद्दल को पनिहारियों ने पानी नहीं पिलाया इस पर उद्दल ने क्रोध में उनके घड़े फोड़ दिये। इस घटना की शिकायत माहिल के पुत्र अभयीं से की गई। अभयी अपने सैनिकों के साथ आकर ऊदल से युद्ध करने लगा। इस बात की खबर माहिल को भी लगी। माहिल ने घटना स्थल पर आकर युद्ध रुकवा दिया और व्यंग्यात्मक लहजे में कहा कि यदि वीरता ही दिखलानी है तो माधौगढ़ में दिखलाओ जहां के राजा ने तुम्हारे पिता को मारकर उनकी खोपड़ी को किले के मुख्य द्वार पर टांग रखा है।

आल्हा ऊदल ने माधौगढ़ को जीत कर अपने पिता की मौत का बदला ले लिया। इस विजय से राजा परमाल चन्देल तो खुश हुये परन्तु माहिल को इससे खुशी नहीं हुई और वह अन्दर ही अन्दर आल्हा, ऊदल और मलखान से शत्रुता रखने लगा और इनके विनाश के लिये प्रयत्नशील रहने लगा। माहिल को डर था कि कहीं ये चन्देल राज्य पर अधिकार ही न कर लें। उसने षड्यंत्र करके उसने दोनों भाइयों को महोबा से निकलवा दिया। इन भाइयों की वीरता से प्रभावित कन्नौज के राजा जयचन्द्र ने दोनों को अपने यहाँ शरण दे दी।

अजमेर और दिल्ली के राजा पृथ्वीराज चौहान और परमाल चन्देल में आपस में बड़ी शत्रुता थी। उरई नरेश माहिल ने इसका फायदा उठाया। उसने आल्हा, ऊदल की महोबा में अनुपस्थिति की सूचना पृथ्वीराज को दी और महोबा पर आक्रमण करने के लिये उकसाया। 1182-83 में पृथ्वीराज की सेना दिल्ली से चली।[37] अब परमाल को आल्हा ऊदल जैसे वीरों की कमी महसूस हुई। उसने अपने भाट जगनिक को दोनों वीरों को कन्नौज से वापस महोबा बुला लाने के लिए भेजा। पहले तो दोनों भाई आने के लिए तैयार नहीं थे। परन्तु अपनी माँ के कहने पर तैयार हो गये।

आल्हा की सेना ने कालपी पर यमुना पार करके हमीरपुर पर अधिकार कर लिया। उधर परमाल की सेना भी बेतवा के किनारे स्थित मोहाना (जालौन) नामक गाँव पर आ जुटी।[38]

उरई से लगभग चौदह मील पश्चिम तथा कोंच से दक्षिण पूर्व में दस मील की दूरी पर स्थित अकोढ़ी नामक गाँव के पास पृथ्वीराज तथा चन्देलों के मध्य हुए युद्ध में चन्देलों की भारी पराजय हुई।[39] माहिल की आँख के काँटे ऊदल सहित कई अन्य प्रमुख वीर इस युद्ध में मारे गये। इस प्रकार अपने पूर्वज नागभट्ट प्रतिहार की हार का बदला (जिसको 831ई. में नन्नक चन्देल ने हराकर चन्देल राज्य की स्थापना की थी) माहिल ने अपनी कूटनीतिक चालों के द्वारा लिया, क्योंकि इस युद्ध के बाद चन्देल शासक फिर कभी अपने पुराने वैभव को प्राप्त नहीं कर सके। कहा जाता है कि विजय की खुशी में पृथ्वीराज ने अकोढ़ी में एक जय स्तम्भ का निर्माण कराया था परन्तु अब उसका कोई निशान नहीं रह गया है।[40] इस युद्ध के बाद जालौन का बहुत बड़ा भाग पृथ्वीराज चौहान के आधीन आ गया।[41] उसने अपने सरदार पज्जूनराय को यहाँ का

शासक नियुक्त किया।[42] चौहान काल का एक कुआँ और पृथ्वीराज के सेनापति चामुण्डराय, जिसका जन्म स्थान कोंच था, द्वारा निर्मित कराया गया कोंच में एक तालाब अभी भी है।[43] चौहान इस क्षेत्र पर अपना अधिकार ज्यादा समय तक नहीं रख सके, क्योंकि तुर्कों के आक्रमण दिल्ली तक होने लगे थे। इस स्थिति का फायदा उठाकर चन्देलों ने एक बार फिर इस क्षेत्र पर थोड़ा बहुत अधिकार कर लिया। लेकिन चन्देल ज्यादा समय तक यहाँ अधिकार नहीं रख सके क्योंकि गोर के शासक शहाबुद्दीन मोहम्मद गोरी ने आक्रमण करके पृथ्वीराज चौहान को तराइन के युद्ध में हरा दिया। उसके प्रमुख गुलाम कुतुब्बुदीन ऐबक ने 1202-1203ई. में आक्रमण करके कालिंजर, महोबा और कालपी के किले पर अधिकार करके इस (जालौन) क्षेत्र में मुसलमानों का अधिकार स्थापित कर लिया।[44]

शासन की सुविधा के लिए ऐबक ने एक अफगान सरदार का मुख्यालय जगम्मनपुर के पास बनाया[45] तथा अपने गुलाम इल्तुमश के द्वारा इस क्षेत्र पर किसी प्रकार अधिकार बनाये रखा। वर्ष 1284 में गुलाम वंश के सुल्तान नसिरूद्दीन महमूद ने जिले में यमुना के दोनों किनारों की ओर मजबूती से अपनी सत्ता स्थापित करने में सफलता प्राप्त की।[46] लेकिन केन्द्रीय सत्ता के कमजोर रहने के कारण क्षेत्र के अधिकांश हिन्दू राजा अपने को स्वतंत्र मानते रहे। बुन्देलखण्ड में होने वाले विद्रोहों को दबाने के लिए बलवन को भी काफी परिश्रम करना पड़ा था, क्योंकि चन्देल तो थे ही, बुन्देलों का आगमन भी यहाँ पर हो गया था। खिलजी वंश के प्रमुख शासक अलाउद्दीन के शासनकाल में बुन्देलखण्ड के अधिकांश राजे पूर्णरूप से स्वतंत्रता का उपभोग कर रहे थे।[47]

फिरोज तुगलक (1351-1381) ने सर्वप्रथम कालपी में अपने अधिकारी का मुख्यालय बनाया।[48] तुगलक वंश के शासकों के समय में ही मंगोलों के आक्रमण भारतवर्ष में होने लगे थे। तैमूर के आक्रमण के समय कालपी की जागीर मलिक ताजिउद्दीन तुर्क के पोते मलिकजादा फिरोज के पुत्र मुहम्मद खाँ के पास थी।[49] वह तैमूर के आक्रमण के समय की अफरातफरी का फायदा उठाकर स्वतंत्र व्यवहार करने लगा और बहुत समय तक कालपी पर काबिज रहा। तुगलक वंश के पतन और दिल्ली में सैयद वंश का शासन स्थापित हो जाने पर मुहम्मद खाँ का पुत्र कादिर खाँ पिता के बाद 1426 में कालपी का शासक बना।[50]

सैयद वंश के शासकों के समय में जौनपुर के शर्की शासकों और मालवा के शासकों की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। दोनों राजवंश दिल्ली पर अधिकार के लिए आतुर थे। जौनपुर और मालवा दोनों जगहों से दिल्ली की दूरी अधिक थी। मध्य में एक ऐसे स्थान की आवश्यकता थी, जहाँ सेना स्थापित करके दिल्ली पर अधिकार किया जा सके। इस दृष्टि से कालपी सबसे उपयुक्त स्थान था, अतः जौनपुर के इब्राहिम और मालवा के अलप खाँ उर्फ हुसंगशाह, दोनों ने कालपी पर अधिकार करने का निश्चय किया।[51] सन् 1433-34 में जौनपुर और मालवा की सेनाओं ने कालपी पर अधिकार करने के लिए प्रयाण किया।[52]

दिल्ली में बादशाह मुबारकशाह को जब इसकी सूचना मिली, तो वह जौनपुर पर आक्रमण करने के लिए चल दिया। इस कारण इब्राहिम शर्की को सैन्य सहित अपने राज्य जौनपुर की रक्षा के लिए वापस लौटना पड़ा। इन सब घटनाओं का फायदा उठाकर मालवा के अलप खाँ उर्फ हुसंगशाह ने कालपी पर आक्रमण करके कादिर खाँ

को आत्मसमर्पण के लिए बाध्य कर दिया। दया करके अलपखाँ ने कादिर खाँ को कालपी का शासक बना रहने दिया परन्तु कालपी अब मालवा के सुल्तान की आधीनता में हो गई थी। दिल्ली, जौनपुर और मालवा के सुल्तानों की आपसी लड़ाई का फायदा उठाकर सन् 1443 के आसपास कादिर खाँ ने खुद को कालपी का स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया और कादिरशाह कहलाने लगा।

कादिरशाह के बाद उसका पुत्र नादिरशाह कालपी का शासक हुआ। नादिरशाह एक अयोग्य शासक था। उसके समय में प्रजा को बड़े कष्ट भोगने पड़े। उसने मुसलमानों पर भी बहुत अत्याचार किये , इससे वे भी नादिरशाह से नाखुश थे। कालपी के मुसलमानों के आग्रह पर जौनपुर के शासक महमूदशर्की ने मालवा के सुल्तान महसूमद खिलजी को नादिरशाह की करतूतों के बारे में सूचित किया और कालपी पर अधिकार कर लिया। नादिरशाह भागकर मालवा गया और सुल्तान महमूद खिलजी से प्रार्थना की कि कालपी की जागीर उसको दिलवाई जाय, क्योंकि कालपी की जागीर नादिरशाह को महमूद खिलजी के पिता हुसंगशाह द्वारा प्रदान की गई थी।

महमूद खिलजी ने जौनपुर के महमूद शर्की को कालपी की जागीर नादिरशाह को लौटाने के लिये कहा। नादिरशाह के पछतावा प्रगट करने पर महमूद शर्की ने गुजारे के लिए केवल राठ का इलाका देने का प्रस्ताव किया, जिसको महमूद खिलजी ने स्वीकार नहीं किया। 12 जनवरी, 1445 को जौनपुर और मालवा की सेनायें युद्ध के लिए एरच तक आ गई। परन्तु दोनों पक्षों में सन्धि हो गई और कालपी की जागीर पुनः नादिरशाह को दे दी गई।[53]

मालवा के शासक ज्यादा समय तक इस जिले (जालौन) पर अधिकार नहीं रख सके। वर्ष 1451 में बहलोल लोदी ने दिल्ली में सैयद वंश के शासकों को पराजित करके लोदी राज्यवंश की स्थापना कर ली। दिल्ली में पूर्ण रूप से अपने को स्थापित करने के बाद 1479 में उसने जौनपुर के शासक हुसेनशाह शर्की पर आक्रमण करके पराजित कर दिया। यही नहीं रास्ते में कालपी पर भी उसने अधिकार कर लिया।[54] अब यह जिला लोदियों के आधीन हो गया। बहलाल लोदी ने आजम हुमायूँ को कालपी की जागीर सौंपी।[55]

बहलोल लोदी के बाद सिकन्दर लोदी दिल्ली की गद्दी पर बैठा। सिकन्दर लोदी को दिल्ली में अफगान सरदारों के विरोध का सामना करना पड़ रहा था, क्योंकि उसकी माँ हिन्दू स्वर्णकार थी। अफगान सरदार कालपी के हाकिम आजम हुमायूँ को दिल्ली की गद्दी पर बैठाना चाहते थे। इस कारण सिकन्दर लोदी ने 1489 में कालपी पर आक्रमण करके,आजम हुमायुँ को परास्त करके महमूद खाँ लोदी को कालपी का हाकिम बनाया।[56]

1507 में महमूद खाँ लोदी की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र जलाल खाँ कालपी का अधिकारी हुआ। वर्ष 1508 में सिकन्दर लोदी ने अपने कालपी के सरदार जलाल खाँ को नरवर पर आक्रमण करने के लिये भेजा। नरवर के तोमर राजा ने हार नहीं मानी। जलाल खाँ एक वर्ष तक घेरा डाले रहा। सिकन्दर लोदी खुद जलाल खाँ की सहायता के लिए नरवर आया। नरवर में कालपी की सेना की तैयारी, मुस्तैदी और युद्ध कौशल से सिकन्दर बहुत प्रभावित हुआ। उसको जलाल खाँ से बड़ी जलन हुई तथा वह भयभीत भी हो गया। नरवर के घेरे के समय ही उसने जलाल खाँ को कैद

कराकर उदगिर के किले में भेज कर कालपी की जागीर अपने पुत्र को सौंप दी, जिसका नाम भी जलाल खाँ था।[57]

1517 में सिकन्दर लोदी की मृत्यु होने पर उसका बड़ा पुत्र इब्राहिम लोदी दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। दिल्ली में दरबारियों का एक गुट कालपी वाले जलाल खाँ के पक्ष में था जो इब्राहिम का छोटा भाई था। अफगान सरदारों ने साम्राज्य को दो भागों में बाँटने का निर्णय लिया , जिसके अनुसार दिल्ली इब्राहिम लोदी को और जौनपुर जलाल को दिया गया। दिल्ली में इब्राहिम के गद्दी में बैठते ही जलाल खाँ कालपी से जौनपुर चला गया। इधर दिल्ली में इब्राहिम के शुभचिन्तक खानजहाँ लोधी ने इब्राहिम को इस बंटवारे के दुष्परिणामों के बारे में समझाया। जलाल खाँ को जौनपुर से वापस दिल्ली बुलाने के लिए हैवत खाँ को भेजा गया। जलाल खाँ को दिल्ली की सब बातों का पता चल गया था। वह जौनपुर से तो चला पर कालपी में अपनी जागीर में रुक गया।

कालपी पहुँचकर जलाल खाँ ने अपने को स्वतंत्र घोषित करके अपने नाम का खुतबा पढ़वाया।[58] उसने नियामत खातून, इमादुल मुल्क, बदरुद्दीन जिलवानी और हरम के रखवालों को कालपी की सुरक्षा के लिए छोड़ा और खुद तीस हजार सैनिकों के साथ आगरे पर कब्जा करने के लिए प्रस्थान किया।[59] इधर इब्राहिम लोदी ने कालपी पर अधिकार करने के लिए आजम हुँमायूँ शेरवानी, नसीर खाँ नुहानी आदि प्रमुख सरदारों को रवना किया।[60] इस सेना ने कुछ समय में कालपी पर अधिकार करके भारी लूटपाट की। जलाल खाँ आगरे पर भी अधिकार नहीं कर पाया। मालवा में उसको पकड़ कर इब्राहिम के सामने पेश किया गया। इब्राहिम लोधी ने उसका वध

करवा दिया और कालपी की जागीर अलीखाँ को प्रदान कर दी।[61] कालपी का चौरासी गुम्बद लोदी बादशाह का मकबरा कहलाता है परन्तु किस बादशाह का है, इसकी कोई निश्चित सूचना नहीं है। 125 फीट ऊँचा यह मकबरा मुस्लिम स्थापत्य का एक सुन्दर नमूना जनपद में है।[62] इस जनपद से लोदी वंश के शासन का अन्त बाबर द्वारा पानीपत के युद्ध में इब्राहिम लोदी की पराजय के साथ हुआ।

21 अप्रैल, 1526 को पानीपत के युद्ध में इब्राहिम लोदी की मृत्यु और बाबर की विजय के पश्चात् जो अव्यवस्था हुई, उसका लाभ उठाकर अफगान सरदार आलम खाँ कालपी का शासक बन बैठा।[63] दिल्ली और आगरे के समीप के कुछ राजाओं को छोड़कर बहुत से राजा बाबर के विरुद्ध राणा सांगा के साथ हो गये थे। कालपी का आलम खाँ भी उनमें से एक था।[64] परन्तु आलम खाँ का स्वतंत्र राज्य का सपना एक वर्ष में ही टूट गया।

बाबर के पुत्र हुमाँयु ने जौनपुर पर अधिकार करने के पश्चात् लौटते समय कड़ा मानिकपुर में गंगा पार की और कालपी का रास्ता पकड़ा। कालपी के हाकिम आलम खाँ ने बिना युद्ध किये ही आधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार वर्ष 1527 में कालपी और उसके आसपास का बड़ा भाग मुगलों के अधिकार में आ गया था।[65] हुमाँयु कालपी से आलम खाँ को अपने साथ आगरा बाबर के पास ले आया। बाबर ने आलम खाँ को अभयदान देकर कालपी की जागीर उसके पुत्र जलाल खाँ को प्रदान कर दी।[66]

कालपी में बाबर दो बार आया। पहली बार चन्देरी अभियान के समय 28 दिसम्बर, 1527 को बाबर इस जिले के कनार[67] नामक स्थान पर फौज के साथ

पहुँचा। कनार से दो कोस की यात्रा उसने नाव से की और पहली जनवरी, 1528 को कालपी से एक कोस की दूरी पर विश्राम करके 2 जनवरी, 1528 को बाबर ने कालपी में प्रवेश किया।[68]

कालपी के आसपास इतना सघन वन था कि फौज, तोपें और भारी सामान ले जाने में बड़ी कठिनाई थी, अतः चार-पाँच दिन तक लगातार युद्धस्तर पर जंगल काटकर सेना, युद्ध सामग्री और रसद ले जाने के लिए रास्ता साफ किया गया। जब तक जंगल की सफाई का काम चला तब तक बाबर कालपी के हाकिम आलम खाँ का मेहमान रहा, जहाँ उसका बड़ा ही भव्य और आलीशान स्वागत किया गया। 7 जनवरी, 1528 को बाबर ने चन्देरी पर आक्रमण करने के लिए एरच के लिए प्रस्थान किया।[69] चन्देरी विजय के बाद वापस लौटते समय बाबर कालपी नहीं आया। वह भाँडेर के रास्ते सीधे कनार पहुँचा। यक्का ख्वाजा और जफर ख्वाजा को कालपी भेज कर कनार घाट पर सैन्य दल को नदी पार करने के लिए नावें लाने का भार सौंपा गया।[70] 22 फरवरी 1528 शनिवार को बाबर की फौज ने कनार घाट से नदी पार की। दूसरी बार बिहार और बंगाल की विजय के बाद लौटते समय कालपी से आगरा तक की यात्रा बाबर ने घोड़े से की थी। [71] बाबर के अनुसार कालपी का इलाका घने जंगलों का था, जहाँ हाथी भी थे। इन हाथियों को पकड़कर कड़ा मानिकपुर के बाजार में बेचा जाता था। बाबर के समय में कालपी परगना की राजस्व आय लगभग चार करोड़ अठ्ठाइस लाख थी।[72]

बाबर के बाद हुमाँयु दिल्ली का बादशाह हुआ। उसने कालपी की जागीर यादगीर नासिर मिर्जा को दे दी।[73] यादगीर नासिर मिर्जा बाबर के भाई नासिर मिर्जा का पुत्र

था। इसके नाम का इतिहास भी बड़ा दिलचस्प है। कहा जाता है कि जब यह माँ के गर्भ में था, तभी पिता नासिर की मृत्यु हो गई थी , अत: इसके जन्म पर अपने भाई की याद में बाबर ने लड़के का नाम यादगीर नासिर मिर्जा रख दिया था। हुमाँयु के शासनकाल में ही उसके सामन्त शेरशाह का भाग्योदय हो रहा था। उसने बंगाल और बिहार में अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। अब अपने पुत्र कुतुब खाँ को उसने मालवा से उत्तर भारत में मुगलों के खिलाफ़ मोर्चा संभालने के लिए भेजा। कालपी के पास हुए भीषण युद्ध में यादगीर नासिर मिर्जा और इटावा के हाकिम हुसैन खाँ उजबेक की सम्मिलित सेना ने कुतुब खाँ को पराजित कर दिया। इस युद्ध में कुतुब खाँ मारा गया।[74] 26 जून, 1539 को चौसा के युद्ध में शेरशाह ने हुमाँयु को पूर्णरूप से परास्त कर दिया। पराजय के बाद मुँह छिपाकर भागते हुए हुमाँयु का शेरशाह ने पीछा किया और रास्ते में कालपी पर अधिकार कर लिया।[75] सन् 1540 ई. तक इस जनपद पर शेरशाह ने पूर्णरूप से अधिकार करके अपने सैन्य दल स्थापित कर दिये।[76]

सन् 1540 में शेरशाह ने माँडू के शासक मल्लू खाँ को भी हरा दिया। मल्लू खाँ द्वारा आधीनता स्वीकार कर लेने पर शेरशाह ने कालपी की जागीर उसे सौंप दी।[77] कालपी का भार ग्रहण करने के लिए वह उज्जैन तक तो आ गया , परन्तु कठोर परिश्रम और मेहनत जो शेरशाह के यहाँ अनिवार्य थी, वह उसके बस की न थी अत: उसने भाग जाने का निश्चय किया। उसने कालपी तक अपने परिवार को ले जाने के लिए साधन न होने का बहाना बनाया। शेरशाह ने सुजात खाँ को सौ ऊट, सौ खच्चर और कई बैलगाड़ियाँ देने का आदेश दिया। यह साधन प्राप्त हो जाने पर मल्लू खाँ सबको अपने डेरे पर लाया। रात में उसने सबको शराब पिलाकर नशे में धुत कर

दिया और मौके का फायदा उठाकर धन-दौलत तथा परिवार सहित गुजरात की ओर भाग गया।[78]

शेरशाह की मृत्यु के बाद उसके परिवार के सदस्यों में झगड़े चलने लगे। इब्राहिम सूर ने इस समय कालपी पर अधिकार कर लिया। दिल्ली में आदिलशाह सूर ने सत्ता हथिया ली। उसने अपने सेनापति हेमू को कालपी पर अधिकार करने के लिए भेजा। हेमू ने इब्राहिम सूर को कालपी में हराकर वायना की ओर भगा दिया।[79] बंगाल से मोहम्मद शाह भी अधिकार करने के लिए कालपी तक आ गया परन्तु आदिलशाह और हेमू ने कालपी से बीस मील की दूरी पर छप्पर घाट पर हराकर भगा दिया।[80] सन् 1556 में अकबर द्वारा पानीपत के युद्ध में हेमू को परास्त कर देने से जालौन का क्षेत्र एक बार फिर मुगलों के अधिकार में आ गया।

अब्दुल्ला खाँ उजबेक हुमाँयु का दरबारी तथा कालपी की जागीर का अधिकारी था। हेमू से घबराकर वह कालपी से भाग गया था। अकबर ने पुन: इसको कालपी की जागीर देकर सुजात खाँ की पदवी प्रदान की।[81] कालपी में मुगलों का विरोध जारी था, अत: जब अकबर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की, उस समय कालपी से लगभग एक हजार बन्दूकची चित्तौड़ की रक्षा के लिए गये।[82] राणा उदय सिंह की ओर से लड़ते हुए इन बन्दूकचियों ने अपने अचूक निशाने से मुगल सेना को बहुत नुकसान पहुँचाया। चित्तौड़ की विजय पर अकबर ने कालपी के बन्दूकचियों को कठोर दण्ड दिये जाने का आदेश दिया परन्तु ये सैनिक पहले ही वेश बदलकर चित्तौड़ से निकल कर कालपी आ गये थे।[83]

अकबर के समय में पूरा साम्राज्य कई सूबों में बंटा था तथा प्रत्येक सूबे के आधीन

कई सरकारें होती थीं । जालौन जनपद का क्षेत्र आगरा सूबे में था। कालपी के आसपास का क्षेत्र जिसमें उरई, भदेख, कालपी, चुर्खी, कनार, मोहम्मदाबाद आदि सोलह परगने थे, ये सब कालपी सरकार में थे ।[84] इस जिले का पश्चिमी क्षेत्र कोंच, खकसीस आदि एरच सरकार में शामिल थे ।[85] कालपी में एक टकसाल भी स्थापित की गई, जहाँ पर ताँबे का सिक्का (दाम) ढाला जाता था ।[86]

अकबर ने एक समय कालपी की जागीर बैरम खाँ को देने का प्रस्ताव किया था जिसको उसने स्वीकार नहीं किया,अत: यह जागीर उसके पुत्र अब्दुल रहीम खानखाना को दे दी गई ।[87] अकबर के राज्यकाल में कालपी की जागीर के हाकिम कई बार बदले गये । वर्ष 1591 में यह जागीर अकबर ने कासिम अली को दी, जो पहले गाजीपुर की जागीर का अधिकारी था ।[88]

कालपी के महेशदास ने बीरबल के नाम से अपनी ख्याति दूर-दूर तक पहुँचायी । ये अपनी योग्यता से अकबर के दरबार में पहुँचकर अकबर के नौ रत्नों में से एक हुए । अकबर द्वारा इनको नागरकोट की जागीर और बीरबल की उपाधि प्रदान की गई ।[89] बीरबल का जन्म 1528 में कालपी में तथा मृत्यु 1585 में अफगान युद्ध में हुई । इनका शव भी नहीं मिला था । अकबर बीरबल की मृत्यु से बहुत दुखी हुआ । उसने अपना दु:ख इन शब्दों में व्यक्त किया था ।

'कदम दिल के अजीन वाकिया जिगर खूं ने अस्त ।

कदम दीदा के अजीन हादिसा जिगर खूने अस्त ।।[90]'

अकबर के समय में आगरा में कालपी के सैयद मूसा और सुन्दरी मोहनी का प्रेम प्रसंग बड़ी चर्चित घटना रही है । रणथम्भौर के आक्रमण में जाने के लिए कालपी के

प्रमुख सैयद का पुत्र सैयद मूसा कालपी से आगरा गया, वहाँ वह एक स्वर्णकार की स्त्री मोहनी के प्रेम में रम गया , लेकिन इन दोनों का प्रेम परवान नहीं चढ़ पाया। मोहनी से विवाह करने में असफल रहे मूसा ने इसी गम में अपने प्राण त्याग दिये। प्रेमी के विरह में सुन्दरी ने भी अपनी जान दे दी। इन दोनों प्रेमियों की कब्र आगरा और ताजमहल के मध्य एक टीले में अभी भी मौजूद है।[91]

अकबर के समय में ही कालपी में शेख हसन कालपी वाले नामक एक विद्वान रहते थे। फौजी की पुस्तक 'मवरिक उल्कालिम' में शेख हसन के कई पत्रों का जिक्र है। एक पत्र भी फैजी ने लिखा है कि जब आप आवें 'मकसद उधशोअरा' नामक ग्रन्थ अवश्य लेते आवें।[92]

आगरा से इलाहाबाद जाते समय अकबर कालपी में जागीरदार अब्दुल मतलूब खाँ का मेहमान बना।[93] यह पूरी यात्रा नाव से की गई थी। कालपी में अकबर को निरंजनी सम्प्रदाय के संत रोपण गुरु के बारे में पता चला, अतः उसने उनके दर्शन करने के लिए इटौरा[94] गाँव की यात्रा की और रोपण गुरु से मुलाकात की। अकबर ने वहाँ पर एक तालाब का भी निर्माण करवाया। तभी से यह गाँव इटौरा-अकबरपुर के नाम से जाना जाता है।[95]

जहाँगीर के समय में कालपी की जागीर तो अब्दुल्ला खाँ के पास रही, जिसने मधुकरशाह के पुत्र रामचन्द्र बुन्देला को हराकर तीन हजारी का मंसब जहाँगीर से प्राप्त किया।[96] परन्तु जहाँगीर ने कोंच की जागीर वीर सिंह बुन्देला को दे दी, जिसने जहाँगीर के कहने से अबुल अज़ल की हत्या करवा दी थी। इसी समय से यह कहा जा सकता है कि जिले के कोंच इलाके में मुगलों का प्रभाव घटने लगा और बुन्देले

प्रभावशाली होते चले गये,यद्यपि वे राजस्व मुगलों को देते रहे। शाहजहाँ ने जब अपने पिता जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह किया , तब अब्दुल्ला खाँ शाहजहाँ के साथ हो गये थे, इस कारण शाहजहाँ ने बादशाह होने पर अब्दुल्ला खाँ को कालपी का किलेदार बने रहने दिया।[97] लेकिन कुछ वर्षों बाद शाहजहाँ ने बहादुर खाँ रोहिल्ला को चार हजार का मनसबदार, दो हजार घोड़े और कालपी की जागीर प्रदान की।[98] शाहजहाँ के समय में कोंच की जागीर वीरसिंह बुन्देला के पुत्र जुझार सिंह के पास थी परन्तु उन्होंने विद्रोह कर दिया, इस कारण उनको अपनी जागीर से हाथ धोना पड़ा [99] इस प्रकार जालौन जिले में मुगलों का फिर से पूर्णरूप से अधिकार हो गया।

बुन्देलखण्ड में चम्पतराय बुन्देला की शक्ति बढ़ रही थी। चन्देलों की शक्ति जिस समय कम हो रही थी, लगभग उसी समय से जालौन के क्षेत्र में बुन्देलों का प्रभाव बढ़ना प्रारम्भ हुआ। बुन्देल कौन थे और ये बुन्देला क्यों कहलाये, इस बारे में विद्वानों की विभिन्न राय है। इतना तो तय है कि ये राजपूत थे और गहरवार क्षत्रिय वंश से इनकी उत्पत्ति हुई। [100] काशी से इस क्षेत्र में आकर यहाँ बसे। कुछ इतिहासकारों के अनुसार विन्ध्याचल देवी के उपासक होने के कारण विन्ध्येला कहलाये, यही शब्द बिगड़कर बुन्देला हो गया। ब्रजरत्नदास ने बुन्देलों का इतिहास नागरी प्रचारणी सभा पत्रिका भाग तीन पृ. सं. 420 में लिखा है कि विन्ध्याचल देवी को प्रसन्न करने के लिए अपने रक्त की बूंदों से देवी की आराधना की और वरदान प्राप्त किया, इसी कारण शायद ये बुन्देला कहलाये। जनपद जालौन में बुन्देलों का अधिकार वीरभद्र बुन्देला के समय में हुआ था, जो पंचम बुन्देला का अधिकारी था। वीरभद्र ने कोंच से दस मील पश्चिम में मऊनामक स्थान को अपनी राजधानी बनाकर मऊ

-मिहोनी राज्य को स्थापित किया।[101] वीरभद्र ने अफगान सरदार तातार खाँ को जगम्मनपुर के पास हराकर कालपी के आस-पास तक अधिकार कर लिया था[102] लेकिन ज्यादा समय यह तक अधिकार नहीं रहा। वर्ष 1225 में अर्जुनपाल बुन्देला मऊ-मिहोनी के राजा हुए थे,जिनकी तीसरी रानी से वीरपाल और देवपाल नाम के दो पुत्र हुए थे। वीरपाल के वंशज कोंच के पास ब्योना, देवगाँव आदि स्थान पर रहने लगे।

चम्पतराय बुन्देला मुगलों के क्षेत्र में भारी लूटपाट कर रहे थे। कालपी के सूबेदार अब्दुल्ला खाँ भी चम्पतराय को दबा नहीं सके। हारकर वर्ष 1642 में मुगलों ने चम्पतराय से दोस्ती कर ही ली। कन्धार के घेरे में चम्पतराय भी दाराशिकोह के साथ गये थे, जिसमें चम्पतराय के युद्ध कौशल की बड़ी तारीफ हुई। दारा शिकोह की संस्तुति पर शाहजहाँ ने कोंच और कनार की तीन लाख की जागीर चम्पतराय को दे दी।[103] ओरछा नरेश पहाड़ सिंह से चम्पतराय की यह तरक्की सहन नहीं हुई। दारा ने चम्पतराय की सेवाओं को भुलाकर कोंच-कनार की जागीर पहाड़सिंह को दी दी।[104] इस कारण दिल्ली की गद्दीदारी में चम्पतराय ने औरंगजेब का साथ दिया। इसी के प्रतिफलस्वरूप औरंगजेब ने कोंच-कनार की जागीर पुनः चम्पतराय को दे दी। बाद में औरंगजेब चम्पतराय से विमुख हो गया। चम्पतराय को अन्त समय तक मुगल सेना से जूझना पड़ा।

इस समय तक जनपद जालौन में बुन्देलों का प्रभाव कोंच-कनार के इलाके में ही कभी-कभी रहा था। परन्तु चम्पतराय के पुत्र छत्रसाल के रूप में बुन्देलों को एक नया नायक मिल गया था, जिसके समय में इस जनपद में मुगलों की सत्ता नाम मात्र की ही

रह गई थी। वस्तुत: पूरा जालौन छत्रसाल के आधीन आ गया था।

औरंगजेब का अधिक समय दक्षिण के अभियानों में व्यतीत हो रहा था। कालपी की सेना भी दक्षिण के अभियान में गई हुई थी। छत्रसाल ने इस स्थिति का फायदा उठाकर कालपी पर आक्रमण कर दिया। वहाँ मौजूद किलेदार दुर्जन सिंह छत्रसाल का मुकाबला नहीं कर सका। छत्रसाल ने मुगल खजाना लूटकर उत्तम सिंह धंधेरे को कालपी में नियुक्त किया।[105] औरंगजेब ने मुगल सरदार अनवर खाँ को कालपी पर अधिकार कारने के लिए भेजा, मगर छत्रसाल ने उसको हराकर कैद कर दिया। कुछ समय बाद अनवर खाँ ने छत्रसाल को एक लाख रुपये देकर मुक्ति पाई। इस कारण कोंच, कनार, उरई तथा भदेख पर छत्रसाल का अधिकार हो गया था।

छत्रसाल जब देवगढ़ में युद्धरत थे, उसका फायदा उठाकर कालपी के जागीरदारों ने विद्रोह कर दिया। उसको दबाने के लिये बुन्देली सेना पुन:कालपी आई। छत्रसाल ने कालपी जीतकर कोटरा पर आक्रमण किया। कोटरा के किलेदार सैयद लतीफ खाँ ने एक लाख रुपया नजराना देकर छत्रसाल की आधीनता स्वीकार कर ली।[106] इस प्रकार सम्पूर्ण जालौन पर छत्रसाल का प्रभुत्व स्थापित हो गया।[107]

औरंगजेब की मृत्यु के बाद इस क्षेत्र में मुगलों का प्रभाव न के समान था। सम्पूर्ण जालौन पूरी तरह से छत्रसाल के आधीन था, फिर भी मुगल बादशाह इसको अपने आधीन मानते हुए दिल्ली में बैठे-बैठे इस क्षेत्र की जागीरदारी अपने सामन्तों को बांटते रहते थे, भले ही उनको कब्जा न मिले। सन् 1713 में फरूकशियर ने फर्रुखाबाद के नबाव महमूद खाँ गजनफर, जिसको नवाब बंगश भी कहा जाता है, को एरच,

भाँडेर के साथ-साथ कालपी और जालौन की जागीर प्रदान कर दी।[108] सन् 1720 ई. में मोहम्मद खाँ बंगश को इलाहाबाद की सूबेदारी भी प्राप्त हो गई। बंगश ने दिलेर खाँ को कोंच, पीर खाँ को कालपी, सुजात खाँ को जालौन में देखभाल के लिए नियुक्त कर दिया। [109] दिलेर खाँ ने कालपी पर आक्रमण करके बुन्देलों को भगा दिया। छत्रसाल भला कहाँ चुप बैठने वाले थे। 15 मई, 1721 के दिन छत्रसाल के पुत्र जगतराज ने मौदहा (हमीरपुर) में दिलेर को हरा दिया। दिलेर खाँ स्वयं युद्ध में मारा गया और कालपी पर छत्रसाल का अधिकार हुआ ।[110] अब तो छत्रसाल और बंगश का युद्ध होना ही था।

बंगश पूरी तैयारी के साथ जनवरी, 1717 में युद्ध के लिए आया। यह युद्ध काफी लम्बे समय तक चला। लगातार दो वर्षों तक दोनों पक्षों की सेनायें युद्धरत रहीं। दिसम्बर, 1728 में जैतपुर (महोबा) के युद्ध में छत्रसाल की पराजय हुई। छत्रसाल को अपने पन्द्रह हजार सैनिकों, दस हजार घोड़ों के साथ आत्मसमर्पण करने के लिए मजबूर होना पड़ा। [111] उनको जैतपुर के किले में बन्दी बनाकर रखा गया।

छत्रसाल ने बन्दीगृह में रहते हुए अपनी मुक्ति के प्रयास जारी रखे। उन्होंने अपने विश्वस्त दूतों के द्वारा पूना के पेशवा बाजीराव प्रथम को अपनी दयनीय स्थिति का विस्तार से वर्णन करते हुए बंगश के विरुद्ध याचना पत्र भेजा। इतिहाकारों के अनुसार पत्र कविता में था, जिसमें लगभग सौ पंक्तियाँ थी, जिसमें से यह बहुत ही प्रसिद्ध हैं -

'जो गति भई गजेन्द्र की, तौ गति पहुँची आय।
बाजी जात बुन्देल की, राखौ बाजी लाज ॥'[112]

होली का त्यौहार आ गया था। छत्रसाल ने होली का त्यौहार मनाने के लिए बंगश से कुछ दिनों के लिए कैद से मुक्ति माँगी। बंगश को छत्रसाल द्वारा भेजे गये पत्र के बारे में कुछ भी मालूम नहीं था। उसने छत्रसाल को होली मनाने के लिए छोड़ दिया।[113] इधर छत्रसाल की प्रार्थना का अपेक्षित असर हुआ और पेशवा बाजीराव मार्च, 1729 में सहायता के लिए आ गये।

छत्रसाल और पेशवा की सम्मिलित सेना ने 15 मार्च, 1729 को जैतपुर में बंगश की सेना पर आक्रमण किया परन्तु सफलता नहीं मिली। कई महीनों तक घेरा पड़ा रहा। इसी बीच पेशवा की सेना में हैजा फैल गया। बरसात के पहले पेशवा को पूना लौटना था, अतः पेशवा सेना सहित वापस लौट गये, परन्तु छत्रसाल से सन्धि का प्रस्ताव किया। अगस्त 1729 में सन्धि हुई। बंगश ने वायदा किया कि वह बुन्देलखण्ड से चला जायेगा और भविष्य में कभी इधर का मुंह नहीं करेगा। बंगश ने अपने इस वायदे पर अमल भी किया। 23 सितम्बर, 1729 को बंगश की सेना कालपी से यमुना पार करके अपने इलाके में चली गई।[114] इस जिले का सम्पूर्ण भाग छत्रसाल के राज्य का भाग बना रहा।[115] पेशवा बाजीराव ने बड़े आड़े समय में छत्रसाल की मदद करी थी, अतः उन्होंने बाजीराव को अपना तीसरा पुत्र मानकर अपने राज्य का तीसरा भाग पेशवा बाजीराव प्रथम को देने का वचन दिया।[116] दिसम्बर, 1731 में छत्रसाल की मृत्यु होने पर उनके पुत्र हृदयशाह और जगतराज ने आधा-आधा राज्य आपस में बाँट लिया, तब पेशवा को अपने हिस्से की चिन्ता हुई। सन् 1732 में पेशवा ने अपना भाग प्राप्त करने के लिए चिमाजी को एक प्रतिनिधि मण्डल के साथ भेजा। इस प्रतिनिधि मण्डल में गोविन्द पंत बल्लाल खेर भी थे, जिन्होंने जालौन में मराठा राज्य स्थापित

किया और इतिहास में गोविन्द पंत बुन्देला के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनके पुत्र और वंशज जालौन के राजा के नाम से जाने गये।

कुछ ही समय के अन्दर गोविन्दपंत ने छत्रसाल के पुत्रों से चुर्खी, रायपुर, कन्नार, जालौन, कोंच, मोहम्मदाबाद, एट, कैलिया, महोबा, हमीरपुर तथा सागर के इलाके प्राप्त करके सागर को अपना मुख्यालय बनाया।[117] बाजीराव की मृत्यु के बाद उनके पुत्र पेशवा बालाजी ने गोविन्द पंत को बुन्देलखण्ड में छत्रसाल के पुत्रों से प्राप्त इलाकों से राजस्व वसूल करने की सनद प्रदान करके उनके बड़े पुत्र बालाजी गोविन्द को उनका दीवान नियुक्त कर दिया। गोविन्द पंत ने अपने छोटे पुत्र गंगाधर गोविन्द को कालपी, उरई तथा जालौन का इलाका सौंप कर उनका मुख्यालय कालपी में बनाया। इन्हीं गंगाधर के पुत्र और वंशज जालौन के राजा कहलाये। बड़े पुत्र बालाजी और उनके पुत्र सागर कहलाये। गोविन्द पंत ने अपने एक सम्बन्धी को गुरसॅराय का क्षेत्र प्रदान किया जो आगे चलकर गुरसॅराय के राजा कहलाये।

जालौन तथा कालपी के आस-पास के राजाओं को मराठों की आधीनता स्वीकार करना रुचिकर नहीं लग रहा था। 1745 में सर्वप्रथम चुर्खी के राजा हरीशाह ने मराठों विरुद्ध विद्रोह का झण्डा उठाया और कालपी के पास के कुछ इलाके पर अधिकार कर लिया। मराठों की ओर से झाँसी से नारोशंकर जयाजी सिन्धिया तथा मल्हारराव होल्कर सेना लेकर चुर्खी आ गये। हरीशाह मराठों की भारी सेना का सामना करने में असमर्थ था अतः सन्धि के लिये मजबूर हो गया। 1745 में सन्धि पर हस्ताक्षर हुये जिसके अनुसार हरिशाह को गुजारे के लिये मुसमरिया, औंता और अटरिया केवल तीन गाँव मिले।[118] जैसे ही मराठा सेनायें चुर्खी से वापस लौटी, हरीशाह ने पुनः

विद्रोहियों को एकत्रित करके मराठों को परेशान करना शुरू कर दिया। नारोशंकर से एक बार उसका फिर युद्ध हुआ। इस युद्ध में हरीशाह मारा गया। इस प्रकार मराठों के विरुद्ध जनपद जालौन में विद्रोह का दमन हो गया। 1749 में मराठों ने सीकरी, सुढार आदि को जीत कर कछवाहघार के इलाके में सत्ता स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर ली।[119]

दिसम्बर 1758 में अमखेड़ा के जमींदार कल्याण सिंह ने भी विद्रोह करके मराठों के गाँव सिरसा और गिघौसा में लूटपाट की। लेकिन मराठे जालौन में अपने पाँव जमाते ही गये। रामपुरा तथा कनार का क्षेत्र भी उनके अधिकार में आया गया। जालौन ही नहीं गोविन्द पंत ने इटावा के हाकिम असगर अली को युद्ध में मार कर इटावा, सकूराबाद, फफूंद और परा पर पूर्ण अधिकार कर लिया।[120]

मार्च 1760 में पेशवा बालाजी ने अपने चाचा भाऊ को अब्दाली के आक्रमण को रोकने हेतु पूना से एक बड़ी फौज के साथ उत्तर भारत में भेजा। भाऊ ने अपनी रणनीति के तहत गोविन्द पंत को दो कार्य सौंपे प्रथम मराठों के रसद की व्यवस्था दूसरी अब्दाली की सप्लाई लाइन को भंग करना। ऐसा होने से अब्दाली के सैनिक युद्ध कर ही नहीं पाते। गोविन्द पंत ने अपना दायित्व बखूबी निभाया और यह कार्य इतनी अच्छी तरह से किया कि अब्दाली को यह आशंका हो गई कि कहीं युद्ध बिना किये ही भूख के कारण ही हार न हो जाय। यह बड़ी विकट स्थिति थी। इससे निपटने के लिए गोविन्द पंत को हराने का महत्वपूर्ण दायित्व अब्दाली ने अपने भरोसेमंद सरदार अताई खाँ को सौंपा।

गोविन्द पंत का कैम्प गाजियाबाद के पास जलालाबाद नामक स्थान पर लगा था।

अताई खाँ और करीम खाँ की सेना ने 16 दिसम्बर 1760 की शाम अचानक गोविन्द पंत के डेरे पर आक्रमण कर दिया। मराठी सेना धोखे से हुए इस अचानक आक्रमण का सामना न कर सकी और उसके सैनिक अपनी जान बचाने के लिए भागने को मजबूर हो गए। स्वयं गोविन्द पंत उस समय संध्या पूजन कर रहे थे। वे पूजा के वस्त्र अर्थात धोती पहने ही घोड़े पर चढ़ कर भागे लेकिन भागने में कामयाब नहीं हो सके। दुश्मनों की एक गोली उन्हें बेध गई, गोली लगने से वे घोड़े से गिर पड़े। घोड़े से गिरते ही एक सैनिक ने उनका सर धड़ से अलग कर दिया।[121] इस प्रकार जालौन में मराठा राज्य के संस्थापक की भगोड़े की तरह मृत्यु हुई।[122]

कहा जाता है कि अताई खाँ ने गोविन्द पंत का सर अब्दाली को भेंट किया। अब्दाली ने गोविन्द पंत का सर भाऊके पास इस सन्देश के साथ भेजा 'तुम्हारे गोविन्द पंत तुम्हारे लिये जगह देखने पहले ही स्वर्ग चले गये हैं। तुमको पहचान के लिये सर भेज रहा हूँ यह है या नहीं।' दुख: से पीड़ित भाऊ का जवाब इस प्रकार था। 'वह स्थान (स्वर्ग) तो सभी का है, आप कन्धार के बड़े बादशाह हैं आपके वहाँ पहुँचने पर आपके पद मर्यादा के अनुकूल ही सम्मान होना चाहिये इसलिये आपकी अगवानी के लिये गोविन्द पंत पहले ही चले गये हैं।[123]

पानीपत के युद्ध के समय गोविन्द पंत के छोटे पुत्र कालपी, जालौन के शासक गंगाधर गोविन्द यहाँ की देखभाल करने के लिए कालपी में रुके रह गये थे। परन्तु बड़े पुत्र बालाजी गोविन्द पिता के साथ युद्ध में गये थे। उन्होंने भाग कर अपनी जान बचाई।[124] 14 जनवरी1861 को पानीपत में मराठों की करारी हार हुई गोविन्द पंत की मृत्यु का समाचार मिलने पर उनकी पत्नी बाई साहब इटावा जिले के जलेशर

नामक स्थान के पास उमराहाट में सती हो गईं।[125]

पानीपत की हार और गोविन्द पंत की मृत्यु के कारण जालौन-कालपी राज्य पर बड़ा गम्भीर असर पड़ा। लोगों ने चौथ तथा वार्षिक कर देना बन्द कर दिया, क्योंकि गोविन्द पंत के समकालीन बालकृष्ण दीक्षित के अनुसार 'एक महान पुरुष चला गया' था।[126] पिता के पद को प्राप्त करने के लिए उनके दोनों पुत्र प्रयत्नशील थे। इसीलिए दोनों में मनमुटाव भी हो गया था। गंगाधर गोविन्द पहले से ही कालपी के कर्ता-धर्ता थे, वह कालपी में आकर रहने लगे।

गंगाधर गोविन्द की कमजोर स्थित को देखकर अवध के नबाव शुजाउद्दौला ने 11 जनवरी, 1762 को कालपी पर आक्रमण कर दिया। गंगाधर गोविन्द तथा किलेदार त्रियम्बकराव फड़नवीस को कालपी से भागना पड़ा। अवध की सेनाओं के जाते ही गंगाधर गोविन्द ने पुन: कालपी पर अधिकार कर लिया।

जब तक गोविन्द पंत जिन्दा रहे, भरतपुर के जाट राजाओं की जालौन पर आक्रमण करने की हिम्मत नहीं पड़ी, लेकिन उनके मरते ही मराठों को चुनौती देने के लिए कई ताकतें उत्तर भारत में उठ खड़ी हुई। उनमें भरतपुर के जाट राजा जवाहर सिंह प्रमुख थे। उनकी सेना ने जुलाई, 1766 में जालौन के मराठा क्षेत्र में प्रवेश किया। सिन्ध नदी पार कर जवाहर सिंह ने रामपुरा के राजा कल्याण सिंह को हराकर रामपुरा और गोपालपुरा पर अधिकार कर लिया। दतिया के राजा शत्रुजीत ने जवाहर सिंह से मित्रता करके कुदारी, तालेगॉव आदि मराठा राज्य के लगभग ढाई दर्जन गाँवों पर अधिकार कर लिया।

इस अचानक आई बला को टालने के लिए गंगाधर गोविन्द और बालाजी गोविन्द ने

कृष्णाजी पंत द्वारा जवाहर सिंह के पास तीन लाख रुपये देने का प्रस्ताव भिजवाया।[127] जवाहर सिंह ने इस प्रस्ताव को ठुकरा कर पचास लाख रुपये देने और दो हजार सैनिकों के साथ अपने आधीन सैन्य सेवा करने का प्रस्ताव किया। इस प्रस्ताव को मराठों द्वारा नकार देने पर जवाहर सिंह ने कोंच पर अधिकार कर लिया।[128] गंगाधर गोविन्द, बालाजी गोविन्द तथा चाचा काशीपंत अपने सैनिकों के साथ भागकर जालौन से लगभग आठ मील दूर उत्तर सरावन के किले में पहुँचे। 17 जुलाई को जालौन के युद्ध में खेर बन्धुओं की हार हुई और उनको वहाँ से भागना पड़ा। जवाहर सिंह की सेना उनके पीछे लगी थी। रायपुर के पास पुनः एक बार दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ। मराठों की यहाँ पर भी हार हुई, उनके लगभग सौ सैनिक इस युद्ध में मारे गये। कृष्णाजी गम्भीर रूप से घायल हुए। गंगाधर तथा बालाजी परिवार सहित नाव द्वारा भाग कर केवल 150 सैनिकों के साथ पन्ना के राजा हिन्दूपत तथा खुमान सिंह और गुमान सिंह की शरण में जलालपुर (हमीरपुर) पहुंचे।[129] इन युद्धों की विजय के बाद जवाहर सिंह का कोंच, जालौन, कालपी अर्थात् इस समय जो जनपद की सीमायें हैं, वो सब इलाके जाटों के अधिकार में आ गये। इसी समय जवाहर सिंह को भरतपुर लौटना पड़ा। जवाहर सिंह के लौटते ही गंगाधर गोविन्द ने अपनी बची हुई सेना तथा बुन्देलों की मदद से कुछ ही महीनों में कालपी, रायपुर, कोंच, जालौन और दबोह पर फिर से अधिकार कर लिया।

गंगाधर की परेशानियों का अन्त अभी नहीं होना था। जवाहर सिंह को जैसे ही गंगाधर गोविन्द द्वारा कालपी पर अधिकार करने की सूचना मिली, उसने अपने दीवान दानाशाह को अधिकार करने के लिए भेजा। दानाशाह ने 20 दिसम्बर, 1767

को उरई पर अधिकार कर लिया ।[130] 26 दिसम्बर को कोंच पर अधिकार करके जागीर माधोसिंह गूजर को दे दी ।[131]

30 दिसम्बर को गंगाधर गोविन्द पर आक्रमण करके उनकी सेना को भारी क्षति पहुँचाकर कोटरा भगा दिया ।[132] अभी दानाशाह पहाड़गाँव और बिलायाँ के जीतने की योजना बना ही रहा था कि उसको जवाहर सिंह जाट की हत्या की सूचना मिली, अत: मजबूर होकर वह भरतपुर लौट गया । जवाहर सिंह की मृत्यु से गंगाधर गोविन्द को पुन: जालौन में अपनी सत्ता स्थापित करने का मौका मिला । गंगाधर गोविन्द ने सबसे पहले माधोसिंह गूजर को अपने आधीन किया, जिसको दानाशाह ने कोंच की जागीर दे दी थी । माधोसिंह ने भी मराठों की आधीनता स्वीकार करने में ही अपनी भलाई समझी ।

वर्ष 1769 समाप्त होने को ही था कि दानाशाह सेना के साथ कोंच का घेरा डालने को आ गया । लेकिन इस बार स्थिति भिन्न थी । गंगाधर ने अकोढ़ी की तरफ से दानाशाह के खिलाफ प्रस्थान किया । इधर माधोसिंह गूजर ने पहाड़गाँव की तरफ से जाटों की रसद-सामग्री पर रोक लगा दी । मजबूर होकर दानाशाह को कोंच का घेरा उठाकर भरतपुर लौट जाना पड़ा इसके पश्चात् फिर जालौन पर जाटों के आक्रमण नहीं हुए, क्योंकि घरेलू कलह के कारण जाटों की शक्ति घट गई थी । इस प्रकार 1770 तक जालौन में फिर से मराठों की शक्ति स्थापित हो गई ।

गंगाधर गोविन्द के राज्यकाल में ही अंग्रेजों ने कालपी पर पहला आक्रमण किया । गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग ने बंगाल से बम्बई जाने वाली सेना का मार्ग कालपी होकर निर्धारित किया । अंग्रेज बुन्देलखण्ड के क्षेत्र से परिचित होना चाहते

थे। मई 1778 में अंग्रेज सेनापति कर्नल लेसली कालपी के उस पार यमुना तट पर आ गया। गंगाधर गोविन्द ने अपने दूत लाला नन्द कुमार को लेसली के कैम्प में इस आशय से भेजा कि वे अंग्रेज सेना को कालपी होकर न भेजने को अनुरोध करें। लेसली ने उनके इस अनुरोध को स्वीकार नहीं किया। कर्नल गोडार्ड तथा मेजर फुलरेटन के दस्तों ने कालपी शहर तथा किले पर अधिकार कर लिया। मजबूर होकर गंगाधर गोविन्द को अंग्रेजों से सन्धि करनी पड़ी। सन्धि की प्रमुख शर्तें इस प्रकार थीं-

1. अंग्रेजी सेना बुन्देलखण्ड होकर जायेगी।

2. सेना को उचित मूल्य पर रसद मिलेगी।

3. कालपी का किला अंग्रेजों के पास गारन्टी के तौर पर अधिकार में रहेगा।

4. जब अंग्रेजी सेना छतरपुर से निकल जायेगी, कालपी के किले को गंगाधर गोविन्द को लौटा दिया जायेगा।

गंगाधर गोविन्द ने यदि अंग्रेजों का विरोध न किया होता, तो कालपी, जालौन तथा बुन्देलखण्ड के अन्य क्षेत्रों पर वर्ष 1778 में ही उनका अधिकार हो सकता था।

1798 तक गंगाधर गोविन्द काफी बूढ़े हो गये थे। उनके गोविन्द गंगाधर उर्फ नाना नाम का एक पुत्र था। बड़े भाई बालाजी के भी रघुनाथराव नामक एक पुत्र था। ये दोनों अभी कम उम्र के थे, इस कारण दोनों खेर बन्धुओं ने 14-12-1798 को इटौरा में मीटिंग करके गुरसराँय के दिनकरराव अन्ना को दोनों बच्चों का संरक्षक बनाया। गंगाधर गोविन्द की मृत्यु सन् 1801 में हुई, परन्तु मृत्यु से पहले पूना के पेशवा के आदेश से इनको जालौन के बावन गाँव नवाब हैदराबाद के वंशज और दिल्ली के वजीर के पद से भगाये गये नबाव गाजिउद्दीन खाँ को देने पड़े, जिससे कदौरा-बावनी

स्टेट की स्थापना जनपद में हुई।[133]

पिता की मृत्यु के बाद गोविन्द राव नाना जालौन के राजा हुए। इनके समय में राज्य के बहुत बड़े भाग पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। 1806 में हुई सन्धि के परिणामस्वरूप कालपी, जालौन राज्य से निकल कर अंग्रेजों के हाथ में आ गई, इस कारण गोविन्द राव ने कालपी छोड़ दी और जालौन में रहकर अपने राज्य का प्रबन्ध देखने लगे। वर्ष 1822 में नाना गोविन्द राव की मृत्यु हुई।[134]

गोविन्द राव की मृत्यु के बाद उनके पुत्र बाजीराव जालौन के शासक हुए। इनके काल में जालौन की प्रजा बड़ी सुखी थी। इनके समय में कालपी में अंग्रेज अधिकारी कैप्टन रेमने था , जिसका शासन बहुत सख्त था। कालपी की प्रजा इसकी आदी नहीं थी, अतः इसका फायदा उठाकर ये कालपी के अंग्रेज इलाके में लूटपाट करवा दिया करते थे। इस कार्य के लिए मराठों ने झाँसी मार्ग पर पिंडारियों को बसा रखा था। बाद में यह स्थान पिन्डारी गाँव के नाम से जाना जाने लगा। इनके समकालीन कवि राजाराम ने इनकी बड़ी प्रशंसा की है।

'जनक ज्यों ज्ञानिन में, जामवंत स्वापद में।
ध्रुव जो ध्यानिन में सुन्दर विराजा है ।।
परशुराम वीरन में राम रनधीरन में।
गंगाजल नीरन में सिद्ध करत काजा है ।।
राजाराम कहे सदा वेद ज्यों विधानन में।
कुवेर धनवानन में दूसरों न राजा है ।।
उदित उदार महाराज वीर बालाराव।

राजन में राजा दुजराजन में राजा है ॥[135]'

बालाराव का शासनकाल केवल दस वर्ष का ही रहा। वर्ष 1832 में इनकी मृत्यु हो गई। [136] इनके कोई सन्तान नहीं थी। इनकी पत्नी लक्ष्मीबाई ने कम्पनी सरकार की अनुमति से अपने छोटे भाई को गोद लेकर गोविन्द राव के नाम से जालौन की गद्दी पर बैठाया। लक्ष्मीबाई की खुद की उम्र चौदह वर्ष की थी। राज्य के पुराने दीवान नारो भास्कर [137] को लक्ष्मीबाई का हस्तक्षेप पसन्द नहीं था। राज्य में दो दल हो गये, एक लक्ष्मीबाई के साथ था और एक नारो भास्कर के साथ। दीवान नारोभास्कर की हत्या कर दी गई। राज्य की आर्थिक स्थिति दिनों-दिन खराब होती चली गई। हालत यह हो गई कि राज्य का खर्चा साहूकारों से कर्ज ले-लेकर चलाया जाने लगा। अन्ततः एक समय ऐसा भी आया कि साहूकारों ने कर्जा देना बन्द कर दिया।

लक्ष्मीबाई ने गारन्टी देकर कर्ज दिलवाने के लिए अंग्रेज पोलिटिकल एजेन्ट से प्रार्थना की। ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए यह सुनहरा अवसर था। इन परिस्थितियों में सन् 1838 में कम्पनी सरकार ने शासन में सुधार लाने के लिए जालौन राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया तथा कैप्टन डूलन को प्रशासक नियुक्त कर दिया।[139] डूलन ने जालौन राजघराने की चख-चख से दूर रहने के लिए उरई को अपना मुख्यालय बनाया। कैप्टन डूलन को प्रशासन संभाले अभी केवल दो वर्ष ही हुए थे कि अल्पवयस्क राजा गोविन्द राव की जालौन में मृत्यु हो गई।

लक्ष्मीबाई ने अबकी बार गुरसराँय के भूतपूर्व राजा दिनकर राव अन्ना के पुत्र केशवराव को गोद लेकर जालौन की गद्दी पर बैठाने का प्रयास किया। केशवराव ने भी जालौन पर अपना दावा पेश किया परन्तु कम्पनी सरकार ने इसको नहीं माना। [140]

1840 में गवर्नर जनरल लार्ड आकलैण्ड ने जालौन राज्य का विलय अंग्रेजी राज्य में कर दिया ।[141] वैध वंशज तथा उत्तराधिकारी के न होने की बात बिलकुल गलत था। नाना गोविन्द राव की नातिन ताईबाई जालौन में ही रहती थी यदि अंग्रेज चाहते तो ताईबाई के पुत्र को जालौन का राज्य दिया जा सकता था परन्तु ऐसा न करके अंग्रेजों ने जालौन पर परिवार के आश्रितों के लिए 70,000 रुपये की पेंशन की व्यवस्था करके सम्पूर्ण राज्य को हड़प लिया ।[142] ताईबाई को जालौन तथा हमीरपुर का मकान और एक हजार रुपये प्रतिमाह का गुजारा भत्ता स्वीकार किया।

संदर्भ सूची

1. बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहासः गोरेलाल तिवारी, पृ. सं. 2
2. दीवान प्रतिपाल सिंह,बुन्देलखण्ड का इतिहास, पृ.सं. 351
3. द हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ इण्डियन पीपुल -भाग दो, आर.सी. मजूमदार और आर.डी. पुशलकर- पृ. सं. 9.
4. मजूमदार और पुशलकर-प्रथम भाग, पृ.सं. 277
5. वही, पृ.सं. 278
6. प्रो. अर्जुन चौबे काश्यप-आदि भारत, पृ.सं. 126
7. मजूमदार और पुशलकर प्रथम भाग, पृ.सं. 252
8. मजूमदार और पुशलकर - प्रथम भाग, पृ. 277
9. वही , पृ. 278
10. प्रो. अर्जुन चौबे काश्यप , आदि भारत , पृ. 126
11. मजूमदार और पुशलकर- प्रथम भाग, पृ. 252
12. बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहासः गोरेलाल तिवारी, पृ. सं. 4
13. मजूमदार और पुशलकर-प्रथम भाग- पृ. सं. 300, अर्जुन पृ. सं. 128
14. बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहासः गोरेलाल तिवारी, पृ. सं. 4
15. मजूमदार और पुशलकर- भाग दो- पृ. सं. 32-33-38
16. अर्जुन, पृ. सं. 185
17. आर.सी. मजूमदार-एनीसियेन्ट इण्डिया, पृ. सं. 106
18. एम.एल. निगम-कल्चर हिस्ट्री आफ बुन्देलखण्ड, पृ. सं. 26
19. अर्जुन, पृ. सं. 273
20. वही
21. अर्जुन, पृ. सं. 181
22. चौधरी, पृ. सं. 473
23. मजूमदार और पुशलकर भाग तीन, पृ. सं.8, गोरेलाल, 18
24. प्लीट-कापर्स इन्सिक्रिप्शन इन्डीकेरम भाग तीन नं. 19, पृ. सं. 88-90 नं. 36
25. बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहासः गोरेलाल तिवारी, पृ. सं. 20-21

26. पं. चतुर्भुज शर्मा- बुन्देलखण्ड का इतिहास, पृ. सं. 64

27. बलवन्त सिंह - जिला गजेटियर हमीरपुर, पृ. सं. 24

28. ब्रोकमेन- पृ. सं. 115

29. एन. एस. बोस-हिस्ट्री आफ चन्देलाज, पृ. सं. 32

30. वही, पृ. सं. 173

31.मजूमदार और पुशलकर-भाग चार, पृ. सं. 82

32. कर्नल वेलजली हेग-द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग तीन, पृ. सं. 507

33. डा. ए.एल. श्रीवास्तव- दिल्ली सल्तनत (799-1526), पृ. सं. 59

34. डा. अयोध्या प्रसाद पाण्डेय-चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, पृ. सं. 104

आर्किलोजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग सात, पृ. सं. 14

35. काशी प्रसाद जायसवाल-अंधकार युगीन भारत, अनुवादक रामचन्द्र वर्मा, पृ. 76-77

36. वही

37. पी.जे. ह्वाइट-फाइनल रिपोर्ट आफ सेटेलमेन्ट आफ परगना कालपी, पृ. सं. 41

38. डा. एस.डी. त्रिवेदी-बुन्देलखण्ड का पुरातत्त्व, पृ. सं. 16-17

38. बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहासः गोरेलाल तिवारी, पृ. सं. 58

39. अयोध्या प्रसाद, पृ. सं. 96

40. वही, पृ. सं. 209

41. बलवन्त सिंह, पृ. सं. 24, पी.जे. ह्वाइट, पृ. सं. 41

42 आर.के. दीक्षित-चन्देलाज आफ जेजाक भुक्ति, पृ. सं. 145

43. बलवन्त सिंह, पृ. सं. 266

44. स्टेनली पूल-मेडिवल इण्डिया अन्डर मोहम्मडन रूल, पृ. सं. 51

डा. आशिर्वादी लाल श्रीवास्तव- दिल्ली सल्तनत, पृ. सं. 81, गोरेलाल पृ. सं. 74

45. राधाकृष्ण बुन्देली एवं श्रीमती सत्यभामा बुन्देली- बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन, प्रथम भाग, पृ. सं. 76

46. पी.जे. ह्वाइट, पृ. सं. 42

47. आर.के. सक्सेना- दिल्ली सल्तनत, पृ. सं. 147

48. ब्रोकमेन, पृ. सं. 118-119

49. कर्नल बेलजली हेग-कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया भाग तीन, पृ. सं. 201

आगा मेंहदी हसन-तुगलक डाइनेस्टी, पृ. सं. 468

50. हेग, पृ. सं. 204

51. वही, पृ. सं. 252

52. वही

53. वही, पृ. सं. 253

54. इ. बी. जोशी, झाँसी गजेटियर

55. निजामउद्दीन अहमद- तबकातये अकबरी ,उत्तरकालीन भारत, भाग दो, पृ. 8-10 ब्रोकमेन, पृ. सं. 121, गोरेलाल पृ. सं. 85

56. के. एस. लाल-ट्रवीलाइट आफ सल्तनत, पृ. सं. 162-165, गोरेलाल, 85-86 ए.बी. पाण्डे-द फस्ट अफगान इम्पायर इन इण्डियन, पृ. सं. 118

57. बलवंत सिंह, पृ. सं. 28

58. हेग, पृ. सं. 246-47, डी.पी. वरून-बाँदा गजेटियर, पृ. सं. 47

59. सक्सेना, पृ. सं. 328

60. वही

61. ब्रोकमेन, पृ. सं. 121

62. डा. एस.डी. त्रिवेदी-बुन्देलखण्ड का पुरातत्त्व, पृ. सं. 40

63. आशिर्वादी लाल- मुगलकालीन भारत, 1983, पृ. सं. 24

64. विलयम एर्सकिन-हिस्ट्री आफ इण्डिया अन्डर बाबर, पृ. सं. 442

65. एस.आर. शर्मा- भारत में मुगल साम्राज्य (अनुवादक) मथुरा लाल शर्मा, पृ. सं. 33 कैप्टेन डब्लू. आर. पोगसन-हिस्ट्री आफ बुन्देलाज, 1974 पृ. सं. 133

66. ई.बी. जोशी, पृ. सं. 41

67. कनार गाँव अब गैर आबाद है। प्राचीनकाल में यह सेंगर राजाओं का महत्वपूर्ण स्थान था। मुगलों और अंग्रेजों के समय में कनार परगना था। 1857 की कान्ति के बाद अंग्रेजों ने कनार परगना तोड़ दिया। कनार की प्राचीनता की जानकारी के लिए देवापगा त्रैमासिक वर्ष द्वितीय अंक एक में डा. हरिमोहन पुरवार का शोध लेख- ऐतिहासिक अवशेषों को सजाये- 'करन खेड़ा' लेख देखें।

68. श्रीमती ए. एस. बेवरिज-जहीरूद्दीन मोहम्मद बाबर- बाबरनामा, भाग दो, पृ. 590

69. युगजीत नवलपुरी- बाबरनामा, अनुवाद 1996, पृ. सं. 439, वेवरिज पृ. सं. 590

70. वेवरिज, पृ. सं. 590 नवलपुरी पृ. सं. 442

71 पी.जे. ह्वाइटह्व पृ. सं. 42

72. एर्सकिन, पृ. सं. 541

73 विलियम एर्सकिन- हिस्ट्री आफ इण्डिया अन्डर हुमाँयु, पृ. सं. 139

74. जे.एम. शैलेट- अकबर, पृ. सं. 32 , अब्बास शरवानी (अनुवादक) राजा राम अग्रवाल तवारीखे शेरशाही, पृ. सं. 208, आशीर्वादी लाल, पृ. 92

75. रिचर्ड वर्न- कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग चार, पृ.51, एस.आर. शर्मा, पृ. 75

76. अब्बास सरवानी, पृ. सं. 187 रिचर्ड बर्न, पृ. 51

77. इ.टी. एटकिशन-स्टैटिकल, डिसक्रिपटिव, हिस्टोरिकल एकाउन्ट आफ द नार्थ वेस्टर्न प्रविंशेज आफ इण्डिया, प्रथम भाग, बुन्देलखण्ड पृ. सं. 153

79. आशीर्वादी लाल, पृ. सं. 133, एस.आर. शर्मा, पृ. सं. 147

80. आर.सी. मजूमदार-द हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ द इण्डियन पीपुल, द मुगल एम्पायर पृ. सं. 95 रामचरण विद्यार्थी-भारत की युग यात्रा, पृ. सं. 403

81. एच. बेवरिच (अनुवाद) द माथिर-उल-उमरा,प्रथम भाग, पृ. सं. 82

82. शैलेट, पृ. सं. 117

83. डा. ए. एल. श्रीवास्तव-अकबर द ग्रेट, प्रथम भाग, पृ. सं. 119

84. अबुल फजल-आइने अकबरी (अनुवाद) कर्नल एच.एस. जैरेट संशोधित-यदुनाथ सरकार, भाग तीन 1989, पृ. सं. 104

85. वही, पृ. सं. 199

86. अबुल फजल- आइने अकबरी (अनुवाद) एच.ब्लोचमेन, सम्पादित डी.सी. अिलोट, प्रथम भाग, पृ. सं. 57

87. एच. बेवरिच, पृ. सं. 57

88. एच. ब्लोचमेन, पृ. सं. 518

89. रामचन्द्र वार्म-अकबरी दरबार, पृ. सं. 222 यह शम्सुल उल्मा मौलाना मुहम्मद हुसेन सा लिखित दरबारे अकबरी का अनुवाद है। शैलेट, पृ. सं. 117

90. दैनिक जागरण, दि. 10.08.1996

91. चोब सिंह वर्मा-मुगल रोमांसेज, 1996, पृ. सं. 23-27

92. रामचान्द्र वर्मा- अकबरी दबबार, भाग दो, पृ. सं. 415

93. ई.टी.एटर्किसन, पृ. सं. 482

94. इटौरा कालपी से दक्षिण से 16 किमी. तथा उरई से 26 कि.मी. उत्तर पश्चिम में है। कार्तिक की पंचमी को रूपम गुरू की याद में यहाँ मेला लगता है।

95. बलवंत सिंह, पृ. सं. 288

96. ब्रजरत्न दास- जहाँगीरनामा (अनुवाद) द्वितीय संसस्करण, पृ. सं. 129

97. जोशी- पृ. सं. 45

98.नबाव शमशुद्दौला शाहनवाज खाँ और उनके पुत्र अब्दुल हई - मंअसिर-उल-उमरा (अनुवाद) एच. बेवरिच, प्रथम भाग, पृ. 340

99. इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डियन, वाल्यूम चौदह, पृ. सं. 19 ह्वाइट, पृ. सं. 43

100. बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास: गोरेलाल तिवारी, पृ. सं. 116

101. श्रीयुत् 'विश्व'-बुन्देलखण्ड केशरी वीर छत्रसाल, पृ. सं. 8

102. वही

103. डब्लू.आर. पोगसर-हिस्ट्री आफ बुन्देलाज, 1974, पृ. सं. 27

104. वही

112. डी.बी.परसनीस-मराठायाचे पराक्रम, पृ. सं. 65, गोरेलाल, पृ. 216

113. बी.आर. अंधारे- बुन्देलखण्ड अन्डर मराठाज, पृ. सं. 35

114. जी.एस. सरदेसाई-मराठों का नवीन इतिहास, भाग दो, 1876, पृ. सं. 105

115. बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास: गोरेलाल तिवारी, पृ. सं. 222

116.वी.जी. दिघे-पेशवा बाजीराव प्रथम एण्ड मराठा एक्सपेंशन, पृ. सं. 103

117. आर.के. लघाटै-गोविन्दपंत बुन्देलयांची कैफियात 9-10-11-14
आर.बी. हीरालाल-मध्य प्रदेश का इतिहास, पृ.सं. 76, गोरेलाल, पृ. सं. 233

118. अन्धारे-पृ. सं. 72

119. वही, पृ. सं. 82

120. बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास: गोरेलाल तिवारी, पृ.सं.

121. जी.एस. सरदेसाई-न्यू हिस्ट्री आफ मराठाज, भाग दो, पृ. 430, गोरेलाल, पृ. 254

122. टी.एस. शेजवलकर- पानीपत, 1761, पृ. सं. 127

123. हरीराम गुप्ता-मराठाज एण्ड पानीपत, पृ. सं. 198-201, यदुनाथ सरकार फाल आफ मुगल एम्पायर, भाग दो, पृ. सं. 227-229, डा. भगवान दास गुप्ता-बाजीराव और उनके वंशज बाँदा के नबाव, पृ. सं. 26-27

124. लेफ्टीनेन्ट कर्नल गौतम शर्मा-इण्डियन आर्मी थ्रू ज ऐज, पृ.सं. 177-178
किनकाइड और परासनिस-ए हिस्ट्री आफ मराठा पीपुल, पृ. सं. 68

125. मराठों के उच्च वर्ग में सती प्रथा उस समय प्रचलित थी। गोविन्द पंत के बड़े पुत्र

बालाजी गोविन्द की पत्नी लक्ष्मीबाई भी कालपी में सती हुई थीं। पेशवा माधवराव की मृत्यु पर उनकी पत्नी रमाबाई सती हुईं। क्षत्रपति शाहू के साथ उनकी पत्नी सकवार बाई और लक्ष्मी तथा सुखू पासवाने चिता पर गई।

105. राधा कृष्णा बुन्देली एवं सत्यभामा बुन्देली, पृ. सं. 107
106. डा. भगवान दास गुप्ता-बुन्देलखण्ड केशरी महाराज छत्रसाल बुन्देला, पृ. सं. 36
107.ब्रोकमेन, पृ. सं. 126
108. बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहासः गोरेलाल तिवारी, पृ. सं. 210
109 . जनरल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, पृ. सं. 283-84, ब्रोकमेन, पृ. सं. 126
110. विलियम इरविन-लेटर मुगल्स, भाग दो पृ. सं. 130
111. जनरल आफ अशियाटिक आफ बंगाल, 1878, पृ. सं. 269
126. आर.वी. रसेल-सागर गजेटियर, पृ. सं. 21
127. पी.एम. जोशी , सेलेक्शन फाम द पेशवा दफ्तर न्यू सिरीज वाल्यूम 3,नं. 128
128. वही, नं. 123
129. वही, नं. 125-129
130. अन्धारे, पृ. सं. 174
131. वही, पृ. सं. 175
132. वही
133. जी.एस. सरदेसाई-मराठों का नवीन इतिहास, द्वितीय भाग, 1972, पृ. सं. 221
134. डा. काशी प्रसाद त्रिपाठी-बुन्देलखण्ड का वृहत इतिहास,पृ.सं. 233 गोरेलाल, पृ. सं. 337, ब्रोकमेन, पृ. सं. 134
135. बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहासः गोरेलाल तिवारी, पृ. सं. 336
136. ह्वाइट, पृ.सं. 45
137. दीवान का बसाया मोहल्ला नारोभाष्कर अभी जालौन में है।
138. ह्वाइट, पृ. सं. 45
139. कैप्टन डूलन का बसाया मोहल्ला उरई में डोलनगंज नाम का था।
140. इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, भाग 12,पृ.सं. 413-414
141. ब्रोकमेन, पृ. सं. 82-83, ह्वाइट, पृ. सं. 45
142. ह्वाइट, पृ. सं. 45

तृतीय अध्याय

जनपद जालौन का पुरातत्त्वीय अध्ययन

अध्याय- तीन

जनपद जालौन का पुरातत्त्वीय अध्ययन

वर्तमान समय में लोगों के मन में पुरातत्त्व के प्रति एक रुचि सी उत्पन्न हो गई है। पर विडम्बना यह है कि वे बिना जाने-समझे इसमें रुचि ले रहे हैं। जिस तरह आभिजात्य वर्ग के अत्याधुनिक और वैभवशाली अतिथिकक्षों की शोभा बढ़ाने वाली कलाकृतियों के बारे में वह वर्ग बहुत कम जानता है, ठीक वही स्थिति पुरातत्त्व की है। बहुधा पुरातत्त्व को सामान्यजन आकर्षक प्राचीन वस्तुओं का संग्रह भर मानते हैं। वे पुरातत्त्व को इन्द्रजालिक रूप से तिलिस्म तोड़कर खजाना प्राप्त करने के लिए किया उद्यम मानते हैं। सामान्यतः छुपी हुई वस्तुओं के प्रति प्रबल जिज्ञासा के कारण ही यह दृष्टिकोण विकसित हुआ है, जबकि 'तथ्य तो यह है कि पुरातत्त्व मानव अतीत के उन पक्षों को उजागर करने का एक अत्यन्त सशक्त माध्यम है जिनके सम्बन्ध में लिखित साक्ष्यों से कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती। इस कार्य के लिए पुरातत्त्ववेत्ता को अत्यन्त जटिल एवं परिष्कृत विधियों का सहारा लेना पड़ता है।'[1]

पुरातत्त्व की परिभाषा

हिन्दी में पुरातत्त्व शब्द अंग्रेजी के आर्किऑलॉजी शब्द के पर्याय के रूप में व्यवहृत होता है। Archaeology शब्द यूनानी भाषा के Archaios तथा Logos शब्द से मिलकर बना है जिसका अर्थ क्रमशः पुरातन और ज्ञान

होता है । सर्वप्रथम पश्चिम में पुरातत्त्व शब्द का प्रयोग यूनान तथा रोम के प्राचीन पुरावशेषों एवं पुरानिधियों के अर्थ में किया गया था । पुरातत्त्व लम्बे समय तक संग्रहालय सजाने की क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित बनाने की कला की तरह प्रचलित रहा । 18वीं शताब्दी में जब मिस्त्र मेसोपोटामिया और 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक में सिंधु सभ्यता की खोज हुई उसके बाद से उपलब्ध पुरावशेष भी पुरातत्त्व की श्रेणी में शामिल हो गए । धीरे-धीरे पुरातत्त्व का सम्बन्ध उन सभी प्राचीन वस्तुओं से जोड़ दिया गया जिनका नियोक्ता और प्रयोक्ता मानव रहा हो ।

प्रसिद्ध पुराविद् **गार्डन चाइल्ड** के अनुसार- 'पुरातत्त्व सुस्पष्ट भौतिक अवशेषों के माध्यम से मानव के क्रियाकलापों के अध्ययन को कहा जा सकता है । '

ग्राहम क्लार्क - Archaeology may be simply defined as the systematic study of Antiquties as a meens of re-constructing the past.

ग्लिन डेनियल के अनुसार- 'पुरातत्त्व शब्द का प्रयोग दो प्रमुख अर्थों में किया जाता है, 1- मानव अतीत के भौतिक अवशेषों के अध्ययन में 2- मानव के प्रागैतिहासिक कालों के अध्ययन के अर्थों में । '[2]

कुछ विद्वान मानते हैं कि पुरातत्त्व की परिधि में लिपि ज्ञान के पूर्व के काल से सम्बन्धित पुरावशेषों मात्र का अध्ययन आता है । पुरातत्त्व की यह परिभाषा वर्तमान समय को देखते हुए संकुचित प्रतीत होती है, क्योंकि लिपिज्ञान वाले काल के मानव इतिहास के विभिन्न पहलुओं की जानकारी केवल भौतिक पुरावशेषों के द्वारा हो सकती है, जिनकी जानकारी पुरातात्त्विक साधनों से हो

सकती है।

इसी कारण पुरातत्त्व उन विषयों में महत्वपूर्ण सिद्ध होता है जो मानव से सम्बन्धित ऐतिहासिक ज्ञान को लिखित दस्तावेजों की सीमा से बढ़ा देता है। भौतिक पुरावशेषों के आधार पर मानव के सांस्कृतिक आचरण का अध्ययन पुरातत्त्व है।[3]

पुरातत्त्व की पारम्परिक परिभाषा के अनुसार इसके अन्तर्गत प्रधानतः मानवकृत भौतिक पुरावशेषों और पुरानिधियों का अध्ययन अतीत को समझने के लिए किया जाता है। चाहे ऐसे पुरावशेष पाषाणकाल के पत्थर के बने उपकरण एवं औजार हों या मिट्टी के बने हुए बर्तन के टुकड़े हों या मानव द्वारा बनाई गई झोंपड़ी के मात्र स्तम्भगर्त हों अथवा वास्तुकला एवं तक्षणकला से संबंधित भव्य एवं महान कलाकृतियां हों। लेकिन यह बात ध्यान देने योग्य है कि पुरातात्त्विक अध्ययन में कुछ ऐसी महत्वपूर्ण सामग्री भी सम्मिलित की जाती है जिसका निर्माता मानव स्वयं नहीं था, उदाहरणार्थ- मानव के जीवाश्म और मानव के कंकाल और इन्हीं के समकालिक जीव-जन्तुओं तथा पादपों के जीवाश्म आदि। मानव अतीत को समझने के लिए इन उपर्युक्त चीजों का बहुत अधिक महत्व है। ऐसी स्थिति में केवल मानवकृत भौतिक पुरावशेषों के द्वारा मानव अतीत के अध्ययन को ही पुरातत्त्व की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पुरातत्त्व से तात्पर्य एक ऐसे विषय से है जो एक निश्चित ऐतिहासिक कालक्रम एवं पारिस्थितिकी के परिप्रेक्ष्य, में एक सुनिश्चित देश तथा काल के परिप्रेक्ष्य में भौतिक पुरावशेषों के आधार पर मानव के सांस्कृतिक आचरण का अध्ययन करता है।[4]

स्टुअर्ट पिगट पुरातत्त्व को इतिहास की एक शाखा मानते हैं। ब्रिटेन की एक संस्था प्रिहिस्टोरिक सोसायटी के सन् 1963 में अपने अध्यक्षीय भाषण में पिगट ने दु:ख प्रकट करते हुए कहा है कि - 'बहुत से विद्वान पुरातत्त्व या प्रागैतिहास को एक गंभीर और बौद्धिक विषय कदापि नहीं मानते हैं। वे इसे मानव अतीत के इतिहास निर्माण की मात्र एक ऐसी विधि समझते हैं जिसमें गम्भीर बौद्धिक प्रक्रिया की जटिलताओं की सहज रूप से उपेक्षा की जा सकती है।' [5]

कुछ समय पहले तक पुरातत्त्व साक्ष्यों का संग्रह मात्र था । उस समय पिगट का उपरोक्त कथन ठीक हो सकता था किन्तु अब बीसवीं सदी के आखिरी कुछ दशकों में हुए प्रयत्नों और प्राविधियों के नये विकास ने पुरातत्त्व की परिभाषा को किसी हद तक बदल दिया है। इक्कीसवीं सदी में अब पुरातत्त्व मानवकृत पुराने अवशेषों को खोज निकालने का तरीका मात्र नहीं वरन् मानव की सम्पूर्ण भौतिक उपलब्धियों को एक सही परिप्रेक्ष्य में रखकर अध्ययन की एक जटिल और गम्भीर भौतिक प्रक्रिया भी है। इसीलिए इसका महत्व अब और भी बढ़ गया है।

मोर्टिमर व्हीलर ने लिखा है कि -'पुरातत्त्व प्रधानतः तथ्यों की खोज करने वाला विषय है।' [6] **वाल्टर टाइलर** का कहना है- 'पुरातत्त्व मानव के सांस्कृतिक इतिहास के विषय में साक्ष्य संकलन की एक विशिष्ट प्रणाली एवं तकनीकों का समूह मात्र है, बिलकुल गलत है। मुझे इस प्रकार के मत को कोरी बकवास मात्र कहकर भर्त्सना करने में रंचमात्र भी संकोच नहीं है .... । यह सच है कि पुराविद् प्रधानरूपेण तथ्यों की खोज करता है, किन्तु उसके ये

तथ्य मानव अतीत की भौतिक उपलब्धियों के मूर्त विवरण हैं। इस रूप में वह मानवतावादी है। संयत परिकल्पना के माध्यम से वह इस भौतिक सामग्री को सजीव बनाता है। इस अर्थ में पुराविद् मानव की खोज में संलग्न है।'[7]

पुरातत्त्व अपने प्रत्यक्ष और सरल बोध में उस विज्ञान का एक प्रकार है जो जीवित है और जिसे मानवता से आस्वाद्य बनाना आवश्यक है। मृत पुरातत्त्व उड़ने वाली धूलों में सबसे अधिक शुष्क है।[8] यूं भी पुरातत्त्व का उत्खननकर्ता सामग्री नहीं खोदता, वह जनसमुदाय को खोदता है, भले ही वह कितना भी विश्लेषण करे अथवा सूचीपत्र तैयार करे तथा उसकी खोजों को प्रयोगशाला में जाँच करे। पुरातत्त्व जिस सीमा तक विज्ञान है , उसे जीवित व्यक्ति की ओर बढ़ाना आवश्यक है जिससे यह स्वयं को जीवित रखे और इसमें योग्य गति का उत्पादन हो।

'पुरातत्त्व वस्तुतः यथार्थता के अन्वेषण से सम्बद्ध अनुशासन है। परन्तु उसकी यथार्थताएँ मानव सफलताओं के मूर्त विवरण हैं। इस विशिष्टता से वह मानवतावादी भी है और उसका गौण कार्य अपनी सामग्री को उस नियंत्रित कल्पना द्वारा पुनरुज्जीवन एवं मानवीकरण प्रदान करना है जो कला और दर्शन के स्वरूप में भी सहायक होती है।' - **डॉ. हरिहर शास्त्री**

'पुरातत्त्व वस्तुतः मूलरूप में सांस्कृतिक सामग्री चयन करने की दृष्टि से विशिष्ट तकनीकों के समूह और प्रणाली से अधिक कुछ भी नहीं है।'[9]

पुरातत्त्व एक कला है जिसमें वैज्ञानिक कौशल प्रयुक्त होता है।[10]

इसी परिप्रेक्ष्य में ऑक्सफोर्ड इतिहासकार सर लिवेलिन वुडवर्ड का कहना है कि ऐतिहासिक ग्रहणशक्ति जासूसी चालाकियों की श्रेणी की

अपेक्षा अधिक है। 'पुरातत्त्व विस्तृत रूप में हमें इतिहास निर्माण में केवल अस्थि-पंजर का काम दे सकता है।'[11] - **डॉ.एस. कृष्णास्वामी आयंगर**

पुरातत्त्ववेत्ता पृथ्वी के गर्भ में छिपे हुए मानव के भौतिकावशेषों में फिर से जीवन का संचार करता है। यह कार्य पुरातत्त्ववेत्ता की अत्यन्त महत्वपूर्ण उपलब्धि होती है। मानव के भौतिक अवशेषों से आशय ऐसे अवशेषों से है जो शताब्दी नहीं वरन् सहस्त्राब्दियों के प्राकृतिक प्रकोप और सड़ने-गलने से बचे हुए प्रमाण हैं। मानवकृत कुछ ही वस्तुओं के अवशेष बच पाते हैं। मानवकृत चीजों के नमूनों के रूप में पाषाण एवं धातु से बनी चीजें अथवा मिट्टी के बर्तन के टुकड़े ही उपलब्ध हो पाते हैं। हड्डियाँ जीवाश्मों के रूप में उपलब्ध होती हैं तो वस्त्र, रस्सी, जाल, चमड़ा आदि अपवादात्मक विशिष्ट परिस्थितियों में ही सुरक्षित रह पाते हैं। ऐसी स्थिति या तो शुष्क जलवायु की होती है अथवा दलदल की जहाँ जीवाणुओं का प्रवेश वर्जित हो। कभी-कभी पुरातत्त्ववेत्ता परोक्ष संकेत के आधार पर भी कुछ निष्कर्ष निकाल सकते हैं। पुरातत्त्व मानव अतीत का सारा अध्ययन लिखित एवं अलिखित साक्ष्यों के आधार पर करता है।

पुरातत्त्व सम्बन्धी क्रिया-कलापों से सम्बन्धित दायित्वों का वहन भारत में मुख्यतः भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण करता है। सन् 1783 में विलियम जोन्स कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति होकर भारत आये थे। अपने भारत आगमन के एक वर्ष के अन्दर ही 15 जनवरी 84 को रॉयल एशियाटिक सोसायटी की स्थापना में उन्होंने सक्रिय भूमिका निभायी थी। इस संस्था की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य था एशिया महाद्वीप के पुरावशेषों, कलाओं, विज्ञानों तथा साहित्य

के इतिहास के सम्बन्ध में अनुसंधान करना। अनुसंधित्सुओं की खोजों को प्रकाशित करने के लिए सन् 1788 में 'एशियाटिक रिसर्चेज' नामक पत्रिका का शुभारम्भ किया गया। सन् 1814 में सोसाइटी के सदस्यों द्वारा संग्रहीत सामग्री को सुरक्षित रखने के लिए एक संग्रहालय की स्थापना की गई।

जोन्स के एक सहयोगी चार्ल्स विलकिन्सन द्वारा गुप्त एवं कुटिल लिपियों का सफलतापूर्वक उद्वाचन किया गया। उनके द्वारा ताजमहल, कुतुबमीनार आदि उत्तरी भारत के मध्यकालीन स्मारकों, एलौरा एलीफैन्टा तथा कान्हेरी आदि पश्चिम भारत के प्राचीन कालीन स्मारकों का अत्यन्त कल्पनापूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया गया था। जोन्स के बाद संस्था के अध्यक्ष एच.टी. कोलब्रुक हुए जो संस्कृत, यूनानी तथा लातीनी भाषाओं के मर्मज्ञ थे। इस सभा के अगले अध्यक्ष एच.एच. विल्सन का नाम भी विशेष रूप से स्मरणीय है।

विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये सभी व्यक्तिगत प्रयास थे। शासकीय स्तर पर उस समय तक ऐसे कार्यों की ओर लगभग बिलकुल ध्यान नहीं दिया गया। लेकिन अठारहवीं शताब्दी के समाप्त होते-होते तत्कालीन सरकार ने भी पुरातत्त्व के सम्बन्ध में कुछ रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया था। सन् 1833 में जेम्स प्रिंसेप के एशियाटिक सोसाइटी का सचिव नियुक्त होने पर पुरातत्त्व सम्बन्धी कार्यों में एक बार फिर गतिशीलता का संचार हुआ। जेम्स वैज्ञानिक दृष्टिकोण के पक्षधर थे। उन्होंने अपने कार्यों को अत्यन्त सुव्यवस्थित ढंग से प्रारम्भ किया। सन् 1834 और 1837 के मध्य जेम्स ने प्राचीन भारत की ब्राह्मी लिपि का सफलतापूर्वक उद्वाचन किया।

सन् 1861 का वर्ष भारतीय पुरातत्त्व के इतिहास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण

वर्ष था क्योंकि इसी वर्ष शासकीय स्तर पर देश की पुरानिधियों एवं पुरावशेषों की ओर ध्यान देने के लिए भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण की स्थापना की गई थी। प्रोफेसर हँसमुख धीरजलाल साँकलिया ने सन् 1861 से 1960 के मध्य के भारतीय पुरातत्त्व के इतिहास को तीन कालों में विभाजित किया है। यह विभाजन इस प्रकार है:-

1. 1861 से 1902 ईसवी तक (प्रथम काल)
2. 1902 से 1944 ईसवी तक (द्वितीय काल)
3. 1944 से 1960 ईसवी तक (तृतीय काल)

इस काल विभाजन को अब चार प्रमुख कालों में विभाजित किया जा सकता है। चतुर्थ काल में 1961 ईसवी से वर्तमान समय तक को शामिल किया जा सकता है।

प्रथम काल (1861-1902 ई.) :-

भारत में पुरातत्त्व सम्बन्धी अनुसंधान का शासकीय स्तर पर यह प्रथम प्रयास था। प्रथम काल की पुरातात्त्विक गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र बिन्दु कनिंघम के होने के कारण इसे कनिंघम युग भी कहा जाता है। 47 वर्षीय मेजर जनरल अलेक्जेण्डर कनिंघम (1814-1893) को पुरातात्त्विक सर्वेयर नियुक्त किया गया जिसने सन् 1861 से लेकर 1865 के मध्य पूर्व में गया जिले से लेकर पश्चिम में सिंध तक तथा उत्तर में कालसी (देहरादून) से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी के मध्यवर्ती क्षेत्रों के प्राचीन स्थलों तक की यात्रा की एवं स्मारकों का सर्वेक्षण किया। उल्लेखनीय है कि कनिंघम को अपना यह महत्वपूर्ण कार्य सन् 1866 में अचानक बन्द कर देना पड़ा, क्योंकि इसी वर्ष

पुरातत्त्व विभाग को समाप्त कर दिया गया था।

केन्द्रीय शासन ने 1867 में एक परिपत्र जारी करके प्रादेशिक सरकारों को महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्मारकों के चित्र एवं छाप बनाने का कार्य सौंपा लेकिन इस दिशा में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हो सकी।

ई.सी. बेली नामक गृह सचिव ने 11 जनवरी 1870 में तत्कालीन भारत सरकार से पुरावशेषों एवं पुरानिधियों की ओर ध्यान देने का आग्रह किया। इसका अनुकूल प्रभाव पड़ा और भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के नाम से एक स्वतंत्र विभाग की स्थापना की गई। ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण और अन्य स्मारकों की देशव्यापी खोज एवं लेखा-जोखा तैयार करने की महत्वाकांक्षी योजना बनाई गई। कनिंघम को दो हजार रुपये मासिक वेतन पर भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण का महानिदेशक नियुक्त किया गया। फरवरी 1871 में कनिंघम ने अपना कार्यभार संभाला। भारत आते ही कनिंघम ने मुगल साम्राज्य की दो महत्वपूर्ण राजधानियों दिल्ली एवं आगरा का सर्वेक्षण किया।

सन् 1873 से 1877 के मध्य कनिंघम ने अपना समय संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तरप्रदेश), बुन्देलखण्ड एवं मालवा क्षेत्र के सर्वेक्षण में व्यतीत किया। इसी दौरान भरहुत के प्रसिद्ध अवशेषों की उसने खोज की। सन् 1878 में पुरानिधि निखात अधिनियम पास हुआ जिसके अनुसार दस रुपये से अधिक मूल्य के निखात का स्वामित्व प्राप्त करने का अधिकार केन्द्र शासन को मिल गया।

सन् 1878-79 का वर्ष पंजाब क्षेत्र के दौरे में व्यतीत हुआ। इसी अभियान के समय तक्षशिला के टीले से सिकन्दर के आक्रमणकाल से पूर्व के भारतीय सिक्कों की एक मुद्रानिधि प्राप्त करने में कनिंघम को सफलता प्राप्त हुई। खोज एवं

सर्वेक्षण के अतिरिक्त कनिंघम ने पुरालिपि के महत्व को भी समझा। सन् 1872 में जेम्स बर्जेस ने इण्डियन एन्टीक्वेरी नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसमें प्राचीन अभिलेखों के मूल पाठ , अनुवाद और यदाकदा अभिलेख की छाप अथवा अनुलिपि का भी प्रकाशन किया जाता था।

किसी राजवंश, क्षेत्र अथवा काल-विशेष की दृष्टि से इनके प्रकाशन की योजना सर्वप्रथम कनिंघम के दिमाग की ही उपज कही जा सकती है। कनिंघम के समय के प्रसिद्ध भारतीय पुरालिपिवेत्ताओं में जार्ज बूलर, जे.एफ.फ्लीट, जे. एग्गलिंग, एल. राइस, डी.आर. भंडारकर, भगवानलाल इन्द्रजी, ई. हुल्स आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सन् 1877 में कनिंघम की योजना के अनुरूप कॉपर्स इंस्क्रिप्सनम इंडिकेरम की पहली जिल्द का प्रकाशन हुआ जिसमें अशोक एवं उसके पौत्र दशरथ के उस समय तक उपलब्ध सभी अभिलेखों का मूलपाठ , अनुवाद एवं प्रतिकृतियों का अत्यन्त सुचारु एवं व्यवस्थित ढंग से प्रकाशन किया गया।

प्राचीन स्मारकों के परिरक्षण का कार्य महानिदेशक के अधिकार से बाहर ही रखा गया था। 13 फरवरी 1873 को एक परिपत्र के द्वारा प्रादेशिक सरकारों को ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं वास्तुशिल्प की दृष्टि से विशिष्ट स्मारकों के परिरक्षण एवं अनुरक्षण का दायित्व सौंपा गया। [12]

अठारह वर्षों की सक्रिय एवं अविराम सेवा के बाद कनिंघम सन् 1885 में सेवानिवृत्त हो गए। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण की 23 जिल्दों वाली विशाल रिपोर्ट के अतिरिक्त कनिंघम की प्रमुख रचनाओं में एन्सिएन्ट ज्यॉग्राफी ऑफ इंडिया, दि स्तूप ऑफ भरहुत तथा दि बुक ऑफ इंडियन एराज का विशेष रूप से

उल्लेख किया जा सकता है। कनिंघम ने जिन परिस्थितियों में ये सब कार्य कर दिखलाये, उनमें अन्य किसी व्यक्ति के लिए सम्भवतः ऐसा कर पाना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य होता। कनिंघम को भारतीय पुरातत्त्व का जनक माना जा सकता है। [13]

कनिंघम के अवकाश ग्रहण करने के बाद जेम्स बर्जेस के प्रयास उल्लेखनीय हैं। बर्जेस पेशे और अभिरुचि दोनों ही दृष्टियों से वास्तुकलाविद् थे। भारतीय पुरालिपि की प्रगति के लिए बर्जेस ने अमूल्य सेवा की। उसने अक्टूबर 1888 से एपिग्रॉफिया इंडिका नामक एक त्रैमासिक शोध पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। बर्जेस के सेवानिवृत्त होने के बाद भारतीय पुरातत्त्व विभाग का अस्तित्व एक बार पुनः संकट में पड़ गया।

एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल के समक्ष 6 फरवरी सन् 1900 को बोलते हुए अभिलेखिकी के संबंध में लार्ड कर्जन ने तत्कालीन शासन के पुरातत्त्व संबंधी दायित्व को इस प्रकार स्पष्ट किया कि -'उत्खनन और खोज करना, वर्गीकरण, प्रतिलिपि एवं विवरण तैयार करना, प्राचीन लिपियों की अनुकृति बनाना, पढ़ना तथा इन सबकी यादगार बनाये रखने के लिए उन्हें सुरक्षित रखना हमारा दायित्व है।' [14]

द्वितीय काल (1902-1944 ईसवी) :-

अलेक्जेण्डर कनिंघम के पश्चात भारतीय पुरातत्त्व के द्वितीय काल को 'मार्शल काल' भी कहा जाता है। जॉन मार्शल 22 फरवरी 1902 को भारत के पुरातत्त्व महानिदेशक होकर आये। कार्यभार संभालने के एक वर्ष के अन्दर ही उत्खनन और जीर्णोद्धार या परिरक्षण के संबंध में स्पष्ट नीति एवं सिद्धान्तों का

निर्धारण किया गया। प्राचीन स्मारकों के संरक्षण एवं रख-रखाव के निश्चित नियम निर्धारित किये गए। वह चाहते थे कि अध्येता भारतीय पुरातत्त्व की नवीन शोधों की प्रगति से अवगत हो सके। इसके अतिरिक्त वास्तुकला के महत्वपूर्ण स्मारकों के जीर्णोद्धार तथा प्राचीन स्थलों के परिरक्षण पर जोर दिया। महत्वपूर्ण उत्खनन कार्यों के सचित्र प्रकाशन को भी वरीयता प्रदान की गई। मार्शल की महत्वपूर्ण भावी योजनाओं में पुरातत्त्व संग्रहालयों एवं भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के लिए सुसज्जित पुस्तकालय की स्थापना का कार्य विशेष उल्लेखनीय था। उदाहरणार्थ सन् 1903-04 के भारतीय पुरातत्त्व के बजट में पुस्तकालय के लिए चार हजार रुपयों का प्रावधान किया गया था।

पुरानिधियों एवं पुरावशेषों- विशेषकर व्यक्तिगत स्वामित्व के स्मारकों- को सुरक्षित रखने के लिए भी आवश्यक कदम उठाये गए। सन् 1904 में 'प्राचीन स्मारक परीक्षण अधिनियम' पास किया गया। इस अधिनियम के अनुसार शासन को प्राचीन स्मारकों के परिरक्षण, पुरावशेषों के व्यापार तथा कुछ खास प्राचीन स्थलों के उत्खनन पर नियंत्रण के साथ ही साथ आवश्यकता पड़ने पर पुरातत्त्व, इतिहास एवं कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण वस्तुओं तथा स्मारकों की सुरक्षा एवं अधिग्रहण का अधिकार प्राप्त हो गया था।

28 अप्रैल सन् 1906 को भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग एक स्थायी विभाग बना दिया गया। डॉ. स्टेन कोनो को भारतीय पुरालिपि के विशेषज्ञ के रूप में नियुक्त किया गया। द्वितीय काल को पुरातत्त्व संबंधी गतिविधियों के आधार पर दो उपकालों में विभाजित किया जा सकता है-

प्रथम उपकाल : सन् 1904 से लेकर 1920 तक

द्वितीय उपकाल : सन् 1921 से लेकर 1944 तक

21 मार्च सन् 1937 को राय बहादुर के.एन. दीक्षित ने महानिदेशक पद का कार्यभार ग्रहण किया। पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग की अर्थव्यवस्था में सुधार न होने से सर्वेक्षण विभाग सीमित पैमाने पर अपनी कुछ योजनाओं को ही कार्यान्वित कर सका था। सन् 1938 में लियोनार्ड वूली को पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के कार्य में सुधार लाने के लिए आवश्यक सुझाव देने हेतु आमंत्रित किया गया। वूली 6 नवम्बर 1938 से लेकर 11 फरवरी 1939 तक भारत में रहे। इस दौरान उन्होंने 45 स्थानों का निरीक्षण किया। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में प्राचीन स्मारकों के परीक्षण के कार्य एवं पुरालेखिकी को छोड़कर शेष समस्त क्रियाकलापों की कटु आलोचना की। उनकी रिपोर्ट में पुरातत्त्व संबंधी एक सलाहकार एवं पाषाणकाल के अध्ययन के लिए दो प्रागैतिहासविदों की नियुक्तियाँ एवं उत्खनन कार्य में विदेशी एवं भारतीय संस्थाओं की भागीदारी को यथेष्ट प्रोत्साहन की संस्तुतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय थीं जिन पर शासन ने तत्काल कोई कार्यवाही नहीं की। वूली ने उत्तरप्रदेश के बरेली जिले में स्थित अहिच्छत्र के टीले के उत्खनन का सुझाव दिया जिसे स्वीकार कर लिया गया।

पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के तत्कालीन महानिदेशक के.एन. दीक्षित के निर्देशन में सन् 1940-44 के मध्य अहिच्छत्र के टीले का विस्तृत पैमाने पर उत्खनन किया गया था। अहिच्छत्र के उत्खनन में विभिन्न पात्र-परम्पराओं के वर्गीकरण पर विशेष ध्यान दिया गया ताकि गंगा के मैदान में विकसित होने वाली विभिन्न संस्कृतियों के अनुक्रम की सम्यक जानकारी हो सके। के.एन.

दीक्षित ने गुजरात की साबरमती घाटी में खोजकार्य के लिए प्रथम भारतीय प्रागैतिहासिक दल का गठन किया था। इसके अतिरिक्त प्रादेशिक संग्रहालयों एवं भारतीय रियासतों के पुरातत्त्व विभागों के मध्य भी सम्पर्क सूत्र को पुनः कायम किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध का भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के कार्यकलापों पर सीधा असर पड़ा। मितव्ययिता के नाम पर पुरातात्त्विक और आभिलेखिक प्रकाशनों के मुद्रण एवं प्रकाशन का कार्य बन्द कर देना पड़ा।.

तृतीय काल (1944-1960 ईसवी):-

सन् 1944 में सौभाग्य से चार वर्ष के अनुबंध पर आर.ई.मार्टीमर व्हीलर ने रायबहादुर के.एन. दीक्षित के उत्तराधिकारी के रूप में महानिदेशक का पद ग्रहण किया। व्हीलर उत्खनन कार्य में वैज्ञानिक विधियों के प्रबल पक्षधर थे। प्रोफेसर हँसमुख धीरजलाल सांकलिया के शब्दों में -'व्हीलर के व्यक्तित्व में पुरातत्त्व के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों का मणिकांचन योग था। पुरातत्त्व संबंधी कार्यों में अनुभवी, अनुशासनप्रिय एवं नियोजन संबंधी नैसर्गिक प्रतिभा के धनी व्हीलर ने भारत के पुरातत्त्व महत्वपूर्ण परिवर्तनों तथा उसकी सर्वांगीण प्रगति के लिए अनेक कार्य किये।' उत्खनन शाखा का पृथक एवं स्वतंत्र रूप से गठन किया गया, जिसके कार्यों की देखरेख के लिए प्रारम्भ में उप-अधीक्षक की नियुक्ति की गई जिसका दर्जा कुछ समय बाद अधीक्षक का कर दिया गया। पाषाणकाल के पुरावशेषों के विषय में अध्ययन एवं अनुसंधान के लिए उपाधीक्षक की श्रेणी का एक प्रागैतिहासविद् नियुक्त किया गया। पुरावशेषों के रासायनिक विश्लेषण कार्य में प्रगति लाने

के लिए सहायक पुरातत्त्व रसायनविद् की भी नियुक्ति की गई। इस उत्तरदायित्व का समुचित ढंग से निर्वाह करने के लिए सन् 1945 में संयुक्त महानिदेशक का एक नया पद सृजित किया गया।

सन् 1945 में केन्द्रीय पुरातत्त्व सलाहकार परिषद् का गठन किया गया। इसका उद्देश्य पुरातत्त्व संबंधी आवश्यकताओं एवं भावी योजनाओं के विषय में केन्द्रीय शासन को परामर्श देना था। व्हीलर ने भारत में प्रशिक्षित पुरातत्त्ववेत्ताओं के अभाव को दूर करने के लिए भी आवश्यक कदम उठाये। देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा विद्यार्थियों को भेजने का लिखित आग्रह कुलपतियों से किया गया। प्रशिक्षणार्थियों के लिए छात्रवृत्ति तथा प्रशिक्षणकाल का उनका खर्च उठाने की भी व्यवस्था की गई। अन्वेषण तथा परिरक्षण के लिए पाठ्यक्रम आरम्भ किये गए।

व्हीलर स्तर विन्यास एवं त्रिविमितीय नाप-जोख पद्धति के प्रबल पक्षधर थे। भारत के पुरातत्त्व संबंधी उत्खनन कार्यों में इन विधियों को अपनाये जाने का एकमात्र श्रेय व्हीलर को है।[15] इस प्रकार भारत के पुरातत्त्व संबंधी उत्खनन कार्यों को विश्वस्तरीय बनाने का भरसक प्रयास किया गया। व्हीलर के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही दक्षिणभारत के पुरातत्त्व का कालक्रम एवं सांस्कृतिक अनुक्रम निर्धारित करना संभव हो सका।

30 अप्रैल 1948 को व्हीलर के बाद एन.पी.चक्रवर्ती ने पुरातत्त्व महानिदेशक का पदभार संभाला। चक्रवर्ती के कार्यकाल की प्रमुख घटना दिल्ली में राष्ट्रीय संग्रहालय की स्थापना को माना जा सकता है। यह संग्रहालय 15 अगस्त 1949 को गवर्नमेन्ट हाउस (वर्तमान राष्ट्रपति भवन) में स्थापित

किया गया था। 26 जनवरी 1950 को स्वतंत्र भारत का संविधान लागू होने पर केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच पुरातात्त्विक दायित्वों का भी बँटवारा हुआ। पुरातत्त्व संबंधी मसलों का केन्द्र, राज्य तथा समवर्ती सूचियों में वर्गीकरण किया गया। भारतीय संविधान की व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए सन् 1951 में संसद ने 'प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक तथा पुरास्थल एवं ध्वंसावशेष अधिनियम' पारित किया।[16] मार्च 1953 में अमलानन्द घोष महानिदेशक हुए। घोष ने राजस्थान, तत्कालीन पंजाब एवं गुजरात प्रदेश के विभिन्न पुरास्थलों का व्यापक पैमाने पर सर्वेक्षण कराया। राजस्थान के गंगानगर जिले में कालीबंगा, गुजरात के अहमदाबाद जिले में लोथल तथा पंजाब में रोपण आदि सैंधव सभ्यता से संबंधित महत्वपूर्ण पुरास्थल खोज निकाले गए। ताम्रनिधियों के संबंध में बी.बी. लाल ने विशेष अन्वेषण किया। सन् 1958 में अपेक्षाकृत व्यापक एक अधिनियम 'प्राचीन स्मारक तथा ध्वंसावशेष' नाम से पुरातात्त्विक संपदा की देखरेख एवं सुरक्षा के लिए संसद ने पारित किया जो 15 अक्टूबर 1959 से देशभर में लागू हो गया।[17]

चतुर्थ काल (सन् 1961 से अद्यावधि) :-

भारत में पुरातत्त्व के इतिहास का चौथा काल अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण माना जा सकता है। सन् 1961 में भारतीय सर्वेक्षण ने अपनी स्थापना के सौ वर्ष पूरे किये। चतुर्थ काल में भी सिन्धु सभ्यता सं संबंधित पुरास्थलों के सर्वेक्षण एवं उत्खनन का कार्य चलता रहा। धौलाबीरा के उत्खनन से सिन्धु सभ्यता के स्वरूप के विषय में नवीन जानकारी प्राप्त हुई।

बेलन घाटी , प्रवरा नदी की घाटी, राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों तथा कश्मीर

घाटी में किये गए प्रागैतिहासिक अन्वेषण पुरापाषाणिक अनुसंधान की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। मध्यप्रदेश के रायसेन जिले में भीम बैठका गुफाओं की खोज एवं उत्खनन मध्य पाषाणिक संस्कृति की दृष्टि से उल्लेखनीय है।[18] सन् 1967 में वाराणसी में 'इंडियन ऑर्किऑलॉजीकल सोसाइटी' की स्थापना हुई। सन् 1976 में 'सोसाइटी फॉर प्रिहिस्टॉरिक एण्ड क्वाटरनरी स्टडीज ' की स्थापना की गई।

भारत में पुरातत्त्व के अनुसंधान में उत्तरोत्तर प्रगति हो रही है। देश के अनेक विश्वविद्यालयों में पुरातत्त्व का अध्ययन हो रहा है। उत्खनन कार्य से संबंधित विवरणों का प्रकाशन प्रायः समय से नहीं हो पा रहा है। इसमें कुछ मुश्किलें भी हैं। पुरावशेषों की सुरक्षा, पुरास्थलों के उत्खनन आदि के विषय में सजग रहने की विशेष आवश्यकता है। पुरानिधियों के चोरी-छिपे विदेशों में जाने की समस्या भी उत्तरोत्तर विकट होती जा रही है। पर्यावरण प्रदूषण से प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारकों के लिए एक भिन्न प्रकार का संकट उत्पन्न हो गया है।[19]

भारतीय पुरावशेष अधिनियम :-

मानव के अतीत संबंधी समस्त अध्ययन तथा शोधकार्य साहित्यिक तथा पुरातात्त्विक साक्ष्यों की आख्या पर आधारित हैं। पुरातात्त्विक साक्ष्य मानव इतिहास को एक नया आयाम प्रदान करते हैं। प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक व पुरावशेष देश की सांस्कृतिक धरोहर हैं, इनको नष्ट होने से बचाने की आवश्यकता है। इस बात की अनुभूति शासन व सरकारों को धीरे-धीरे हुई है। इसके बाद पुरावशेषों और स्मारकों की सुरक्षा आदि के विषय में आवश्यक

कानून बनाये गये। कनिंघम के सुझाव पर सन् 1878 में पुरानिधि निखात अधिनियम पारित किया गया। [20]

इस कानून के अनुसार यदि किसी व्यक्ति को जमीन के अन्दर गढ़ा हुआ पुराना निखात मिले और उसका मूल्य दस रुपये से अधिक हो तो उस व्यक्ति का यह दायित्व है कि वह इसकी सूचना तत्काल जिलाधिकारी को दे। यदि निखात एक सौ वर्ष से अधिक पुराना है तो जिलाधिकारी निखात को बाँटने के स्थान पर भारत सरकार की ओर से उसका अधिग्रहण कर सकता है। अधिग्रहण करने पर पुरावशेष की उचित कीमत निखात पाने वाले व्यक्ति को मुआवजे के रूप में पाने का अधिकार है। इस कानून के आधार पर ही भारत सरकार को उन प्राचीन मूर्तियों, सिक्कों आदि को प्राप्त करने में सफलता मिली जो आज विभिन्न संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रहे हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि अज्ञान एवं लोभवश बहुत से लोग पुरावशेषों के मिलने पर उनको छिपा जाते हैं। धातु की बनी हुई वस्तुओं को गलाकर नष्ट कर देते हैं। यद्यपि यह मानवीय स्वभाव की स्वाभाविक प्रक्रिया है किन्तु इस प्रकार इतिहास संबंधी अत्यन्त महत्वपूर्ण साक्ष्य अज्ञानतावश प्रतिवर्ष नष्ट कर दिये जाते हैं। ऐसा न हो इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि जनता को विश्वास में लिया जाये तथा उसमें पुरावशेषों के प्रति जागरूकता पैदा की जाए, क्योंकि भारत के इतिहास की रचना के लिए पुरावशेष अत्यन्त महत्वपूर्ण साक्ष्य हैं।

सन् 1904 में 'प्राचीन स्मारक परिरक्षण अधिनियम' पारित किया गया। इस अधिनियम के अनुसार भारत को प्राचीन स्मारकों के परिरक्षण, पुरावशेषों

के व्यापार तथा कतिपय महत्वपूर्ण पुरास्थलों के उत्खनन पर नियंत्रण के साथ ही साथ आवश्यकता पड़ने पर पुरातत्त्व, इतिहास एवं कला की दृष्टि से उल्लेखनीय पुरावशेषों की सुरक्षा और अधिग्रहण का अधिकार प्राप्त हुआ।

सन् 1947 में पुरावशेष निर्यात नियंत्रण अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के अनुसार एक सौ वर्ष से अधिक पुराने पुरावशेषों का निर्यात शासन से लाइसेंस प्राप्त करके ही किया जा सकता है। स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माता प्राचीन एवं ऐतिहासिक स्मारकों तथा पुरावशेषों के विषय में समाज के उत्तरदायित्वों के प्रति भी काफी सजग एवं संवेदनशील थे। सन् 1919 तथा 1935 के भारतीय अधिनियमों में पुरातत्त्व को केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत रखा गया था किन्तु 26 जनवरी 1950 को स्वतंत्र भारत का जो संविधान लागू हुआ उसमें पुरातत्त्व को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है :-

केन्द्रीय सूची में उन प्राचीन तथा ऐतिहासिक महत्व के स्मारकों एवं पुरास्थलों को रखा गया जिन्हें संसद द्वारा पारित अधिनियम से राष्ट्रीय महत्व का घोषित किया जायेगा।

राज्य सूची में वे शेष समस्त पुरावशेष व स्मारक आयेंगे जिन्हें संसद ने राष्ट्रीय महत्व का घोषित नहीं किया है।

समवर्ती सूची में केन्द्रीय सूची में दर्ज स्मारकों को छोड़कर शेष सभी आयेंगे जिन पर केन्द्रीय और प्रदेश सरकार का समान अधिकार होगा।

सन् 1951 में प्राचीन तथा ऐतिहासिक स्मारक और पुरास्थल एवं ध्वंसावशेष (राष्ट्रीय महत्व की घोषणा) अधिनियम पारित किया गया। जो स्मारक सन् 1904 से ही राष्ट्रीय सूची के घोषित चले आ रहे थे उनके अतिरिक्त भूतपूर्व देशी

रियासतों में स्थित कतिपय उन स्मारकों को भी इस श्रेणी में सम्मिलित किया गया जिन पर स्वतंत्रता के पूर्व भारत सरकार का अधिकार नहीं था।

सन् 1958 में 'प्राचीन स्मारक और ध्वंसावशेष अधिनियम' नाम से एक अपेक्षाकृत व्यापक कानून संसद द्वारा पारित किया गया। इस अधिनियम का उद्देश्य स्मारकों की सुंदरता एवं सुरक्षा की रक्षा करना है। राष्ट्रीय महत्व का स्मारक घोषित होने के बाद भी उनमें जनता के निर्बाध प्रवेश की व्यवस्था है। कतिपय स्मारक इसके अपवाद हैं जिनमें नाममात्र का प्रवेश शुल्क लिया जाता है। रक्षित स्मारकों के अन्दर किसी प्रकार की सभा , बैठक, सार्वजनिक समारोह करने की अनुमति नहीं है किन्तु यदि किसी स्मारक का उपयोग धार्मिक पूजा के लिए होता रहा हो तो रक्षित स्मारक घोषित होने के बाद भी इसकी छूट रहेगी।

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के महानिदेशक से लाइसेंस प्राप्त किये बिना भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के सक्षम अधिकारियों को छोड़कर कोई अन्य व्यक्ति या संस्था रक्षित पुरास्थल का उत्खनन नहीं करा सकती है। रक्षित तथा आरक्षित किसी भी पुरास्थल पर उत्खनन के लिए लाइसेंस प्राप्त करना आवश्यक है। केन्द्रीय शासन की अनुमति के बिना कोई भी प्रदेश सरकार न तो उत्खनन करा सकती है और न ही किसी व्यक्ति अथवा संस्था को उत्खनन कार्य के लिए प्रोत्साहित कर सकती है। इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रांतीय सरकारें भी कानून बना सकती हैं और राज्य सूची के अन्तर्गत आने वाले स्मारकों एवं पुरास्थलों को रक्षित घोषित कर सकती हैं। कई राज्य सरकारों ने इस प्रकार के कानून बनाये भी हैं। इनके तहत यदि किसी रक्षित अथवा

आरक्षित पुरास्थल का मालिक कोई व्यक्ति है तो केन्द्रीय शासन उस व्यक्ति से उत्खनित पुरावशेष क्रय कर सकता है।

पुरावशेष एवं बहुमूल्य कलाकृतियाँ अधिनियम 1972 :-

भारत से कलाराशि को बड़ी मात्रा में चोरी-छिपे विदेश जाने से रोकने के लिए संसद ने सन् 1972 में 'पुरावशेष एवं बहुमूल्य कलाकृतियाँ अधिनियम 1972' पारित किया। यह अधिनियम किन्हीं कारणों से तत्काल लागू नहीं हो सका। 5 अप्रैल 1976 को एक घोषणा द्वारा सिक्किम को छोड़कर शेष समस्त भारत में इस अधिनियम को लागू कर दिया गया। कोई भी मानव निर्मित वस्तु (मूर्तियाँ, सिक्के, चित्र, हथियार, कवच, हौदे, हाथीदांत एवं लकड़ी का कामदार सामान, आभूषण, वस्त्र, फर्नीचर, पांडुलिपियाँ आदि) यदि एक सौ वर्ष से ज्यादा पुरानी है और उसका ऐतिहासिक, कलात्मक, धार्मिक, राजनीतिक या संग्रहालीय महत्व है तो वह पुरावशेष समझी जायेगी। ऐतिहासिक महत्व की 7 5 वर्ष पुरानी पांडुलिपियाँ भी पुरावशेष कही जायेंगी। कोई भी व्यापरी बिना लाइसेंस प्राप्त किये 'पुरावशेषों' एवं 'बहुमूल्य कलाकृतियों' का व्यापार नहीं कर सकेगा। लेकिन जो व्यापारी नहीं है केवल कला-संग्रहकर्ता हैं उनके लिए भी प्रावधान है कि वे अपनी कलाकृतियों को पंजीकृत करा लें। यह नियम सरकारी संग्रहालयों, शासकीय अभिलेखागारों तथा सरकारी कार्यालयों में सुरक्षित कलाकृतियों पर लागू नहीं होगा।

बहुमूल्य कलाकृतियों के पंजीकरण की विधि अत्यन्त सरल है। प्रत्येक कलाकृति के लिए एक फार्म भरा जाता है और साथ में छोटे आकार के तीन फोटो देने पड़ते हैं। पंजीकरण अधिकारी इन्हें अपने रजिस्टर में अंकित कर लेता

है और कलाकृति तथा उसकी एक प्रमाणित फोटो उसके मालिक को वापस कर दी जाती है।

अधिनियम का उद्देश्य :- यहाँ यह बात स्पष्ट कर देना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि इस अधिनियम का एकमात्र उद्देश्य यह पता लगाना है कि भारत में पुरातत्त्व महत्व की कुल कितनी कलाकृतियाँ हैं और वे कहाँ-कहाँ पर हैं। सरकार का इन्हें छीनने का उद्देश्य बिलकुल नहीं है। पुरावशेषों एवं बहुमूल्य कलाकृतियों के मालिकों को यह अधिकार है कि वे ऐसी कृतियों को आजन्म अपने पास रख सकते हैं। वे चाहें तो किसी को उपहार में भी दे सकते हैं और भारत के अन्दर किसी को बेच भी सकते हैं। यह बात दूसरी है कि इस अधिनियम के द्वारा सरकार को यह अधिकार अवश्य प्राप्त है कि यदि कलाकृति बहुत मूल्यवान हो तो वह गजट में घोषणा करके उसे अधिग्रहीत कर सकती है। परन्तु ऐसा कदम असाधारण परिस्थिति में ही उठाया जायेगा और तब सरकार को उस कलाकृति का विशेषज्ञों द्वारा निर्धारित उचित मूल्य मुआवजे के तौर पर मालिक को देना होगा। लेकिन ऐसी कोई भी कलाकृति जो धार्मिक स्थल पर पूजी जा रही हो अथवा उसका निर्माता कलाकार जीवित है तो सरकार किसी भी दशा में उसका अधिग्रहण नहीं कर सकेगी भले ही वह कितनी भी दुर्लभ कृति क्यों न हो।

रजिस्ट्रेशन एवं लाइसेन्सिंग अधिकारियों को यह अधिकार भी दिया गया है कि लिखित एवं विश्वसनीय रिपोर्ट मिलने पर वे किसी भी व्यक्ति अथवा संस्था से पूछताछ कर सकते हैं, तलाशी ले सकते हैं अथवा छापा डाल सकते हैं। भारत के बाहर कोई भी कलाकृति तब तक नहीं भेजी जा सकती है जब तक

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के महानिदेशक अथवा उसके द्वारा नियुक्त अधिकारी की अनुमति न मिल जाये। स्वयं भारत सरकार एवं उसके समस्त प्रतिष्ठानों को यह अनुमति लेना आवश्यक है।

यहाँ पर यह उललेखनीय है कि सन् 1970 में यूनेस्को की महासभा ने अवैध पुरावस्तु आयात-निर्यात और बिक्री को रोकने की एक नियमावली तैयार की है जिसमें प्रत्येक देश का सहयोग आवश्यक है। अभी तक केवल 24 देशों ने ही इस पर हस्ताक्षर किये हैं। विडम्बना यह है कि अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी और फ्रांस जैसे अमीर देशों ने अभी तक इस नियमावली पर हस्ताक्षर नहीं किये हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि जनमानस में भारतीय पुरातत्त्व के प्रति अभिरुचि उत्पन्न की जाये। लोगों को अपने देश के गौरवशाली एवं समृद्धशाली अतीत के प्रति सजग बनाया जाये क्योंकि जन-समर्थन के बिना प्रजातंत्र में कोई कार्य बहुत दिनों तक केवल सरकारी संरक्षण में नहीं चल सकता है।

पुरास्थलों का अन्वेषण :-

पुरातत्त्व से संबंधित अध्ययन और अनुसंधान में पुरास्थलों के अन्वेषण कार्य का महत्वपूर्ण स्थान है। पुरास्थलों की खोज को प्रायः पुरास्थल अन्वेषण अथवा पुरास्थल सर्वेक्षण या क्षेत्रीय सर्वेक्षण कहा जाता है। अंग्रेज पुरातत्त्वविद् इसे व्यावहारिक पुरातत्त्व या फील्ड ऑर्किआलॉजी कहना पसन्द करते हैं। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम विलियम फ्रीमैन ने प्राकृतिक विज्ञानियों के लिए किया था।

प्राकृतिक विज्ञान के अन्य बहुत से शब्दों की भाँति 'फील्ड ऑर्किआलॉजी' शब्द को भी पुरातत्त्व ने आत्मसात कर लिया। ओ.जी.एस.क्रॉफर्ड के अनुसार पुरातत्त्व में अन्वेषक पुरातत्त्वविद् शब्द का प्रयोग उस व्यक्ति के लिए किया

जाता है जो जमीन की ऊपरी सतह पर बर्तनों के ठीकरों, पाषाण उपकरणों आदि के रूप में बिखरे हुए मानवकृत अतीत के पुरावशेषों को ग्रामीण अंचलों में पैदल घूम-घूमकर ढूंढ़ता और उनका विवरण तैयार करता है।

उन्नीसवीं शताब्दी तक पुरातत्त्व संबंधी खोज कार्य मनमाने और अव्यवस्थित ढंग से किये जाते थे। इसके पश्चात पुरास्थलों के अन्वेषण तथा अनुसंधान का कार्य सुनियोजित तथा सुव्यवस्थित ढंग से किया जाने लगा। सामान्यत: व्यावहारिक पुरातत्त्व के अन्तर्गत अन्वेषण या परिमार्गण के अतिरिक्त उत्खनन की भी गणना की जाती है। सर्वेक्षण की उपेक्षा करने वाले पुरातत्त्व के अध्येता, सुविज्ञ इतिहासविद् एवं तुलनात्मक प्राचीन भाषाविद् तो हो सकते हैं लेकिन सही अर्थों में पुरातत्त्वविद् कतई नहीं हो सकते।

प्राचीन स्थलों को खोजने के दो प्रमुख तरीके हैं:-

1. अन्वेषण
2. उत्खनन

इतना तो तय है कि पुरास्थलों को खोजने तथा उनके पुरातात्त्विक महत्व को समझने की क्षमता केवल किताबी ज्ञान से प्राप्त नहीं की जा सकती। इसके लिए मैदानी ज्ञान परम आवश्यक है। इस कार्य को 'करो एवं सीखो' पद्धति से ही आसानी से सीखा जा सकता है।

अन्वेषक दल एवं उसके साज-सामान :-

पुरास्थलों की भौगोलिक स्थिति सर्वेक्षणीय क्षेत्र के आकार, परियोजना के देश एवं काल तथा संसाधनों पर खोजी दल के सदस्यों की संख्या प्राय: निर्भर करती है, लेकिन छोटे से छोटे सर्वेक्षण में भी कम से कम दो व्यक्ति अवश्य

होने चाहिये ।

पुरातात्त्विक खोजी दल के लिए बहुत अधिक सामान साथ लेकर चलने की आवश्यकता नहीं है । मौसम के अनुसार पहनने एवं ओढ़ने के वस्त्रों की व्यवस्था करना जरूरी है । अन्य आवश्यक साज-सामानों में सम्बद्ध क्षेत्र का मानचित्र, विवरण पंजिका (साइट नोटबुक), मीटर/सेमी अंकित फीते एवं मापक, कैमरा, पेंसिल, पेन, रबर, पुरावशेष एवं पुरानिधियों को भरने के लिए कागज के लिफाफे तथा कपड़े या प्लास्टिक की मजबूत थैलियाँ, पुरास्थल कार्ड और डोरे आदि की समुचित व्यवस्था होनी चाहिये ।

पुरास्थल सामान्यतः ऐसे स्थल अथवा स्थलों को कहा जाता है, जहाँ पर मानव के विगत क्रिया-कलापों अथवा आवास के संकेत उपकरणों एवं अन्य पुरावशेषों के रूप में बिखरे मिलते हैं । पुरास्थलों की संख्या एवं आकार-प्रकार प्राचीनकाल के मानव के क्रिया-कलापों पर निर्भर करता है । पुरास्थलों का आकार सीमित हो सकता है और विस्तृत ऊंचे टीले के रूप में भी हो सकता है । प्रागैतिहासिक काल के मानव के सीमित सांस्कृतिक उपादानो एवं यायावर जीवन पद्धति के कारण पुरास्थलों का आकार-प्रकार अपेक्षाकृत छोटा एवं सांस्कृतिक स्तरों का जमाव प्रायः पतला मिलता है ।

पुरास्थलों के अन्वेषण की प्रमुख विधियाँ :-

अन्वेषण या पैदल परिमार्गण से लेकर आकाशीय छायांकन तथा चुम्बकीय परीक्षण आदि विधियाँ आजकल पुरास्थलों की खोज के लिए प्रायः अपनाई जा रहीं हैं । इन विधियों का क्रमशः विकास हुआ है । प्रारम्भ में पुरास्थलों की जानकारी आकस्मिक खोज तथा अन्वेषण के आधार पर होती थी । यह कार्य योजनाबद्ध ढंग

से नहीं किया जाता था। ऐतिहासिक काल से सम्बन्धित पुरास्थलों की खोज धार्मिक, साहित्यिक एवं ऐतिहासिक प्राचीन ग्रंथों में प्राप्य वर्णनों तथा यात्रियों के वृतान्तों आदि की सहायता से की जाती थी।[21] भारत में भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के निदेशक जनरल कनिंघम ने सातवीं शताब्दी ईसवी के चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा वृतान्त के आधार पर उत्तर भारत के अनेक पुरास्थलों का पता लगाने में सफलता प्राप्त की थी।

पुरातत्त्वविदों से यह प्रश्न प्राय: किया जाता है कि पुरास्थलों को कहाँ पर खोजा जाए, इस बात का निश्चय वे लोग कैसे करते हैं ? इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि पुराविद् अपने अध्ययन एवं प्रशिक्षण के आधार पर इस तरह की समस्याओं का समाधान करते हैं। जिस काल विशेष से सम्बद्ध पुरास्थलों की खोज करने का लक्ष्य हो उन्हीं के अनुरूप क्षेत्र का चुनाव किया जा सकता है। पुरापाषाणिक मानव प्राय: पर्वतीय एवं पठारी क्षेत्रों में निवास किया करते थे क्योंकि उनका पूरा जीवन फल-फूल तथा कन्द-मूल के संग्रह और जंगली पशुओं के शिकार पर आश्रित था। नवपाषाणिक मानव ने घने वनों से निकलकर अपेक्षाकृत समतल पर्वत की तलहटियों को अपने निवास के लिए चुना था। [22]

पुरास्थलों को खोजने की विधियों को प्रमुख दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है [24] :-

1. परम्परागत पुरातात्त्विक पद्धति
2. वैज्ञानिक पद्धति

परम्परागत पुरातात्त्विक पद्धति:- पुरावशेषों और पुरानिधियों को खोजने की यह एक अपेक्षाकृत पुरानी पद्धति है। यह विधि सरल एवं कम खर्चीली है। इस

परम्परागत पद्धति के अन्तर्गत 1. आकस्मिक खोज, 2. तल-चिह्न संकेत तथा 3. साहित्यिक विवरण आदि की गणना की जा सकती है।

आकस्मिक खोज :- मानव के क्रियाकलापों के परिणामस्वरूप अथवा प्राकृतिक कारणों से जब किसी पुरास्थल के विषय में अनायास ही जानकारी हो जाती है तो इसको आकस्मिक खोज की संज्ञा दी जाती है। अनेक महत्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध पुरास्थल इसी प्रकार से प्रकाश में आये हैं।

तल-चिह्न संकेत :- मानव के आवास एवं अन्य क्रियाकलापों के संकेत चिह्न पुरास्थलों की ऊपरी सतह पर कभी-कभी बिखरे मिल जाते हैं। प्रागैतिहासिक पुरापाषाणिक स्थलों पर मानव निर्मित एवं प्रयुक्त पाषाण के औजार एवं उपकरण विकीर्ण मिलते हैं। अनेक पुरावशेष- विशेषकर सिक्के, मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े - टीलों के निचले भाग में तल पर बिखरे हुए मिलते हैं। पुरास्थल की खाई (परिखा) वाले भाग में फसल एवं पेड़-पौधे विशेष रूप से हरे-भरे रहते हैं। यदि नीचे ईंट अथवा पत्थर की दीवार है तो फसल का रंग पीलापन लिए हुए होता है। किसी स्थान की मिट्टी के अपेक्षाकृत गहरे रंग तथा राख एवं कोयले के बिखरे होने से भी पुरास्थल का संकेत मिलता है।

साहित्यिक विवरण:- किसी देश के प्राचीन वाङ्मय के उपलब्ध साहित्यिक साक्ष्यों एवं यात्रियों के यात्रा-वृतान्तों आदि के आधार पर ऐतिहासिक काल के पुरास्थलों की खोज की जा सकती है। सर्वेक्षण पर निकलने के पूर्व साहित्यिक साक्ष्यों से किसी पुरास्थल के विषय में जितनी अधिक जानकारी प्राप्त की जा सके उतना ही अच्छा रहता है। इससे किसी पुरास्थल पर किस प्रकार के पुरावशेषों के मिलने की संभावना हो सकती है इस बात का भी यथासंभव पूर्वानुमान किया जा

सकता है ।

भारत में संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं तमिल भाषाओं में विपुल मात्रा में प्राचीन वाङ्मय उपलब्ध है । इस प्राचीन साहित्यिक राशि साक्ष्यों की पुरातात्त्विक संभावनाओं का पूरी तरह से आकलन होना अभी शेष है ।

वैज्ञानिक पद्धति :- पुरास्थलों को खोजने के लिए परम्परागत पद्धति के अतिरिक्त वैज्ञानिक पद्धति का भी सहारा लिया जाता है । विज्ञान की बहुमुखी प्रगति के फलस्वरूप पुरास्थलों की खोज की अनेक विधियों का विकास संभव हुआ है । वैज्ञानिक विधियाँ अधिक सटीक एवं उपयुक्त हैं, लेकिन ये विधियाँ प्राय: व्ययसाध्य हैं और इनका प्रयोग भी सर्वत्र नहीं हो सकता है । प्रमुख वैज्ञानिक विधियों में हवाई छायांकन, भू-परीक्षण, चुम्बकीय परीक्षण, मृदा-विश्लेषण एवं समुद्रतल की पुरातात्त्विक खोज का उल्लेख किया जा सकता है ।

हवाई छायांकन :- पुरास्थलों को खोजने का यह एक महत्वपूर्ण माध्यम है । हवाई जहाज में लगाये जाने वाले शक्तिशाली कैमरे एक बार में ही विस्तृत क्षेत्र का शैर्षिक चित्र उतारने में सक्षम होते हैं । इन चित्रों के आधार पर तल-चिह्नों, शस्य संकेतों एवं प्रतिबिम्बित संकेतों को विशेषज्ञ आसानी से पहचान सकते हैं । हवाई छायांकन से प्राप्त जानकारी के आधार पर किसी क्षेत्र अथवा स्थल का पुरातात्त्विक सर्वेक्षण अधिक सफलता एवं सूक्ष्मता से किया जा सकता है । लेकिन भारत में इन विधाओं का पुरातात्त्विक कार्यों के लिए नगण्य रूप से ही उपयोग हो रहा है ।

भू-परीक्षण :- सर्वेक्षण के माध्यम से ज्ञात पुरास्थलों के विशिष्ट स्थान को ढूंढ़ने की प्रमुख विधियों में भू-परीक्षण की विधि का उल्लेख किया जा सकता है । भू-परीक्षण की अनेक विधियाँ हैं । लौह-शलाका प्रवेश एवं ध्वनि परीक्षण सबसे

आसान एवं कम खर्चीली विधियाँ हैं। लौह-शलाका भू-परीक्षण के लिए प्रयोग में आने वाली लौह-शलाकाएँ आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार की हो सकती हैं।

शब्द ध्वनि :- इस विधि में लकड़ी के दुरमुटों का उपयोग भूमि को कूटने के लिए किया जाता है। कूटने पर यदि तेज आवाज होंती है तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जमीन के नीचे पुरावशेष विद्यमान है। यदि आवाज हल्की है तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वहाँ पर किसी प्रकार के अवशेष नहीं हैं।

इलेक्ट्रॉनिक विधियाँ :- इन विधियों में सबसे बड़ी बाधा यह है कि ये व्ययसाध्य हैं। दूसरी कठिनाई यह भी है कि इलेक्ट्रॉनिक यंत्र सर्वत्र उपलब्ध नहीं हैं। इसीलिए इस विधि का उपयोग व्यापक पैमाने पर नहीं हो पा रहा है।

धातु अभिज्ञापक अथवा मेटल डिटेक्टर :- इस विधि का उपयोग उन्हीं पुरास्थलों पर किया जा सकता है जो धातुकाल से संबंधित हों। इसका एकमात्र कार्य धातु निर्मित पुरावशेषों एवं पुरानिधियों का पता लगाना है। समाधियों अथवा मकबरों आदि की खोज में इस यंत्र का उपयोग अधिक सफलता के साथ किया जा सकता है। इस यंत्र की प्रमुख त्रुटि यह है कि यह आजकल के टीन के डिब्बे एवं कांस्यकाल की बनी हुई प्राचीन तलवार में भेद नहीं कर सकता।

विद्युत प्रतिरोधमापक :- पुरास्थलों की सीमा के अन्दर स्थित पुरातात्त्विक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थलों की खोज के लिए मेटल डिटेक्टर से विद्युत प्रतिरोधमापक नामक यंत्र अधिक उपयोगी है।

चुम्बक मापक अथवा मैग्नोमीटर :- जमीन के अन्दर छिपी हुई वस्तुओं को खोजने के लिए सबसे विकसित किन्तु जटिलतम विधि मैग्नोमीटर की है। प्रोटोन

मैग्नोमीटर एक अत्यन्त संवेदी यंत्र है। इस यंत्र से पृथ्वी के अन्दर किसी क्षेत्र की गुरुत्वाकर्षण की तीव्रता की माप की जाती है। जिस क्षेत्र में कोई पुरावशेष छिपे होते हैं वहाँ पर प्रोटोन की मात्रा अधिक होती है।

मृदा विश्लेषण :- किसी स्थल की मिट्टी के रासायनिक विश्लेषण द्वारा भी पुरास्थलों की खोज की जा सकती है। मानव के आवास परिणामस्वरूप किसी स्थान की मिट्टी में प्राकृतिक रूप से विद्यमान फास्फोरस, नाइट्रोजन एवं कैल्शियम की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। खुले स्थान पर स्थित पुरास्थलों पर भी फास्फोरस के विद्यमान होने की संभावना रहती है। इसलिए फास्फोरस के विश्लेषण के माध्यम से उत्खनन के बिना ही पुरास्थलों की खोज संभव है।

सागरतल का सर्वेक्षण :- समुद्र में डूबे हुए प्राचीन जहाजों तथा उनमें लदी हुई पुरानिधियों को खोज निकालने में पुरातत्त्ववेत्ताओं को आशातीत सफलता प्राप्त हुई। बेथिस्कप्लस नामक यंत्र की सहायता से इस प्रकार का कार्य आसानी से सम्पन्न किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पुरास्थलों की खोज की विधियों में निरन्तर प्रगति हो रही है। इस प्रगति के साथ-साथ परम्परागत विधियों में आवश्यक सुधार एवं यथेष्ट परिष्कार भी किये जा रहे हैं। विज्ञान ने भी इस कार्य में उल्लेखनीय योगदान किया है। शासकीय, अर्द्धशासकीय तथा सार्वजनिक संस्थाओं ने समुचित आर्थिक सहायता प्रदान करके पुरास्थलों की खोज के कार्य को अधिक आसान बना दिया है। किन्तु अभी भी कानूनी अड़चनों, श्रम साध्यता और लालफीताशाही के कारण सर्वाधिक प्रचलित प्रकार सर्वेक्षण पर ही आधारित है।

पुरातात्त्विक उत्खनन

पुरातात्त्विक उत्खनन मानव के इतिहास की रचना करने में सहायक पुरावशेषों को खोजने की एक विशिष्ट विधि है। पुरातात्त्विक उत्खनन का उद्देश्य मानव के अतीत के सम्बन्ध में ऐसे तथ्य एवं आंकड़े एकत्र करना है जिनके अध्ययन तथा विश्लेषण के आधार पर मानव के समग्र इतिहास की यथासंभव रचना की जा सके।[24]

पुरातात्त्विक उत्खनन के कारणों को प्रमुख दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

1. अनुसंधानार्थ उत्खनन
2. बचाव उत्खनन

अनुसंधानार्थ उत्खनन :- इस कोटि में वे उत्खनन कार्य आते हैं जो किसी विशिष्ट प्रकार की शोध परियोजना के संदर्भ में पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक समस्याओं के समाधान के लिए किये जाते हैं।

बचाव उत्खनन :- आजकल नगर विन्यास, सड़क एवं सीवर लाइन के निर्माण अथवा नहर की खुदाई, बाँध निर्माण आदि विकास परियोजनाओं के परिणामस्वरूप बहुत से पुरास्थलों के अस्तित्व के विनाश का संकट उत्पन्न होता जा रहा है । ऐसी स्थिति में पुरातात्त्विक दृष्टि से इन स्थलों का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है।

उत्खनन की विधियाँ :-

पुरावशेषों एवं पुरानिधियों को उनके समग्र परिप्रेक्ष्य में खोज निकालने के साधनों में उत्खनन का अत्यन्त विशिष्ट स्थान है। किसी पुरास्थल का उत्खनन आजकल कतिपय विशिष्ट पुरातात्त्विक समस्याओं के समाधान के लिए किया जाता

है । किसी पुरास्थल के उत्खनन की रूपरेखा इस प्रकार बनायी जानी चाहिये कि सीमित किन्तु महत्वपूर्ण प्रश्नों का हल खोजा जा सके । किसी पुरास्थल के उत्खनन का औचित्य मात्र इसलिए नहीं है कि उसके उत्खनन से कुछ न कुछ पुरावशेष अवश्य प्राप्त होंगे । आजकल उत्खनन की प्रमुखतः दो विधियाँ प्रचलित हैं-

1. लम्बवत् अथवा शैर्षिक उत्खनन 2. क्षैतिज उत्खनन ।

लम्बवत् अथवा शैर्षिक उत्खनन :- किसी पुरास्थल पर संस्कृतियों के क्रम को जानने के लिए लम्बवत् अथवा ऊ र्ध्वाधर उत्खनन किया जाता है । लम्बवत् उत्खनन का आशय किसी सीमित क्षेत्र में गहराई तक उत्खनन करने से है , जिससे उस स्थल की विभिन्न संस्कृतियों अथवा अवस्थाओं का समुचित अनुक्रम ज्ञात हो सके । इस प्रकार के उत्खनन के फलस्वरूप उस स्थल का संस्कृति मान या समय मान तैयार किया जा सकता है । इस उत्खनन से यह जानकारी मिलती है कि किसी प्रागैतिहासिक पुरास्थल अथवा ऐतिहासिक टीले के क्षेत्र में किस संस्कृति के लोग कब आये । उनकी संस्कृति का अन्त कब हुआ ? इसके अलावा विभिन्न संस्कृतियों का पूर्वापर क्रम, पारस्परिक संबंध तथा सापेक्ष समय का अनुमान लगाया जा सकता है ।

क्षैतिज उत्खनन :- लम्बवत् उत्खनन से जब किसी संस्कृति अथवा पुरास्थल का अनुक्रम ज्ञात हो जाता है, तब उसके समग्र स्वरूप के विषय में जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है । तकनीकी, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक दशा की विस्तृत जानकारी प्राप्त करके उस संस्कृति को जीवन्त बनाया जा सकता है । किसी संस्कृति की विस्तृत एवं यथेष्ट जानकारी प्राप्त करने के लिए पुरास्थल का क्षैतिज विधि से उत्खनन किया जाता है । 'किसी संस्कृति का सर्वांगीण परिचय

प्राप्त करने के लिए जब किसी पुरास्थल के काल-विशेष से सम्बद्ध सम्पूर्ण अथवा अधिकांश निक्षेप का उत्खनन किया जाता है तो उसे क्षैतिज उत्खनन कहा जाता है।' [25]

क्षैतिज उत्खनन उस पुरास्थल पर अधिक उपयुक्त होता है जो एकाकी संस्कृति वाले होते हैं। व्हीलर का सुझाव है कि क्षैतिज उत्खनन प्रारम्भ करने से पूर्व स्तरीकरण की जानकारी कर लेना चाहिये अन्यथा किसी संस्कृति अथवा सभ्यता के अनुक्रम एवं कालक्रम का सही ढंग से निर्धारण नहीं हो पाता है। क्षैतिज उत्खनन के लिए अधिक धन-जन एवं समय की आवश्यकता होती है। एक बार असावधानी हो जाने पर ऐतिहासिक तथ्यों के सदैव के लिए नष्ट हो जाने की आशंका रहती है। [26]

शैर्षिक एवं क्षैतिज उत्खनन में सम्बन्ध :- शैर्षिक उत्खनन की तुलना व्हीलर ने रेलगाड़ी की एक ऐसी समय-सारिणी से की है जिसकी गाड़ी का कोई पता नहीं।[27] क्षैतिज उत्खनन को समय सारिणी विहीन रेलगाड़ी की संज्ञा दी गई है। कहने का आशय यह है कि लम्बवत् उत्खनन से किसी पुरास्थल अथवा किसी क्षेत्र की विभिन्न संस्कृतियों के कालक्रम की तो जानकारी हो जाती है लेकिन विस्तृत सांस्कृतिक विवरण के अभाव में यह जानकारी अधूरी , अपर्याप्त एवं एकांगी होती है। इसके विपरीत क्षैतिज उत्खनन से किसी काल अथवा पुरास्थल की संस्कृति के अधिकांश पक्षों की जानकारी तो हो जाती है किन्तु उनके कालक्रम आदि के सम्बन्ध में यथेष्ट जानकारी का अभाव खटकता रहता है। क्षैतिज उत्खनन में तिथि-क्रम का ठीक से पता नहीं चल पाता। अतः दोनों विधियों का प्रयोग किसी भी स्थान के उत्खनन में आवश्यक प्रतीत होता है। अतः दोनों ही विधियों की अपनी-अपनी उपयोगिता है।

पुरातत्त्व के स्त्रोत :- उपलब्ध सामग्री के आधाार पर अतीत को स्पष्ट करने का महती कार्य इतिहासज्ञ करते हैं। जिन आधार पर वह इतिहास का पुननिर्माण करता है उसे स्त्रोत कहते हैं । इतिहास के दो प्रमुख स्त्रोत है- साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक। इतिहासज्ञों ने भारतीय इतिहास को तीन भागों में बाँटा है। वह काल जिसके लिए कोई लिखित साधन उपलब्ध नहीं है, जिसमें मानव का जीवन अपेक्षाकृत सभ्य नहीं था 'प्रागैतिहासिक काल' कहलाता है। इतिहासकार उस काल को ऐतिहासिक काल की संज्ञा देते हैं, जिसके लिए लिखित साधन उपलब्ध हैं और जिसमें मानव सभ्य बन गया। [28]

इसके बीच का काल जब लिखित साक्ष्य उपलब्ध होने पर भी उन्हें समझा न जा सका उस काल को आद्य इतिहास कहते हैं । यह आद्य इतिहास तब इतिहास में बदल जायेगा जब उसके लेखों को पढ़ लिया जायेगा ।

प्रागैतिहासिक काल का इतिहास लिखते वक्त इतिहासवेत्ता पूरी तरह से उपलब्ध पुरातात्त्विक स्त्रोतों पर निर्भर रहता है। न केवल प्रागैतिहासिक के लिए वरन् पुरातात्त्विक स्त्रोत इतिहास के शुद्ध रूप को प्रस्तुत करने में सहायक होता है। 'प्राचीन इतिहास के ज्ञान के लिए पुरातात्त्विक प्रमाणों से बहुत अधिक सहायता मिलती है। ये साधन प्रामाणिक हैं तथा इनसे भारतीय इतिहास के अनेक अन्धयुगों पर प्रकाश पड़ता है। जहाँ साहित्यिक साक्ष्य मौन होते हैं वहाँ हमारी सहायता पुरातात्त्विक साक्ष्य करते हैं।' [29]

पुरातात्त्विक साधनों को ज्यादा महत्व देने का कारण है प्राचीन ग्रंथों के रचनाकालों का समय ज्ञात न होना। 'भारतीयों ने हर विषय पर ग्रंथ लिखे । ज्योतिष विज्ञान , खगोलशास्त्र, गणित, साहित्य। नहीं लिखा तो इतिहास पर, क्यों

? आखिर ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि भारतीय अखण्डकाल को खंडित करके उसका अपमान नहीं करना चाहते थे।'[30] काल के समुचित ज्ञान न होने के कारण उनसे किसी काल विशेष की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का ज्ञान नहीं होता। दूसरे साहित्यिक साधनों में लेखकों का दृष्टिकोण भी बाधक होता है। लेखक के लिए कृति का सृजन करते समय तटस्थ रहना सरल नहीं हो पाता इसके अतिरिक्त प्रतिलिपि करने वाले अपनी इच्छानुसार कई प्रकरणों को छोड़ देते हैं, कुछ जोड़ देते हैं। पुरातात्त्विक सामग्री में हेरफेर की गुंजाइश कम रहती है इसलिए पुरातात्त्विक स्रोत अधिक विश्वसनीय हैं।

पुरातात्त्विक स्रोतों में मुख्यत: अभिलेख, सिक्के, स्मारक एवं भवन, मूर्तिकला, चित्रकला, मृदभाण्ड, पांडुलिपियाँ आदि।

अभिलेख :- पुरातात्त्विक स्रोतों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत शिलालेख ही हैं। पत्थर, शिला अथवा धातुपत्र पर उत्कीर्ण होने के कारण इनमें आसानी से कुछ भी घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता। सभी अभिलेखों में तिथियाँ नहीं दी जातीं फिर भी अक्षरों की बनावट के आधार पर मोटे रूप से काल निर्धारण किया जा सकता है।[31] अभिलेखों के माध्यम को पुरालेखाशास्त्र (एपीग्राफी) कहते हैं और इनकी तथा दूसरे पुराने दस्तावेजों की प्राचीन तिथि के अध्ययन को पुरालिपिशास्त्र (पेलियोग्राफी) कहते हैं। अभिलेख मुहरों, प्रस्तर स्तम्भों, स्तपों, चट्टानों और ताम्रपत्रों पर मिलते हैं या मंदिरों की दीवारों और ईंटों या मूर्तियों पर।

अभिलेखों के अनेक प्रकार हैं। कुछ अभिलेखों में अधिकारियों और जनता के लिए जारी किये गए सामाजिक, धार्मिक तथा प्रशासनिक राज्यादेशों और

निर्णयों की सूचनाएं रहती हैं। अशोक के शिलालेख इसी कोटि के हैं। दूसरी कोटि में वे अनुष्ठानिक अभिलेख आते हैं जिन्हें वैष्णव, जैन,बौद्ध शैव आदि सम्प्रदायों के अनुयायियों ने भक्तिभाव से स्थापित स्तम्भों, प्रस्तर फलकों, मंदिरों और प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण कराया है। तीसरी कोटि में वे प्रशस्तियाँ आती हैं जिनमें राजाओं और विजेताओं के गुणों का बखान किया गया है। इन सबके अलावा बहुत से दानपत्र मिलते हैं जिनमें न केवल राजा और राजपुत्रों द्वारा शिल्पियों और व्यापारियों द्वारा भी मुख्यत: धर्मार्थ पैसा, मवेशी, भूमि आदि के दान लिखित हैं।

अभिलेखों को कई भागों में विभाजित किया जा सकता है - सरकारी, भूमि अनुदानपत्र, निजी अभिलेख। सरकारी अभिलेख या तो राजकवियों द्वारा लिखी गई प्रशस्ति हैं या फिर भूमि अनुदानपत्र। भूमि अनुदानपत्र अधिकतर तांबे की चादरों पर उत्कीर्ण होते हैं। इन अनुदान पत्रों में भूमिखंडों की सीमाओं के उल्लेख के साथ-साथ उस अवसर का वर्णन है जब वह भूमिखण्ड दान में दिया गया।

निजी अभिलेख ज्यादातर मंदिरों या मूर्तियों पर उत्कीर्ण रहते हैं। इन अभिलेखों में दान करने वाले व्यक्ति या प्रतिष्ठा के दिन का वर्णन किया जाता है।

सिक्के :- उपलब्ध सिक्कों के अध्ययन को मुद्राशास्त्र कहते हैं। आजकल की तरह प्राचीन भारत में कागज की मुद्रा का प्रचलन नहीं था परन्तु धातुपत्र या धातुमुद्रा का चलन था। प्राचीन सिक्के तांबे, चांदी, सोने और सीसे के बनते थे। पकाई हुई मिट्टी के सांचे बड़ी संख्या में प्राप्त होते हैं।[32]

बैंकिंग प्रणाली न होने के कारण लोग अपना धन मृणपात्र या धातुपात्र में रखकर जमीन में गाड़ देते थे। उत्खननों में ऐसी अनेक मुद्रानिधियाँ प्राप्त हुईं हैं जिनमें न

केवल भारतीय वरन् रोमन आदि विदेशी साम्राज्यों की मुद्राएं भी प्राप्त हुईं हैं। चूँकि सिक्कों का काम दान-दक्षिणा, खरीद-बिक्री और वेतन-मजदूरी के भुगतान में पड़ता था इसीलिए सिक्कों से उनके सम्बन्धित समय के आर्थिक इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। एक तरह से सिक्के अपने समय के साक्षी होते हैं।

पुरातात्त्विक सामग्री में सिक्कों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। सिक्कों पर उत्कीर्ण विभिन्न प्रकार के चिह्नों से उनके संबंधित स्थान का पता चल सकता है। प्राचीनतम सिक्कों पर कोई लेख नहीं है। ये सिक्के आहत सिक्के कहलाते हैं। इन पर चिह्नों का कोई ठीक अर्थ ज्ञात नहीं है। आहत सिक्कों पर बने चिह्न संबंधित गणराज्य के प्रतीक होते हैं। सिक्कों का बड़ा भाग यदि किसी एक स्थान पर उपलब्ध हो तो अनुमान लगाया जा सकता है कि सिक्कों का प्राप्तिस्थल उस शासक के राज्य का भाग था। सिक्कों पर अंकित देवाकृतियों से संबंधित राज्य के धार्मिक विचार जाने जा सकते हैं। सिक्कों की बनावट एवं प्रयुक्त धातु राज्य की अर्थव्यवस्था का संकेत देती है।

यदा-कदा भूमि मे दबे रह गए सिक्के जो आधुनिक काल में प्रकाश में आये हैं उनका इतिहास के पुनर्निर्माण में बड़ा योगदान है। 'यदि वे उपलब्ध न होते तो हमारे इतिहास के कितने पक्ष अधूरे रह जाते। आज भी वे पूरे हुए हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता। जब तब अज्ञात सिक्कों के प्रकाश में आने पर हमारी जानकारी में वृद्धि होती रहती है।'[33]

सिक्कों पर अंकित प्रत्येक चिह्न का भाव, अर्थ एवं प्रकार असंभव है।[34]

भारत में इंडो ग्रीक या हिन्द यवन शासकों के आगमन के साथ-साथ द्विभाषीय लेखों का मिलना प्रारम्भ होता है। वस्तुतः सिक्कों का इतिहास मानव के इतिहास

के साथ बुना हुआ है। (The story of coin is interwoven with the history of mankind) "[35]

किसी स्थान के इतिहास एवं सामाजिक स्थिति को जानने में सिक्कों से काफी सहायता मिलती है। सिक्कों को इतिहास एवं पुरातत्त्व की जानकारी का स्रोत कहा गया है। सिक्कों के माध्यम से काल, शासक तथा सामाजिक सभ्यता का भी ज्ञान प्राप्त होता है। सिक्कों पर जो प्रतीक अथवा प्रतिमा चिह्न मुद्रित हैं उनमें प्राय: सभी देवों और देवियों के दर्शन होते हैं, जिनसे पौराणिक बहुदेववाद की परम्परा का पूर्ण आभास तो प्राप्त होता ही है साथ ही साथ प्रतिमा पूजा का ऐतिहासिक प्रमाण भी हस्तगत होता है। [36]

स्मारक एवं भवन :- इनके अन्तर्गत प्राचीन इमारतें, मंदिर, मस्जिद, दुर्ग, गढ़ी आदि आते हैं। इनसे विभिन्न युगों की सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का बोध होता है। इनके अध्ययन से भारतीय कला के विकास का भी ज्ञान प्राप्त होता है। धार्मिक स्थानों के स्मारकों से जनता की आध्यात्मिकता तथा धर्मनिष्ठा का पता चलता है। विभिन्न स्थानों से प्राप्त स्मारकों से विभिन्न शैलियों और पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है। [37]

स्मारकों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. धार्मिक भवन (मंदिर, मस्जिद आदि)
2. धार्मिकेत्तर भवन (स्थापत्य, दुर्ग, गढ़ियां आदि)

मंदिर भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। साहित्य में देवालय की कल्पना पुरुषाकार रूप में की गई है। इसके विभिन्न अवयवों को विविध अलंकरणों से मंडित किया गया है। मंदिर निर्माण के निर्देशक सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन

वृहत्संहिता, मानसार, समरांगण, सूत्रधार, अपराजित पृच्छा, शिल्परत्न, रूपमंडन, विश्वकर्मप्रकाश आदि अनेक ग्रंथों में किया गया है। [38]

भारत में स्थापत्य शास्त्र भी है और कला भी। एक ओर इस महादेश के दोनों पथों पर स्थापत्य की महनीय एवं अद्भुत कलाकृतियों के महान निर्देशन फैले पड़े हैं और दूसरी ओर और दूसरी ओर इस विषय के भारतीय साहित्य वेद, वेदांग, इतिहास, पुराण, आगम एवं शिल्पशास्त्रीय या वास्तुशास्त्रीय ग्रंथों तथा प्रतिष्ठा एवं पद्धति से संबंधित ग्रंथों में भी पृथुल प्रविवेचन है। प्रथम कलाकृतियाँ हैं दूसरे कला सिद्धान्त। दोनों के समन्वय के बिना भारतीय स्थापत्य की आत्मा का स्वरूप नहीं पहजाना जा सकता। [39]

समरांगण सूत्रधार में 83 अध्याय हैं। एकमात्र इसी ग्रंथ में वास्तुविद्या के अविकल अंगों का सांगोपांग विवेचन है। विभिन्न शैलियों के भवनों - साधारण भवन, राजभवन,देव भवन, विशिष्ट भवन (सभा भवन आदि), उपभवन (गजशाला आदि) इत्यादि का वैज्ञानिक, सामाजिक तथा धार्मिक वर्गीकरण एकमात्र इसी ग्रंथ में प्राप्त होता है। [40]

धार्मिक भवनों में मंदिर एवं धार्मिक वाद-विवाद के लिए निर्मित स्थान आते हैं जबकि धार्मिकेत्तर भवनों में महल, दुर्ग, गढ़ी, बाबड़ी, हवेली, धर्मशाला आदि भवन आते हैं।

हम प्रत्येक कार्य में धार्मिक संस्कारों से अनुप्राणित हैं। स्थापत्य के संदर्भ में यह श्लोक भारतीय संस्कृति का रूप स्पष्ट करता है -

देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो देहः सनातनः।

त्यजेद ज्ञान निमर्ल्यिं सोऽहं भावेन पजयेत् ।।

अर्थात देह ही देवालय है और जीव ही देव है । अज्ञान को निर्माल्य समझकर त्यागना चाहिये, वह प्रभु ही हम हैं , इस भाव से पूजन करना चाहिये ।[41] क्योंकि -'भारतीय कला जहाँ एक ओर धार्मिक संस्कारों से अनुप्राणित है वहीं दूसरी ओर सौन्दर्य तथा आनन्द के तत्वों से पूर्ण है । कलाकारों ने भारतीय शिल्प के विभिन्न अंगों को कल्पना द्वारा चारुत्व से मंडित किया । '[42]

मूर्तिकला :- प्रतिमा का अर्थ है प्रतिरूप ।[43] मानव मस्तिष्क में अंकित आकृति को मूर्त रूप देना ही मूर्तिकला है । अमूर्त का मूर्त रूप ही मूर्ति है । मूर्ति पूजा की परम्परा सिंधु सभ्यता से प्रारम्भ हुई थी । सिंधु हड़प्पा से प्राप्त मूर्तियाँ बताती हैं कि द्रविण सभ्यता में मूर्तिपूजा का प्रचलन था, कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त भी द्रविणों के ही थे और वे काष्ठ, मृत्तिका एवं पत्थर की प्रतिमाएँ बनाते थे ।[44]

वैदिक आर्यों की मूर्तिपूजा संदिग्ध है । विल्सन कहते हैं कि वैदिक कालीन उपासना काल्पनिक, भावात्मक एवं प्रतीकात्मक थी । यज्ञ का प्राधान्य था । उनकी उपासना का आधार प्रतिमा न होकर आहुति थी ।

वैदिक काल के अंतिम चरण में मूर्ति पूजा का पुनः प्रचलन शुरू हुआ । 'सैंधव मूर्तियों के मिथक (फैबुलस) के स्थान पर मौर्ययुगीन शिल्प में भौतिकता है ।'[45]

मौर्ययुग के बाद भारतीय मूर्तिकला में कई मूलभूत परिवर्तन हुए । यह युग 'क्लासीकल' प्रवृत्ति के आगमन को स्पष्ट करता है । स्टेला, केमरिश ने भारतीय कला की निम्नलिखित प्रवृत्तियों को स्वीकारा :-

1. विषमताओं का सामंजस्य

2. काया एवं स्वरूप का एकात्मक भाव

3. विषयवस्तु की प्रचुरता

4. स्वमेव विकास और निरन्तरता।[46]

गुप्तकाल में मूर्तिपूजा विशेष रूप से लोकप्रिय हुई। उपलब्ध मूर्तियों को शैली के आधार पर कालों में विभाजित किया जा सकता है। मुख्यत: मूर्तिकला दो भागों में विभक्त की जा सकती है-

1. राज्याश्रित

2. लोकाश्रित

राज्याश्रित कला पर राज्य के विशेषाधिकार की छाप रहती है। इसी के कारण कई बार इसमें एकरसता भी प्राप्त होती है, जबकि लोककला में व्यक्तिगत रुचि के कारण विभिन्न दृष्टिकोणों का विवेचन होता है।[47]

चित्रकला :- पुरातात्त्विक स्रोतों के रूप में चित्रकला प्राचीनतम साक्ष्य है। जब मनुष्यों ने अपने हृदय के भावों को प्रकट करने के लिए किसी अन्य कला का सहारा नहीं लिया था, तब के साक्ष्य भी उपलब्ध हो चले हैं। चूँकि जीवन और कला का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है इसीलिए चित्रकला ने मनुष्य के तात्कालिक परिवेश को पूर्णरूप से उकेरा। चित्रकला के प्राचीनतम चिह्न भीमबैठका की गुफाओं से प्राप्त होते हैं। इन 475 गुफाओं में न जाने कितने चित्र बने हुए हैं। प्रागैतिहासिक मानव के ध्वंसावशेष ये चित्र प्रागैतिहासिक जीवन के अध्ययन में हमारी बहुत अधिक मदद करते हैं।[48]

सौन्दर्य को स्थायी बनाये रखने की कोशिशों ने ही चित्रकला को जन्म दिया होगा। इन चित्रों के विषय में अनेक विद्वानों की यह धारणा रही है कि उनमें

उपयोगिता, अभिचारपरकता एवं अतिविश्वास के भाव अधिक रहे हैं। सौन्दर्यमूलक दृष्टि से उनकी रचना नहीं की गई है। किन्तु यह मत भ्रामक है। मात्र उपयोग ही मानव को कलात्मक सृजन की प्रेरणा देने में असमर्थ रहा है।[49]

वैदिक काल में स्वास्तिक, कमल, वक्र, पूर्ण कुम्भ आदि प्रतीक प्रचलन में आये।[50]

शैली विशेष के आधार पर चित्रकला को प्राचीन, मुगल और आधुनिक की दृष्टि से विभाजित किया गया है।

मृदभाण्ड :- मिट्टी के बने बर्तन भी पुरातात्त्विक निर्धारण में सहायक होते हैं। मृदुभाण्डों से संस्कृति के विकासक्रम पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ा है, जैसे-गंगा-जमुना, दोआब में सबसे नीचे की सतह पर गेरुए रंग के मृदभाण्ड मिले हैं। उनके ऊपर की सतहों में मृदभाण्डों का क्रम यह है कि पहले काले और लाल मृदभाण्ड और फिर चित्रित धूसर मृदभाण्ड उसके बाद चमकदार काले मृदभाण्ड। ये क्रमशः सिंधु घाटी, वैदिक काल तथा मौर्यकाल को प्रदर्शित करते हैं।[51] इसके मृणमय पात्रों की डिजायन भी उनके कालक्रम निर्धारण में सहायक होते हैं। मिट्टी के बर्तन बनाने कला मध्यपाषाण काल से प्रारम्भ मानी जाती है। कुंभकारी सबसे पहले इसी अवस्था (नवपाषाण काल) में दिखाई पड़ती है। आरम्भ में हाथ से बनाये गए मृदभाण्ड मिलते हैं। बाद में मिट्टी के बर्तन चाक पर बनने लगे।[52]

मृदभाण्डों की परम्परा की अपनी विशिष्टताएं हैं, जैसे- पात्र-पात्रों के ऊपर लाल रंग का लेप उन्हें घिसकर चमकाने का साक्ष्य मिलता है। बर्तन प्रायः चाक पर बने हुए हैं लेकिन उनके कुछ हिस्से जैसे टोंटी, आधार आदि को हाथ

से बनाया जाता था। इस पात्र परंपरा में कई तरह के पात्र मिलते हैं जिनमें टोंटीदार बर्तन, कोखदार कटोरे, छोटी तथा बड़ी गर्दन वाले बर्तन, तसले, गहरे कटोरे आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।[53]

एक स्थान से ठीकरों का मिलना संस्कृति विशेष के क्षेत्र को स्पष्ट करता है।

पांडुलिपि :- हस्तलिखित ग्रंथों को पांडुलिपि कहते हैं। हिन्दी शब्द-सागर, लेख आदि का पहला रूप जो काट-छांट या बढ़ाने-घटाने के लिए तैयार किया जाए।[54] " Something written by hand'[55] वस्तुतः पांडुलिपि किसी भी कृति की प्रकाशन के पूर्व की वह अवस्था है जिसमें परिमार्जन और परिवर्द्धन की पर्याप्त गुंजाइश रहती है, अपितु यह कहना चाहिये कि पांडुलिपि का उद्देश्य ही यह होता है कि कृति में किसी भी प्रकार की कोई कमी या त्रुटि न रह जाए। पांडुलिपि की यह परिभाषा वर्तमानकाल में तो पूर्णतः उपयुक्त है किन्तु प्रारम्भ में जब प्रकाशन तकनीक ठीक से विकसित भी नहीं हुई थी तब किसी भी लेख को अंतिम रूप देने से पहले उसका मसविदा जमीन पर, दीवार पर या लकड़ी के पट्टे आदि पर पीली मिट्टी, गेरू या खड़िया से लिख लिया जाता था , इस प्रारूप को भी पांडुलिपि कहा जाता है।

जनपद जालौन में उपलब्ध पुरातात्त्विक सामग्री

बुंदेलखंड पुरातत्त्व और ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध क्षेत्र है। बुन्देलखंड का सबसे महत्वपूर्ण जनपद जालौन जिला भी अकूत पुरासंपदाओं से भरपूर है। पुरावशेषों के माध्यम से इतिहास के काल निर्धारण तथा तत्कालीन समाज की व्यवस्थाओं पर प्रकाश डाला जा सकता है और निश्चित रूप से किसी तर्कसंगत निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है।

प्रागैतिहास तो नहीं लेकिन जनपद के मुख्यालय उरई से कुछ ताम्रउपकरण प्राप्त हुए हैं। मकान की खुदाई के समय ताम्र उपकरण एवं ताम्रपिण्ड प्राप्त हुआ है। ताम्र उपकरणों में दो हैण्डेक्स व एक गोल पहियानुमा आकृति प्राप्त हुई है। [56]

यद्यपि जालौन गजेटियर की भूमिका में लिखा है कि प्राचीन इतिहास की दृष्टि से इस जनपद का कोई इतिहास ही नहीं है। कहा जाता है जिसका इतिहास नहीं होता उसका कोई भविष्य भी नहीं होता। [57]

इसके अतिरिक्त जनपद जालौन से कोई ताम्राश्म या पुरापाषाण उपकरण प्राप्त नहीं होते हैं। जनपद में विभिन्न स्थलों की खुदाई से लौहयुगीन, ताम्रयुगीन, कुषाणकालीन एवं अन्य कालखण्डों की पुरासंपदा प्राप्त हुई है। वेतवा के किनारे सागर के निकट एरण से ऐसे ही अवशेषों का रेडियो कार्बनविधि से काल निर्धारण ईसा से लगभग 1800 ई.पू. माना गया है। वेतवा के किनारे बसे जालौन जनपद के अनेक नगरों का आकलन उसी काल का किया जा रहा है। [58]

सन् 1981ई. में कोंच के गढ़ी क्षेत्र के उत्खनन में राज्य पुरातत्त्व निर्देशालय की टीम द्वारा सर्वेक्षण करने पर लाल रंग की मिट्टी के बर्तन प्राप्त होते हैं। इनमें ऊं ची गर्दन वाले पानी के बर्तन (कुषाणकालीन) तथा गुप्तकालीन सीधी अवठ वाले सकोरे, अन्दर की ओर मुड़ी अवठ वाली तश्तरियाँ प्राप्त हुई हैं जिन पर लाल पॉलिश है। टीले पर बिखरे मृणपात्रों को देखने से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह स्थल कुषाणकाल से मध्यकाल तक आबाद रहा है। [59]

कोंच के तहसील प्रांगण की खुदाई में प्राप्त लौह उपकरण कोलों की उपस्थिति का परिचय देते हैं क्योंकि लोहे के प्रयोग का समुचित ज्ञान कोलों को

ही था। हाल ही में कालपी में की गई खुदाई में 45 हजार वर्ष पुराने जीवाश्म तथा अस्थि हथियार प्राप्त हुए हैं। इनके विश्लेषण से इस क्षेत्र के इतिहास के कई अनछुए, अद्भुत और महत्वपूर्ण पहलू प्रकट होने की आशा है। इनसे उन लोगों को मुँहतोड़ उत्तर दिया जा सकेगा जो कहते हैं कि इस क्षेत्र का कोई इतिहास ही नहीं है।

जनपद जालौन में उपलब्ध कतिपय शिलालेख इस प्रकार हैं :-

- कालपी के सदर बाजार स्थित दिगम्बर जैन मंदिर में अंकित शिलालेख में अंकित है कि इस मंदिर का निर्माण संवत् 1863 में माखनलाल हरप्रसाद जैन द्वारा आध्यात्मिक चेतना के जागरण हेतु कराया गया था। [60]

- रामपुर स्थित गढ़ी से प्राप्त शिलालेख में इसके निर्माण की तिथि तथा निर्माणकर्ता का नाम अंकित है। यह शिलालेख लयबद्ध देवनागरी में है।

- पाहूलाल मंदिर कालपी का शिलालेख भी देवनागरी लिपि में है।

- रोपण गुरु मंदिर के अन्दर दक्षिण द्वार के ऊपर लगा शिलालेख संस्कृत भाषा में है। [61]

- कालपी संग्रहालय में उपलब्ध प्राचीन मुद्राएं, चित्रकला, प्राचीन मूर्तिकला तथा प्राचीन पात्र आदि के रूप में यहाँ पांडुलिपियों का अद्भुत संग्रह है।

- बुंदेलखण्ड संग्रहालय उरई में ताम्र उपकरणों, सिक्कों के सहस्त्र प्रकार, पाण्डुलिपियों का भण्डार, चित्रकला के विविध रूप, मूर्तियों के अनुपम प्रकार, लोक संस्कृति से सम्बन्धित अनेकानेक वस्तुओं का संग्रह है।

- श्री अयोध्या प्रसाद कुमुद के निजी संग्रहालय में प्राचीन पात्र, सिक्के, पाण्डुलिपियों, लघुचित्र प्रकार, स्टेन्सिल/कटवर्क शैली के चित्रों का अनूठा

संग्रह है। रागमाला और बारहमासा के लगभग 200 वर्ष पुराने बुन्देली शैली के पाण्डुलिपि लघुचित्रों का संग्रह है। लगभग छह हजार पुस्तकों का पुस्तकालय भी उपलब्ध है, जिनमें शताधिक पाण्डुलिपियाँ हैं।

- श्री पूरनलाल अग्रवाल के संग्रहालय में आहत मुद्राओं से लेकर आधुनिक काल तक के सिक्के उपलब्ध हैं।

- श्री के.के. गहोई के निजी संग्रहालय में प्राचीन सिक्कों के अतिरिक्त एक विशाल पुस्तकालय है जिसमें आयुर्वेद के प्रचुर ग्रंथ हैं।

- श्री रामलला मंदिर कोंच के पाण्डुलिपि संग्रह में आज से लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व प्राचीन भारतीय साहित्य एवं दुर्लभ संस्कृत ग्रंथों की सुन्दर पाण्डुलिपियाँ कराकर उनका संग्रह किया गया था। इसमें अभी भी सैंकड़ों प्राचीन पाण्डुलिपियाँ एवं यंत्रादि हैं।

- रूराजती स्थित श्री जैन मंदिर एवं इसके गिरि परिवार में प्राचीन पाण्डुलिपियों का अच्छा संग्रह है।

- मरैयाँ साहब (निरंजन) द्वारा स्थापित श्री रामजानकी मंदिर सिमरिया में भी प्राचीन पाण्डुलिपियों का अच्छा संग्रह है।

समग्र जनपद से विभिन्न प्रकार की पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं। ये पांडुलिपियाँ धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक आदि सभी विषयों से सम्बद्ध हैं। यहाँ उपलब्ध रियासतों की पांडुलिपियाँ उनकी वंशावलियों को स्पष्ट करती हैं। रामपुरा रियासत से उपलब्ध गोपालपुरा की पांडुलिपि तथा धार्मिक दृष्टि से प्रणामी पंथ की पांडुलिपि के अतिरिक्त और भी अनेक महत्वपूर्ण पांडुलिपियाँ उपलब्ध हैं।

आईना कालपी मुंशी इनायत उल्ला की डायरी है जिसे 1305 में उर्दू में लिखा गया

था। इसमें कालपी के इतिहास और पुरानी इमारतों का जिक्र है।

स्मारक और भवनों को भी धार्मिक और धार्मिकेत्तर भवनों में बाँटा जा सकता है।

धार्मिकेत्तर भवनों में कालपी का दुर्ग जिसे चन्देलों के आठ दुर्गों में से एक माना जाता है परन्तु यह साक्ष्य पुरावेत्ताओं द्वारा स्वीकृत नहीं है।[62]

जगम्मनपुर की गढ़ी, रामपुरा की गढ़ी, गोपालपुरा रंगमहल, कालपी श्री दरवाजा, बावड़ी जालौन, सुभानगुण्डा हवेली, हवेली काली, कालपी में गणेश मंदिर, चौरासी गुम्बद, शाही मस्जिद, चिल्ला मजार साहब, पाहूलाल मंदिर, दिगम्बर जैन मंदिर, बड़ास्थान लक्ष्मीनारायण, पातालेश्वर, व्यास क्षेत्र, कुम्भज मंदिर, कोंच के धार्मिक स्थल- लक्ष्मीनारायण मंदिर, बारहखम्भा, तकिया खुर्रम शाह, कलन्दर शाह की मजार, जालौन के द्वारिकाधीश, लक्ष्मीनारायण, करणखेड़ा, कन्जौसा रामेश्वरम् पंचमुखी, उरई क्षेत्र के मंदिर- लक्ष्मीनारायण, नृसिंह भगवान, अक्षरादेवी, रामेश्वर मंदिर, रामसीता मंदिर, जामा मस्जिद, खौ खौ देवी, मंसिल माता, रामलला मंदिर, रोपण गुरु कुकरगांव आदि।

जनपद जालौन में चित्रकला की विस्तृत परम्परा प्राप्त हुई है। चित्रकला की विविध विधाएं यहाँ उपलब्ध हैं। पटचित्र, हाथीदाँत पर अंकित चित्र, मंदिर के बैकेटों पर अंकित चित्र तथा स्टेन्सिल चित्रों की एक लम्बी परम्परा यहाँ प्राप्त होती है। इन चित्रों को धार्मिक और धार्मिकेत्तर के अतिरिक्त राज्याश्रित एवं लोकाश्रित चित्रकला में विभक्त किया गया है। धार्मिक ग्रंथों पर आधारित चित्रों के अतिरिक्त लौकिक विषयों यथा रागमाला, बारहमासा से सम्बन्धित कई चित्र प्राप्त हुए हैं।

मूर्तियाँ:- जनपद में यत्र-तत्र सर्वेक्षणों में सर्वत्र मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं।

ब्राह्मणी, जैन, बौद्ध तथा लौकिक सभी प्रकार की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। सर्वाधिक प्रकार गणेश, दुर्गा, शिव तथा विष्णुरूपों के प्राप्त होते हैं। विशेष मूर्तियों में सूर्य प्रतिमा, ब्रह्मा की तथा नृत्य गणेश की मूर्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

सिक्के :- सिक्कों में प्राचीन आहत मुद्राओं से लेकर श्रीनगर, कालपी, दतिया मिन्ट मार्क से युक्त सिक्के भी प्राप्त होते हैं जिनमें कुषाणकाल, गुप्तकाल तथा नागशासकों से सम्बन्धित सिक्के हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जनपद जालौन में पुरासम्पदा का अकूत भण्डार है। यदि इसका सुविचारित और सुनियोजित ढंग से अध्ययन और विश्लेषण किया जाए तो इतिहास के अनेक अनखुले पृष्ठों का खुलासा हो सकता है।

संन्दर्भ सूची

1. पुरातत्त्व विमर्श : डॉ. एस.एन. पाण्डेय , पृष्ठ - 101
2. पुरातत्त्व विमर्श : डॉ. जे.एन. पाण्डेय , पृष्ठ - 3
3. बुन्देलखण्ड का पुरातत्त्व : एस.डी.त्रिवेदी , पृष्ठ - 7
4. पुरातत्त्व विमर्श : डॉ. जे.एन. पाण्डेय , पृष्ठ - 5
5. नई दुनिया (दीपावली विशेषांक 1999) पृष्ठ -78
6. पृथ्वी से पुरातत्त्व : मोर्टिमर व्हीलर , पृष्ठ - 48
7. पुरातत्त्व विमर्श : डॉ. जे.एन.पाण्डेय , पृष्ठ - 6
8. पृथ्वी से पुरातत्त्व : आर.ई.एम.डब्ल्यू. , पृष्ठ - 2
9. डब्ल्यू. डब्ल्यू. टेलर
10. ओ.जी.एस.क्राफोर्ड
11. गंगा पुरातत्त्वांक : राहुल सांस्कृत्यायन, रामगोविन्द त्रिवेदी, पृष्ठ - 3
12. पुरातत्त्व विमर्श : डॉ. जे. एन. पाण्डेय , पृ. 36
13. वही , पृ. 41
14. गंगा पुरातत्त्वांक : राहुल सांस्कृत्यायन, पृष्ठ - 125
15. पृथ्वी से पुरातत्त्व : आर.ई.एम.डब्ल्यू. , पृष्ठ - 2
16.भारत का संविधान : डी.डी. वसु , पृ. 430
17. वही
18. धर्मयुग , दिसंबर 1973, पृ. 17
19. दैनिक नई दुनिया , 18 जनवरी 1997, रविवारीय परिशिष्ट
20. संविधान : सुभाष कश्यप , पृ. 55
21. प्राचीन भारत का इतिहास : श्रीमाली और झा , पृ. 35
22. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति : के. सी. श्रीवास्तव, पृ. 35
23. पुरातत्त्व विमर्श : डॉ. जे. एन. पाण्डेय , पृ. 64
24. पुरातत्त्व विमर्श : डॉ. जे. एन. पाण्डेय , पृ. 73
25. पृथ्वी से पुरातत्त्व : आर.ई.एम.डब्ल्यू. , पृष्ठ - 125

26. पृथ्वी से पुरातत्त्व : आर.ई.एम.डब्ल्यू. , पृष्ठ - 140
27. पुरातत्त्व विमर्श : डॉ. जे. एन. पाण्डेय , पृ. 81
28. प्राचीन भारत का इतिहास : श्रीमाली और झा , पृ. 13
29. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति : के. सी. श्रीवास्तव, पृ. 13
30. श्री कपिल तिवारी द्वारा मंडपम् सभागार उरई में दिये गए संबोधन का अंश
31. प्राचीन भारत का इतिहास : श्रीमाली और झा , पृ. 14
32. प्राचीन भारत : रामशरण अग्रवाल , पृ. 23
33. प्राचीन भारतीय मुद्राएँ : परमेश्वरी लाल गुप्ता , पृ. 7
34. गंगा पुरातत्त्वांक : राहुल सांस्कृत्यायन, पृष्ठ - 201
35. कॉइन : परमेश्वरी लाल गुप्ता , पृ. 1
36. भारतीय स्थापत्य : डॉ. द्विजेन्द्र नारायण शुक्ला , पृ. 33
37. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरिमोहन पुरवार , पृ. 263
38. बुन्देलखण्ड का पुरातत्त्व : डॉ. एस. डी. त्रिवेदी , पृ. 31
39. भारतीय स्थापत्य : डॉ. द्विजेन्द्र नारायण शुक्ला , पृ. 36
40. समरांगण सूत्रधार : पुरनिवेश
41. भारतीय स्थापत्य : डॉ. द्विजेन्द्र नारायण शुक्ला , पृ. 217
42. भारतीय वास्तुकला इतिहास : डॉ. के. डी. वाजपेयी, पृ. 2
43. प्रतिमा विज्ञान : डॉ. इन्दुमती मिश्रा
44. विष्णुपुराण की भूमिका : एच.एच. विल्सन , पृ. 2
45. भारतीय मूर्तिकला : डॉ. आर. एन. मिश्रा
46. क्लासीकल एण्ड मेडीवल इंडियन आर्ट : स्टेला क्रेमरिश : पृ. 279
47. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरिमोहन पुरवार , पृ. 246
48. धर्मयुग : सितंबर 1973 , पृ. 9
49. कला और कलम : डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल , पृ. 31
50. वही , पृ. 34
51. प्राचीन भारत का इतिहास : श्रीमाली और झा , पृ. 19
52. प्राचीन भारत : रामशरण अग्रवाल , पृ. 44

53. पुरातत्त्व विमर्श : डॉ. जे. एन. पाण्डेय , पृ. 417
54. हिन्दी शब्द सागर , पृ. 124
55. द स्टूडेन्ट इंगलिश डिक्शनरी , पृ. 440
56. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरिमोहन पुरवार , पृ. 246
57. 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम और जनपद जालौन : डॉ. डी. के. सिंह , पृ. 1
58. सारस्वत (जनपद जालौन विशेषांक), पृ. 3
59. वही , पृ. 70
60. वही , पृ. 38
61. जालौन गजेटियर : ब्रोकमेन , पृ. 116
62. वही , पृ. 362

चतुर्थ अध्याय

जनपद जालौन में उपलब्ध साहित्य

अध्याय - 4

जनपद जालौन में उपलब्ध साहित्य

इतिहास अथवा पुरातत्त्व के संदर्भ में साहित्य से आशय मात्र लोकरंजन के निमित्त लिखी जाने वाली रचनाओं से ही नहीं होता। इस विशिष्ट परिप्रेक्ष्य में साहित्य के अन्तर्गत वे सभी आलेख भी आ जाते हैं जो हमें तत्कालीन समय की राजकीय, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व अन्य क्षेत्रों से सम्बन्धित गतिविधियों की जानकारी व सूचनाएँ उपलब्ध कराते हैं। अर्थात प्रकाशित अथवा अप्रकाशित पांडुलिपियाँ, ग्रंथ, राजाज्ञाएँ, शासकीय आदेश-निर्देश, ताम्रपत्रों अथवा शिलालेखों पर उत्कीर्ण लेख व मुद्राएं तथा ऐसी कोई भी अन्य सामग्री जिस पर अंकित शब्द हमारे लिए सूचनाओं का माध्यम बन सकें, इतिहासवेत्ताओं के लिए साहित्य की कोटि में आते हैं। यह साहित्य ही उनके लिए स्रोत भी होता है और पुरासामग्री भी।

जनपद जालौन में इस दृष्टि से साहित्य की खोज के प्रयासों के दौरान मैंने पाया कि यहाँ धार्मिक, तान्त्रिक तथा ज्योतिष जैसे विषयों से सम्बन्धित पांडुलिपियाँ तो तो प्रचुर मात्रा में हैं परन्तु तथ्यान्वेषण में सहायक बन सकने वाले प्रकाशित या अप्रकाशित ग्रंथ, ताम्रपत्र आदि सामग्री अत्यधिक न्यून मात्रा में ही उपलब्ध हो पाती है। उन्नीसवीं सदी से इस परिदृश्य में बदलाव आया है, अर्थात 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर वर्तमानकाल तक से सम्बन्धित इस

प्रकार की सामग्री जहाँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है वहीं 18वीं सदी व उससे पूर्ववर्ती कालावधि से सम्बन्धित सामग्री यदा-कदा ही हाथ लगी। इस अध्याय में मैंने उपलब्ध सामग्री के आधार पर सन 1800 तक की स्थिति का आकलन किया है।

जनपद जालौन में उपलब्ध पांडुलिपियाँ

लेखनकला इतिहास में विभाजक का कार्य करती है। इतिहास के तीन विभाजन-प्राक्इतिहास/प्रागैतिहास, आद्य इतिहास एवं इतिहास में मुख्य आधार लेखनकला/ लिपि रही है। **प्रागैतिहास** में जहाँ लेखन कला के साक्ष्य प्राप्त नहीं होते, वहीं **आद्य इतिहास** वह काल है जहाँ लिपि तो उपलब्ध है लेकिन वह अब तक पढ़ी नहीं जा सकी है। **इतिहास** वह काल है जहाँ से लिपि के स्पष्ट साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। मनुष्य ने लेखनकला की खोज सहस्त्राब्दियों पहले की होगी। लिपि का होना किसी भी सभ्य समाज की निशानी है।

लेखन के कई अर्थ लिये जा सकते हैं। वर्तमान काल में जिस प्रकार हाथ से सहज उपलब्ध कागज पर लेखन किया जाता है, प्रारम्भ में यह सुविधा सुलभ नहीं थी। तब न कागज था और न ही आज जैसी कलमें। सभ्यता के छोर से अब तक लेखन ने लम्बी विकास यात्रा तय की है। ईंटों पर, शिलाओं पर, मृदभाण्ड, मेष, चर्म, मोमपाटी, चमड़े आदि पर लेखन किया गया। नुकीले सरकण्डे या किसी अन्य नोकदार वस्तु से ताड़पत्र , भोजपत्र पर उकेरकर बनाये गए अक्षरों ने लेखन की विकास यात्रा में सहयोग किया। खोजकर्ता या इतिहासकारों ने इन लेखों को शिलालेख, अभिलेख या ताम्रलेख आदि का नाम

दिया। इन लेखों की विकसित परिणित है पुस्तक लेखन। लेखन के इस विशिष्ट प्रकार से ही पांडुलिपि का क्षेत्र जुड़ा हुआ है। अंग्रेजी भाषा में पाण्डुलिपि को Mainuscript कहते हैं। इसे हस्तलेख भी कहा जाता है। रूढ़ अर्थ में पाण्डुलिपि का सम्बन्ध ग्रंथ से होता है। पाण्डुलिपि और हस्तलेख पुस्तक की वह अवस्था है जब वह अपना अंतिम आकार ग्रहण कर रही हो।

वर्तमान समय में पाण्डुलिपि का अर्थ हाथ की लिखी पुस्तक के उस रूप को दिया जाने लगा है जो प्रेस में मुद्रित होने के लिए देने की दृष्टि से अंतिम रूप से तैयार हो।[1]

पंडित उदय शंकर शास्त्री ने पाण्डुलिपि के सम्बन्ध में लिखा है कि - 'आजकल हस्तलिखित ग्रंथों को पाण्डुलिपि कहा जाने लगा है। किन्तु प्राचीनकाल में पाण्डुलिपि उस हस्तलेख को कहा जाता था जिसके प्रारूप (मसविदा) को पहले लकड़ी के पट्टे या जमीन पर पाण्डु या खड़िया से लिखा जाता था फिर उसे शुद्ध करके अन्यत्र उतार लिया जाता था और फिर उसे ही पक्का कर लिया जाता था।'[2]

पाण्डुलिपि के अंग्रेजी रूपान्तरण मैन्यूस्क्रिप्ट का क्षेत्र अंग्रेजी के विश्वकोषों में बहुत विशद् मिलता है। न्यू यूनिवर्सल एनसाइक्लोपीडिया (भाग 10) में बताया गया है कि मैन्यूस्क्रिप्ट लैटिन के (Manu+script) उत्पन्न है जिसका अर्थ है हाथ की लिखावट। विशद् अर्थ में ऐसा कोई भी लेख जो छपा हुआ नहीं है इसके अन्तर्गत आयेगा। संकुचित अर्थ में छपाई के पूर्व जो सामग्री पेपीरस पार्चमेन्ट या कागज पर लिखी जाती है वही मैन्यूस्क्रिप्ट कही गई।

एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना के अनुसार छापेखाने की छपाई आरम्भ होने के पूर्व का समस्त साहित्य मैन्यूस्क्रिप्ट के रूप में ही था।

"In Archaeology of a Manuscript is any early writing on stone, metal, wood, clay, linen bark and leaves of tree and prepared skins of animals, such as goats sheep and calves. '[3]

विद्वानों का मत है कि अब तक जो लिखित साक्ष्य मिले हैं उनके आधार पर यह माना जा सकता है कि पहले लेखन कार्य चित्रलिपि के माध्यम से शिलाओं पर हुआ, फिर मिट्टी की ईंटों पर और उसके बाद पेपीरस। पश्चिम में मोमपाटी के उपयोग के साक्ष्य मिलते हैं। पेपीरस की कुंडलियाँ या रोल्ज बहुत लम्बे होते थे, जब ये असुविधाजनक लगे तो इन्हें दुहरा-तिहरा कर पृष्ठों का रूप दिया गया। मोमपाटी के आवरण पटल इन पृष्ठों के रक्षक बन गए। बाद में लिप्यासन के लिए चर्म का प्रयोग किया जाने लगा। अब लकड़ी की पट्टियाँ इन पृष्ठों का आवरण बनीं। इन्हें कोडेक्स कहा जाता है। आधुनिक जिल्द ग्रंथों का पूर्वज कोडेक्स को माना जाता है।[4]

वस्तुतः पाण्डुलिपि एक सेतु या उपादान है जो काल की सीमाओं को लांघकर भी लेखक को पाठक से जोड़ती है। लेखक और पाठक में कालगत और देशगत अंतर है। यह अंतर ग्रंथ के द्वारा शून्य हो जाता है।

पाण्डुलिपि से सम्बन्धित विज्ञान को पाण्डुलिपि विज्ञान या पेलिओग्राफी कहते हैं। इस विज्ञान के दो ध्येय माने जाते हैं, एक तो पुरातन हस्तलेखों को पढ़ना और दूसरा इन हस्तलिपियों का काल व स्थान निर्धारण।[5]

"Palaeography, science of reading dating and analyzing

ancient writing on papyrus parchment, waxed, tablit, postherds wood or paper." [6]

अतः पाण्डुलिपि विज्ञान वह विज्ञान है जो अध्येता को पाण्डुलिपि को पाण्डुलिपि के रूप में समझने एवं तद्विषयक समस्याओं के वैज्ञानिक निराकरण में सहायक सिद्ध होता है। जनपद जालौन में सर्वेक्षण करने पर सनद, इक़रारनामा, स्तुतिग्रंथ, स्त्रोत, बहीखाता, चिकित्साग्रंथ, काव्यग्रंथ, राजीनामा, नामकरण, गृहप्रवेश आदि से सम्बन्धित अनेक पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुईं हैं। ये पाण्डुलिपियाँ संख्या में 222 हैं। इनमें कुछ सचित्र और चित्रणयुक्त, अलंकृत पाण्डुलिपियाँ भी प्राप्त हैं। इनका समय लगभग सोलहवीं सदी से 19वीं सदी का है।

पाण्डुलिपि इतिहास का वह माध्यम हैं जिनकी मदद से इतिहास पिछली घटनाओं का ब्यौरेवार विवरण सुरक्षित रखता है। शासकों और सामान्यजनों की विलुप्त पद मुद्राएं इन पत्र पाण्डुलिपियों में सुरक्षित हैं जो इतिहास की अमूल्य धरोहर हैं।

'पत्र पाण्डुलिपियों में उल्लेखित व्यक्त घटनाएं और तिथियाँ इतिहास का सत्यापन ही नहीं करतीं वरन् ऐतिहासिक विवरणों को नवीन सामग्री भी सौंपती हैं।' [7]

जनपद जालौन में उपलब्ध पाण्डुलिपियाँ लेन-देन, लोकजीवन और राजकाज से संबंधित हैं। इनका विभाजन क्रमशः व्यावसायिक पाण्डुलिपि, लोकजीवन से संबंधित पाण्डुलिपि, चिकित्सा संबंधी पाण्डुलिपि, साहित्यिक पाण्डुलिपि, प्रतिलिपि पाण्डुलिपि, पत्रात्मक पाण्डुलिपि, धार्मिक पाण्डुलिपि

और शासन संबंधी पाण्डुलिपि में विभाजित किया है। उपलब्ध पाण्डुलिपियों में संस्कृत, हिन्दी, बुन्देलखण्डी भाषाओं का प्रयोग मिलता है।

भारतीय हस्तलिखित ग्रंथों में लेखकों द्वारा कुछ नियत परम्पराओं का अनुपालन किया जाता है। यथा-

-मंगलप्रतीक या मंगलाचरण

-अलंकरण

-नमोकार

-आशीर्वचन, प्रशस्ति, पुष्पिका या उपसंहार।

पाण्डुलिपि में छूटे हुए अंशों की पूर्ति के लिए काकपद, हंसपग या मोरपग का प्रयोग किया जाता है। जनपद जालौन में उपलब्ध पाण्डुलिपियों में काकपद (> <) या स्वास्तिक (卐) के चिह्न प्राप्त होते हैं।

संकेताक्षरों का प्रयोग भी इन पाण्डुलिपियों में प्राप्त होता है, यथा - विक्रम संवत् को वि.स., श्लोक के लिए श्लो., द्वितीय के लिए द्वि., कृष्णपक्ष को कृ.प., शुक्ल पक्ष को शु.प. लिखा गया है।

जनपद से उपलब्ध पाण्डुलिपियों में नमोकार के रूप में विभिन्न देवताओं को नमस्कार किया गया है। इनमें गणेश, महावीर, त्रिकाल सुंदरी आदि हैं।

पाण्डुलिपियों के कुछ शत्रु भी होते हैं। इन शत्रुओं को स्पष्ट करते हुए पूर्णेन्दु बसु ने अपनी पुस्तक Archives and Records ; what are thay में लिखा है- They are generally speaking time, fire, water, light, heat, dust, humidity atmospheric gases fungi vermin, acts of god and lass but not least human being. [8]

हस्तलेखों के मानवीय शत्रुतापूर्ण कारनामे बताते हुए वे लिखते हैं-

1. हस्तलेखों का अनुचित उपयोग
2. ग्रंथलेखों के उपयोग में प्रमाद करते हैं
3. महत्व नहीं आँकते
4. साक्षी को नष्ट करने में जालसाजी का प्रयोग
5. लेखों - अभिलेखों में जालसाजी का प्रयोग।

लिप्यासन की दृष्टि से भी पाण्डुलिपियों के कई भेद होते हैं। दो मुख्य प्रकार होते हैं- एक कोमल दूसरा कठोर। कोमल लिप्यासन पर लिखा जाता है और कठोर लिप्यासन पर उत्कीर्ण किया जाता है।

लिप्यासन की दृष्टि से
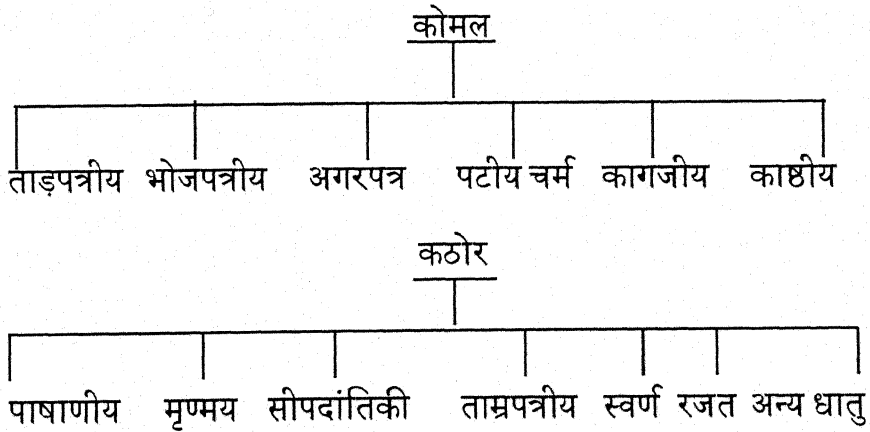
पाण्डुलिपि प्राप्त के सामान्यत: दो क्षेत्र हैं-

प्रथम : पुस्तकालय

द्वितीय : निजी।

पुस्तकालयों के तीन प्रकार मिलते हैं:-

1. धार्मिक

2. राजकीय

3. विद्यालयों के पुस्तकालय।[9]

जनपद जालौन के मुख्यालय उरई में दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय में सत्तर के दशक में प्राचार्य डॉ.वी.वी.लाल के समय एक प्रशंसनीय पहल करते हुए पाण्डुलिपि संग्रहालय स्थापित किया गया था। आजकल की डोनेशन प्रथा के स्थान पर उस समय प्रवेश की अनिवार्य शर्त पांच पाण्डुलिपियाँ जमा कराना था। पाण्डुलिपि जमा कराइये और प्रवेश पाइये।

इस तरह लगभग दस वर्ष तक पाण्डुलिपियों का संग्रह किया गया किन्तु वर्तमान व्यवस्थापकों के कारण उसे वह सम्मान और आदर प्राप्त नहीं हुआ जिसकी आवश्यकता पाण्डुलिपि संग्रहालय को होती है। मेरे पिता डॉ. रामस्वरूपजी को उस पाण्डुलिपि संग्रहालय का प्रभारी बनाया गया था उन्होंने बताया कि इन पाण्डुलिपियों में आयुर्वेद, साहित्य, ज्योतिष, इतिहास, धर्म, दर्शन, कला, लोकसाहित्य एवं पशु विज्ञान से संबंधित 2735 प्रतियाँ विद्यमान थीं।

निजी संस्थान के उदाहरणस्वरूप काली कवि शोध संस्थान में महाकवि कालीदत्त नागर की हनुमत पताका, गंगा गुण मंजरी एवं छवि रत्नम् की पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हुई हैं। ये रीतिकालीन ग्रंथ हैं , ये पाण्डुलिपियाँ अब प्रकाशित भी हो चुकी हैं। वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित पुस्तक रूपों का आधुनिक संस्करण भी इस संस्थान में उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त ऋतु राजीव (आंशिक प्रकाशित), रसिक विनोद, कवि कल्पद्रुम, जुगल सहस्त्रनाम, स्फुट

दोहावली तथा गणपति रहस्य की पाण्डुलिपियाँ अप्रकाशित हैं।[10]

बुन्देलखण्ड संग्रहालय में लगभग तीन हजार पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। कृष्णकुमार गहोई के निजी संग्रहालय में भी पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हैं। उनके पास आयुर्वेद से संबंधित अनेक ग्रंथ उपलब्ध हैं। अयोध्या प्रसाद कुमुद के निजी संग्रहालय में भी चित्रित और सामान्य पाण्डुलिपियाँ बहुत मात्रा में उपलब्ध हैं। इस संग्रह से आचार्य श्रीपति कृत कवित्त की पाण्डुलिपि का उपयोग कर डॉ. लक्ष्मी नारायण मालवीय ने श्रीपति ग्रंथावली संपादित की। रागमाला तथा बारहमासा के चित्रमाला के शैली के चित्रों के साथ लेख भी उपलब्ध हैं। यहाँ ढाई हजार से अधिक प्रकाशित ग्रंथ भी उपलब्ध हैं।

वर्तमान में बुन्देलखण्ड का सबसे बड़ा पुस्तकालय हिन्दी भवन कालपी का संग्रहालय है। यहाँ हजारों की संख्या में पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। स्व. परिपूर्णानन्द वर्मा जी के निर्देशन में निम्नलिखित उपयोगी ग्रंथों का प्रकाशन हुआ है :-

1. श्री सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रंथ
2. सन् 57 की क्रांति
3. छह सप्ताह की बात
4. गणेश शंकर विद्यार्थी स्मृति ग्रंथ
5. नियोजन का इतिहास भाग 1 व 2
6. कालपी महात्म्य
7. गीता माता की गोद में

इस संग्रहालय का नाम महात्मा गांधी हिन्दी संग्रहालय कालपी है। यह

निजी क्षेत्र का संग्रहालय है।[11]

रामलला मंदिर कोंच पाण्डुलिपियों का अद्‌भुत संग्रहालय है। यहाँ आज से तीन सौ वर्ष पूर्व तक अनेक साहित्यिक संस्कृत ग्रंथ उपलब्ध हैं। वर्तमान समय में भी सैंकड़ों पाण्डुलिपियाँ यहाँ उपलब्ध हैं। ये संगीत, आयुर्वेद, धर्म, दर्शन, लौकिक साहित्य और तंत्र-मंत्र से सम्बन्धित हैं।

जैन मंदिर रूराजती एवं इसके गिरि परिवार में प्राचीन पाण्डुलिपियों का अच्छा संग्रह उपलब्ध है।

श्री राम-जानकी मंदिर सिमरिया में भी प्राचीन पाण्डुलिपियों और प्रकाशित प्राचीन पुस्तकों का विषद संग्रह उपलब्ध है। श्री रामकृष्ण निरंजन जो वर्तमान समय में इस संग्रहालय की देखभाल कर रहे हैं ने बताया कि- 'पिताश्री के सहज शौक ने इस अद्‌भुत राशि को एकत्र कर दिया था। इस संग्रहालय में मुख्य रूप से धर्म, आयुर्वेद, आध्यात्म और साहित्य से सम्बन्धित ग्रंथ हैं। वेद, पुराण, उपनिषदों के छपे संस्करण भी शामिल हैं।'[12]

जनपद जालौन में प्राप्त पाण्डुलिपियों का अद्‌भुत संग्रहालय है कोंच का रामलला मंदिर। श्री रामलला के देवालय में अत्यन्त महत्वपूर्ण और दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। प्रकाशित और अप्रकाशित कुछ पाण्डुलिपियों की सूची इस प्रकार है-[13]

अवन्ती खण्ड (स्कन्ध पुराण), अनन्य चिन्तामणि, आध्यात्म रामायण, आर्ष रामायण, अद्वैत विवेक, अद्वैतानन्द प्रकरण, आत्मानन्द प्रकरण, आत्म ज्ञानोपदेश, इन्द्रजाल, ऋतु संहार, एकाक्षरी कोष, काशी रहस्य, केशवीथिका, जातक पद्धति द्वारा केशव, केदारखण्ड, गरुड़ पुराण(उत्तरखंड

एवं पूर्वार्द्ध), गीता टीका, जातक कल्पतरु, जातकालंकार द्वारा गणेश दैवज्ञ, ज्योतिष सार्वभौम, ज्योतिर्विदाभरण, ज्योतिर्निबन्ध, तत्व विवेक, तत्वसार प्रकाशिनी, तुलादानम्, तुरंग चिकित्सा शास्त्र, दुर्गा सप्तशती, नरसिंह रामायण, नवनीति जातक ज्योतिषी, नीतिशतकम्, नैषध चरितम्, नैषधीय चरितम्, नैषधीय प्रकाश, पद्म पुराण, प्रदनतंत्रम, पंचभूत विवेक, पंचदशी नाटकदीप, पंचदशी विद्यानन्द प्रकरण, पंचदशी ब्रह्मानन्द प्रकरण, पंचदशी तृप्ति दीपकरणम्, पाशक केवली, पातंजलि सूत्र वृत्ति, प्राकृत चन्द्रिका, ब्राह्मण पुराण, व्रतार्क तुलसी विवाह, भगवत् भक्ति विलास, भगवत् गीता टीका, भगवत्राधना, भविष्योत्तर पुराण, भार्गव पुराण, भागवत् महात्म्य, भास्कर शांतिमयूष, महारामायण, महाभारतः (प्रकाशित बम्बई 1979)।

विशुद्ध इति के ग्रंथ जिनमें तत्कालीन संस्कृति का स्पष्ट उल्लेख हो बहुत थोड़ी संख्या में मिलते हैं।

अन्नप्राशन पद्धति, मनुस्मृति, मुहूर्त मार्तण्डः, मुहूर्त चूड़ामणि, मुहूर्त गणपति, रघुवंशम् महाकाव्य, रामगीता, रामार्चन पद्धति, राम मंत्रार्थ, रामकृष्ण काव्यं, रामतापनीयोपनिषद भाष्यम्, रामनन्दीप वैष्णवमताब्ज भास्कर, लवण विलास, लिंगः पुराण, वामन पुराण, वाराह पुराण, बाल्मीकि रामायण, विद्यारण्य, विवेका चूड़ामणि, विवाह वृन्दावन, वेदान्तसार, वैष्णव परमहंस, शरणागति मंत्रसार, शिवसंहिता, शिवतांडव, शिवेश्वरोदय, संस्कार कौस्तुभ, साकल्य संहिता, सिद्धान्त सार्वभौमम्, सिद्धान्त शिरोमणि, वासनाभाष्यम् द्वारा भाष्यकर, सूक्ति मुक्तावली, हरिवंश, हरिविलास, हठ रत्नावली, हस्त संजीवनी, होरा मकरंदम् आदि अनेक पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध

हैं। इनमें से कई तो समुचित संरक्षण के अभाव में नष्टप्राय: होती जा रहीं हैं।

रामपुरा रियासत के वर्तमान राजा समरसिंह के पास उपलब्ध लगभग 150 वर्ष पुरानी पाण्डुलिपि में रामपुरा के राजपरिवार के आसपास के सम्बन्धों का विवरण मिलता है। रामपुरा के किले का निर्माण कब और किसने किया यह भी उपलब्ध होता है।[14]

गोपालपुरा रियासत में उपलब्ध पाण्डुलिपि में गोपालपुरा राजवंश के अतिरिक्त विभिन्न ग्रामों से उसका सम्बन्ध स्पष्ट किया गया है। पाण्डुलिपि काव्यात्मक भाषा में लिखित है। समस्त वर्णन दोहों और चौपाइयों के माध्यम से किया गया है।

ग्राम इटौरा में स्थित रोपण गुरु के मंदिर के विषय में , रोपण गुरु और उनकी गद्दी के उत्तराधिकारियों की परम्परा का वर्णन प्रणामी ग्रंथ पाण्डुलिपि में उपलब्ध है।

राजाओं से सम्बन्धित विभिन्न क्रियाकलापों का वर्णन भी पाण्डुलिपियों में उपलब्ध है। वैशाख वदी 11 संवत् 1781 को कालपी राजघाट पर जमुना स्नान के अवसर पर सोमवती अमावस्या के उपलक्ष्य में महाराजाधिराज सिनत सिंह जू ने जो सनद प्रदान की थी उसमें सत्ता परिवर्तन के प्रति पूर्ण आशंका सम्मिलित है। इसी सनद में उन्होंने अंकित कराया है ' जो कोऊ इन्हें सतावै ताकौ गंगा हराम' इस सनद में राजा सिनेत सिंह ने लिखवाया-

'हिन्दु सिपति जो गाई की , तुरक सुअर की आन
उथपै पादारुक नहीं , यही वचन परवान।'[15]

पाण्डुलिपियों के अध्ययन के समय मुख्य बात है पुस्तक के आकार प्रकार

की जानकारी, पाण्डुलिपियाँ आकार प्रकार की दृष्टि से कई प्रकार की हो सकती हैं-

पोथी : प्राय: बीच से सिली हुई

गुटका : पोथी की भाँति पर छोटा, लगभग 6 x4.5 इंच

बहीनुमा : 21 x 4.5 इंच या इससे लम्बी

पुस्तिकाकार : 7.5 x 5.5 इंच के लगभग

पत्रिका एवं पानावली प्रकार।

इसके बाद लिप्यासन के प्रकार - यदि उपलब्धता कागज पर है तो कागज के सम्बन्ध में विवरण, रंग,पाण्डुलिपि में एक ही प्रकार का कागज प्रयुक्त हुआ है या अलग-अलग,पाण्डुलिपि में कितने पृष्ठ हैं, पृष्ठ में कितनी पँक्तियाँ हैं तथा यह बताना भी आवश्यक है कि लेख सुपाठ्य है या कुपाठ्य । पाण्डुलिपि सचित्र है अथवा नहीं, हाशिये अलंकृत हैं या नहीं, पशु-पक्षियों, फूल-पत्तियों आदि का अलंकरण है अथवा नहीं। किन रंगों की स्याही का प्रयोग है, हरताल प्रयोग किया गया है अथवा नहीं। लेखक से सम्बन्धित विवरण यदि दिया हो तो अवश्य देना चाहिये । रचनाकाल का विवरण (यदि दिया हो तो बहुत अच्छा अन्यथा अनुमानत:)। ग्रंथ रचना का स्थान, लिपि का प्रकार, लिपिकार से संबंधित अन्य विवरण। इसके अतिरिक्त पाण्डुलिपि में प्रतिपाद्य विषय का विवरण, आरम्भ का अंश, पुष्पिका या कोलोफोन यदि हो तो अवश्य उद्धृत करना चाहिये । इसके अतिरिक्त प्राप्ति स्थान एवं उस व्यक्ति का नाम एवं परिचय जहाँ से पाण्डुलिपि उपलब्ध हुई है। अक्षरों को स्पष्ट करते हुए लिखना चाहिये कि सूक्ष्माक्षरी है अथवा स्थूलाक्षरी। कई बार अक्षरों का आकार इतना छोटा भी हो सकता है कि

उसे देखने के लिए आतिशी शीशे का प्रयोग करना पड़े।[16]

- सहज पाण्डुलिपियों के अतिरिक्त चिट्ठी-पत्री, मिट्टी, चीनी मिट्टी या धातु के पत्रों पर अंकित लेख जो छोटा और दो-चार अक्षरों का ही क्यों न हो पाण्डुलिपि माना जायेगा। विभिन्न सिक्कों को भी जिन पर कोई अभिप्राय, लेख या वृत्त अंकित है पाण्डुलिपि माना जायेगा।

- मिट्टी के खिलोने या साँचे जिन पर कोई वृत्त अंकित हो पाण्डुलिपि हैं।

- पत्थर,धातु या अन्य प्रकार की मूर्तियाँ जिन पर लेख अंकित हैं, पाण्डुलिपि माने जायेंगे।

- ऐसे ही वस्त्राभूषण, अंगूठियाँ, पर्दे, टाट, पटकथा के पट जिन पर लिपि हो पाण्डुलिपि हैं।

- किसी भी प्रकार के लिप्यासन पर की गई लिपि रचना पाण्डुलिपि की कोटि में आयेगी।

- लिप्यासन के आधार पर शिलालेख या अभिलेख कठोर लिप्यासन पर उकेरे गए हैं।

वर्णित विषय के आधार पर इनके निम्न भेद किये जा सकते हैं-

1. राजकीय आदेश विषयक
2. दान विषयक
3. किसी स्थान के निर्माण से सम्बन्धित
4. किसी विशेष घटना के स्मरणार्थ
5. प्रशस्ति लेख। [17]

ये अभिलेख इतिहास की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं। चूँकि शिलालेख

अचल होते हैं अतः इनके लेखों की छापों को पुस्तकालयों में रखा जाता है।

राजकीय आदेश : राजकीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लिखे जाते हैं, इनमें ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख किया जाता है।

दान विषयक : इन शिलालेखों या ताम्र अभिलेखों में दान से सम्बन्धित घोषणा होती है, जो धार्मिक या सामाजिक दृष्टिकोण से किये जाते थे। अधिकांश मंदिरों में भूदान अथवा मूर्तिदान के सम्बन्ध में इनका विवरण मिलता है। मंदिर, मस्जिद, कुएं, बारादरी, प्याऊ, सभागार आदि के निर्माण से सम्बन्धित अभिलेखों को इस श्रेणी में रखा जाता है।

शिलालेख :- किसी विशेष घटना से सम्बन्धित अभिलेखों में किसी प्रायश्चित, किसी विशेष अनुष्ठान आदि का विवरण मिलता है। कोंच से पश्चिम दिशा में जाने पर नगर सीमा में ही झलापाठा बाग है। यद्यपि यह बाग अपना वैभव खो चुका है। इस बाग के कुएं पर प्राप्त बीजक लिखा पाया गया था-

'झलापाठा के बाग में मुहरें असी हजार,
छोट बड़े को मार दे ओ मोहरें लेय उखार।'[18]

लोगों को यह अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ और मोहरों के लोभ में कईयों ने बड़े भाई को मार दिया। जबकि बंजारों के लिखे इस बीजक का अर्थ यह था कि मंदिर में बने छोटे नंदी से बड़े नंदी पर प्रहार किया जाये और बड़े नन्दी के पेट से अस्सी हजार मुद्राएं प्राप्त की जाएं। यह बीजक बंजारों ने अपने गुप्त धन की जानकारी के लिए लगाया था।

प्रशस्ति के लिए अथवा किसी की प्रशंसा में लिखी गई पँक्तियाँ प्रशस्ति कहलाती हैं। रामपुरा गढ़ी में स्थापित मंदिर के द्वार पर एक शिलालेख अंकित है जिसमें इस

गढ़ी के निर्माण की तिथि, निर्माणकर्ता का नाम आदि अंकित हैं । शिलालेख देवनागरी लिपि में ही है ।

पाहुलाल मंदिर कालपी का शिलालेख भी देवनागरी लिपि में अंकित है । यह इस प्रकार है-'श्री गणेशाय नमः श्री गोपालजी का मंदिर बनवाया लाला पाहूलाल, हीरालाल, ठाकुरदास, गौरीशंकर खत्री मेंहरे निवासी कालपी के घुरा अदल सराय । गुरु नित्यानन्दजी । कारीगर गयाप्रसाद मिती कुआँर सुदी 11 राना सम्वत् 1802 ।'[20]

रोपण गुरु मंदिर के अन्दर दक्षिणी द्वार के ऊपर अंकित शिलालेख संस्कृत भाषा में लिखित है ।

पाण्डुलिपियों का रखरखाव भी अपनेआप में एक जटिल समस्या है । इसी कारण से पाण्डुलिपियाँ सहज उपलब्ध नहीं होती हैं । डॉ. गौरीशंकर ओझा के अनुसार - ' भारतवर्ष के जलवायु में कागज बहुत अधिक काल तक नहीं रख सकता ।' [21]

भारतीय जैन श्रमण संस्कृति लेखनकला के लेखक मुनिश्री पुण्यविजय जी ने 'पुस्तकु अने ज्ञान भण्डारेनु रक्षण' शीर्षक में बताया है कि पुस्तकों और ज्ञान भण्डारों के रक्षण की आवश्यकता चार कारणों से होती है-

1. राजकीय उथल-पुथल
2. वाचक की लापरवाही
3. चूहे आदि जीव-जन्तुओं के आक्रमण तथा
4. बाहर का प्राकृतिक वातावरण ।[22]

फंफूद और मोल्ड से बचाने के लिए भंडारण भवन का तापमान 22-24^0 से (72-75^0 फा.) तक रखा जाना चाहिये । यदि भंडारण कक्ष को उक्त मात्रा में तापमान और नमी का अनुकूलन संभव न हो तो एक दूसरा उपाय थाईमल रसायन की वाष्प

चिकित्सा है। इसके अतिरिक्त सिल्वर फिश और कांक्रोच से बचाव के लिए नेफ्थलीन, कपूर, डी.डी.टी., पाट्रोव्म, सोडियम फ्लोराइड का छिड़काव कर देना चाहिये। ये छिड़काव पुस्तकों/पाण्डुलिपियों के रखे जाने के स्थान पर होना चाहिये न कि पुस्तकों पर।

दीमक वाली अलमारियों में पाण्डुलिपियाँ बिलकुल नहीं रखा जाना चाहिये। ऐसी जगहों को जिंक क्लोराइड के बीस प्रतिशत पानी के घोल से पोत दें। लकड़ियों की जगह धातु की अलमारी का प्रयोग करना चाहिये। भंडारण के स्थान को धूल-मिट्टी, मकड़ी के जालों से बचा कर रखना चाहिये। भंडारण के स्थान पर खाने-पीने का सामान प्रयुक्त नहीं करना चाहिये। पूरा पृष्ठ वर्णन, टिश्यू चिकित्सा तथा परतोपचार का प्रयोग किया जा सकता है।

डॉ. गौरीशंकर ओझा के शब्दों में कहा जा सकता है कि - 'नहीं कहा जा सकता कि कितने ऐसे ग्रंथ लिखे गए हों और वे कालप्रवाह के चक्र में पड़ कर नष्ट कर दिये गए हों। फिर भी हमें इस समय पर विचार करने के लिए भिन्न-भिन्न ग्रंथों से पर्याप्त सहायता मिल सकती है। उपर्युक्त ग्रंथ संरक्षण और उपयोगिता के अभाव में समाप्त होते जा रहे हैं। सच तो ये है कि ये अध्येताओं के लिए भी सुलभ नहीं हैं।'[223]

जनपद जालौन में उपलब्ध पांडुलिपियाँ

1. वाराहितंत्र हरगोरी संवाद

लेखक : जयदेव

पृष्ठ : 6

विषय : ज्योतिष

मसि रंग : गेरू सी, काली स्याही

प्राप्ति : बुन्देलखण्ड संग्रहालय

समय : सन् 1812

2. द्वारपूजन विधि

विषय : पूजाविधि

मसिरंग : काली स्याही, हाशिये का प्रयोग

पृष्ठ : 42

विशेष : मनोविंद तीर्थ भगवसू ज्यापद शिष्य श्री भद्रधथानाथतीर्थ विरवितायां त्रिपुरार्च पदुतो दिन पंचमांश बिचो मंत्र न्यास पूर्वकांत यगिविधिगम कोदशमोल्लास । ई.पु. 3240 ।।24।। पु. 1226 । अंकतालिका या किसी यंत्र से अंत विशेष्य की सूचना देने के लिए गैरिक रंग काले हड़ताल का प्रयोग । पृष्ठ संख्या डाली गई है । तिथि, वार , लग्न दानों तरफ लिखा है । पीला रंग विशेष्य रूप में प्रयुक्त ।

3. देहस्वरोदयं

पृष्ठ संख्या : 28

श्लोक : 74

मसि रंग : काली स्याही , हरताल रूप में गेरू

विषय : लौकिक

विशेष : पृष्ठ संख्या का अंकन

4. कुलानंद संहितायां षोन्सी कवचं

विषय : शासनादेश

समय : संवत् 1710 ज्येष्ठ सुदी ।। जालौन

मसि रंग : काली स्याही, हाशिया - लाल

पृष्ठ संख्या : 3

विशेष : महाराज कुँवर श्री अनिरुद्ध जी के पढ़ने के लिए/ नमोकार गणेश/ श्री देव्युवाच / भोरपद का प्रयोग

5. सुजस्य सहस्त्र

समय : सन् 1860

मसि रंग : काली स्याही

पृष्ठ संख्या : 4

लेखक : गोप्पगुप्त

6. गौरीसारतंत्र

विषय : तंत्र

समय : सन् 1800

मसि रंग : काली और लाल स्याही

7. पद्धति प्रदीप टिप्पणी

विषय : व्याकरण

समय : 1701 आषाढ़ द्वादशी तिथि

मसि रंग : काली स्याही

पृष्ठ संख्या : 45

8. ललित पद सुरम्पा शास्त्र

विषय : छन्द शास्त्र

लेखक : नारायण दास

समय : 1742 में कार्तिक माह कृष्ण पक्ष रविवासरे

मसि रंग : काली स्याही, लाल रंग के हाशिये

पृष्ठ संख्या : 17

विशेष : मुल्तान में ऐसी पुस्तक देखी उसके आधार पर विद्यार्थियों के पढ़ने के लिए लिखी गई। इंद्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा आदि छंदों का वर्णन।

9. विश्वनाथ दैवज्ञस्य

लेखक : विश्वनाथ (क्रियते विश्वनाथेन मंदबोधाय संप्रति)

विषय : भूमि क्रय

मसि रंग : काली स्याही

पृष्ठ संख्या : 10

विशेष : घटिका शब्द का प्रयोग

10. पोथी चक्राख्यं - 2

विषय : ज्योतिष (चन्द्रस्य फलम्, शनिमन्द फलानि)

समय : 1741

मसि रंग : काली एवं लाल

पृष्ठ संख्या : 5

विशेष : सिंहासनासीन होने का वर्णन / श्री रामसहाय सत्यम् जयति / सिंहासन सभासीनं स्वर्णकुंडल मंडिता / अधिक शराब पीने से राजा की मृत्यु हुई।

सारणीबद्ध पांडुलिपि

11. रामबाजपी ग्रंथ

लेखक : रामचन्द्र प्रसून

विषय : ऋतु वर्णन

समय : संवत् 1873 संशोधित व संपादित शके 1738
शिशिर ऋतु माघ मास

मसि रंग : काली स्याही, लाल हाशिये / हरताल पीली

पृष्ठ संख्या : 47

विशेष : बतीसाक्षरी श्लोक / संदर्भ का प्रयोग /
हर्शे इल्फप- गोपाल ने लिखी

12. रामरक्षा स्त्रोत

लेखक : विश्वामित्र

विषय : पूजा

समय : सम्वत् 1823

मसि रंग : लाल एवं काली

पृष्ठ संख्या : 7

13. महातंत्रे त्रिपुरा क्रम पद्धति

लेखक : हेमप्रभ

विषय : पूजा

समय : सम्वत् 1744 चैत्र वासरे

मसि रंग : काला / लाल

पृष्ठ संख्या : 23

14. गीत गोविन्द

लेखक : भैरव

विषय : रीतिकाल

समय : सम्वत् 1643 श्रावण मास

मसि रंग : अतिजीर्ण एवं भूरे पत्र पर काली स्याही

पृष्ठ संख्या : 48 (द्वादश सर्ग)

15. तारा रहस्य

लेखक : शंकर

विषय : तन्त्र वज्रयान

समय : सम्वत् 1800

मसि रंग : काली स्याही

पृष्ठ संख्या : 36

स्थान : जालौन

16. संमाजीत थेवैद्यसंग्नहसं

लेखक : रामदया

विषय : चिकित्सा

मसि रंग : भूरे रंग से चित्र अलंकरण

पृष्ठ संख्या : 32

विशेष : चिकित्सा से सम्बन्धित पीले पत्र भी

17. होमाभिषेक विधि व्याख्या

विषय : पूजाविधि

समय : लगभग 1890

मसि रंग : लाल/काली

पृष्ठ संख्या : 29

18. योग शतकामिनी

विषय : चिकित्सा

समय : अज्ञात

मसि रंग : काली स्याही

पृष्ठ संख्या : 5

विशेष : व्यभिचार, कफ, ज्वर आदि का प्रतिपाद्य और प्रतिवाद दोनों।

19. सूर्य सिद्धांत मितांक करण

विषय : ज्योतिष

समय : 1740

मसि रंग : काली/नीली(लाल रंग के सफे)

पृष्ठ संख्या : 23

20. गणेश नमोकार गीत गोविन्द

लेखक : भवानीश

विषय : शृंगार

समय : लगभग 1760

मसि रंग : काली/लाल

पृष्ठ संख्या : 30

21. दुर्गा महात्म्य प्रशस्तिका

विषय : पूजा

समय : लगभग 1750

पृष्ठ संख्या : 7

विशेष : दुर्गा पूजार्थ स्थापना के लिए मंत्र / सचित्र पांडुलिपि / यन्त्र चित्र

22. ब्रह्माण्ड पुराण

विषय : पूजा

समय : लगभग 1720

मसि रंग : काला

पृष्ठ संख्या : 94

विशेष : श्राद्धविधि का वर्णन

23. शृंगार वर्णन

विषय : देवी के शृंगार का वर्णन नख से शिख की ओर

समय : सम्वत् 1750 मार्गशीर्ष अमावस्या

मसि रंग : काला

पृष्ठ संख्या : 10

विशेष : शृंगार वर्णन शास्त्र संगत नहीं।

24. अंतर्वध मन्त्र गह्वरनामा स्त्रोत

विषय : भूतविद्या

मसि रंग : काली स्याही/लाल हाशिया

पृष्ठ संख्या : 11

विशेष : जगती छन्द/ भूत-प्रेत, ब्रह्मराक्षस आदि से बचाव की विधि का वर्णन

25. कालिका मंत्रेणमंत्री

लेखक : वसुगोपाल

विषय : पूजा

समय : लगभग 1750

मसि रंग : काला

पृष्ठ संख्या : 7

26. दक्षिणा मूर्ति संहिता

लेखक : श्री रोदम:

विषय : पूजा

समय : सम्वत् 1813 वैशाख दिवस 4 गुरुवासरे

मसि रंग : काला

पृष्ठ संख्या : 23

27. वाराहपुराण का भगवत्स्त्रोत गीता महात्म्य

लेखक : गंगाधर

विषय : पूजा

समय : सम्वत् फाल्गुन शुक्ल 1878 शके 1764

मसि रंग : श्याम

पृष्ठ संख्या : 6

28. सौन्दर्य लहरी स्त्रोत

लेखक : प्रधान गाजी साहिर मेरीवार श्रीवास्तव

विषय : शृंगार

समय : सम्वत् 1806 आश्वने मासे कृष्ण पक्ष सोमवार

मसि रंग : काला

पृष्ठ संख्या : 22

विशेष : नमोकार- महागणाधिपतये नमः,

इति- शंकराचार्ये नमः

29. मात्रिक छन्द और रागों को स्पष्ट करती पांडुलिपि

लेखक : शिवलाल

विषय : रीति

समय : लगभग 1800

पृष्ठ संख्या : 30

30. हलषष्टी

लेखक : विष्णुभट्ट

विषय : त्यौहार

समय : लगभग 1880

पृष्ठ संख्या : 2

31. सुन्दर शृंगार

लेखक : सुन्दर

विषय : शृंगार

समय : 1630 कार्तिक सुदी षष्टी

मसि रंग : काला लेख पीली हरताल

विशेष : नायिका भेद आदि का वर्णन / बोली - बुन्देली

32. सिद्ध देव प्रतिष्ठा योग

लेखक : आचार्य मुकदेव

विषय : पूजा

समय : 1850

मसि रंग : लाल, काले और नारंगी रंग का प्रयोग

पृष्ठ संख्या : 13

33. वेदांग शिक्षा व्याख्या

लेखक : विश्वप्रकाश

विषय : शिक्षा

समय : सम्वत् 1929 कार्तिक सुदी 7

मसि रंग : लाल/काला

पृष्ठ संख्या : 8

स्थान : कोंच

34.परम लघु मजूषा (मंजूसा)

लेखक : श्री शिवभट्टसुत्त सती देवी गर्भ श्री नागोजी भट्ट कृत

विषय : व्याकरण

समय : सम्वत् 1929 कार्तिक कृष्ण 11

मसि रंग : काला

पृष्ठ संख्या : 11

स्थान : कोंच

35. भुजंग सुन्दर स्त्रोत

लेखक : मछिन्द नाथ

विषय : पूजा

समय : लगभग 1700

पृष्ठ संख्या : 65

स्थान : कोंच

36. पीयूष लहरी स्त्रोत

लेखक : जगन्नाथ

विषय : व्याकरण

समय : सम्वत् 1800 अषाढ़ बदी 1 बुध

पृष्ठ संख्या : 15

37. दक्षिणामूर्ति स्तवः

लेखक : परिवाजकाचार्य श्री मछंकराचार्य

विषय : वज्रयानतंत्र

समय : सम्वत् 1744

पृष्ठ संख्या : 4

38. कौलादर्श

लेखक : विश्वा

विषय : कौल सम्प्रदाय

समय : सम्वत् 1813 ज्येष्ठ बदी 11

पृष्ठ संख्या : 10

39. पुनः प्रतिष्ठा विधि

लेखक : देवभट्टक

विषय : पूजा

समय : सम्वत् 1873 शक 1738

पृष्ठ संख्या : 4

40. मयूर चित्रक (वाराहमिहिराचार्य विरचित)

लेखक : नारायण सिंह

समय : सम्वत् 1826

पृष्ठ संख्या : 97

विशेष : आवरण पृष्ठ पर चित्ताकर्षक लाइन डायग्राम

41. अहोक्य संहिता दिव्य साम्राज्य

विषय : हिन्दू धर्म

समय : 1644 शक सम्वत् श्रावण की अष्टमी

मसि रंग : किनारा पाण्डु , हाशिया लाल और काले रंग

पृष्ठ संख्या : 22

विशेष : महादेवी और शिव के संवाद

42. करुणारत्ने सूर्यग्रहणाधिकार

लेखक : श्यामराय हरि प्रमोद

विषय : सूर्यग्रहण

समय : सम्वत् 1788

मसि रंग : गेरु रंग एवे काले का किनारा

पृष्ठ संख्या : 39

विशेष : नृपामात्य के कथन पर लिखित

43. शीघ्रबोध:

लेखक : काशीनाथ भट्टाचार्य

विषय : ज्योतिष

समय : लगभग 1740

पृष्ठ संख्या : 59

विशेष : नक्षत्रों,दिन, महीनों और मौसम का ज्ञान/
प्रथम पृष्ठ पर सुंदर चित्र

44. श्री भगवद्भक्ति तरंगिणी

लेखक : प्रेमनिधि

विषय : भजन

समय : सम्वत् 1878 शके 1743

मसि रंग : लाल/काला

पृष्ठ संख्या : 387

45. चंद्रिकास टीका

विषय : साहित्य

समय : लगभग 1780

पृष्ठ संख्या : 75

विशेष : प्रथम पृष्ठ पर रेखांकन

46. तन्त्र राज

लेखक : मदन गोपाल मिश्र

विषय : तन्त्र

समय : सम्वत् 1727 अश्विन एकादशी

मसि रंग : पीला हड़ताल

पृष्ठ संख्या : 150

विशेष : 34 पटल / 56 श्लोक

47. श्री घट्टगोपुर मठ धर्मशालासत्का उद्यापन प्रयोगः

लेखक : विष्णु भट्ट

विषय : दान-दक्षिणा

समय : सम्वत् 1873 ज्येष्ठ मास तिथि 3 वासर भौम

पृष्ठ संख्या : 3

विशेष : आचार्य को दी गई दान-दक्षिणा का वर्णन

48. हिसाबन की दोहा पुस्तक

लेखिका : लीलावती

विषय : साहूकार का हिसाब-किताब

समय : सम्वत् 1919 कृष्ण पक्षे 30

विशेष : दोहा-चौपाइयों में हिसाब,
ज्यामितीय आकृतियों का अंकन

49. पद्म पुराण हिर-गौरी संवाद

विषय : पूजा

समय : लगभग 1800

मसि रंग : पाण्डुरंग की किनारी वाले पृष्ठ/
कुछ पूरे पाण्डु पृष्ठ

पृष्ठ संख्या : 16

स्थान : जालौन

50. भुवनेश्वरी सहस्त्रनाम स्त्रोत

लेखक : तोशिकहदास

विषय : धर्म

समय : सम्वत् 1879

मसि रंग : पीला हरताल

पृष्ठ संख्या : 15

51. रामचरित मानस किष्किंधाकाण्ड

लेखक : हनुमान प्रसाद

विषय : धर्म

समय : सम्वत् 1891

द्वारा : लक्ष्मण गोपाल हर्षे जालौन

52. आदित्य हृदय (बाल्मीकि रामायण, युद्धकांड)

लेखक : रामचन्द्र निगुड़कर

विषय : धर्म

पृष्ठ संख्या : 2

53. रघुवंशम् (कालिदास कृत)

लेखक : लिपिबद्ध करने वाले का नाम नहीं

विषय : साहित्य

समय : लगभग 1830

मसि रंग : काली/लाल/पीले बॉर्डर में पृष्ठों पर अंकन

पृष्ठ संख्या : 59

54. कुशप्रकाश तन्त्र

समय : लगभग 1820

मसि रंग : अण्डरलाइनिंग एवं विशेष्य के लिए गेरू रंग का प्रयोग

पृष्ठ संख्या : 10

55. श्री रुद्र यामले बहु रूपाष्टक प्रसारे पंचमी स्तवराज स्त्रोत

विषय : धर्म

समय : लगभग सम्वत् 1920

पृष्ठ संख्या : 14

आकार : 5.5 x 4 इंच

56.बाला तैलोक्य विजय कवच

लेखक : नारायण

विषय : पूजा

समय : लगभग 1800

पृष्ठ संख्या : 4

57. स्वरोदय टीका मंत्राण

लेखक : नर मिश्र

विषय : लौकिक शृंगार

पृष्ठ संख्या : 130

58. सूर्याहणो द्वादश भाव विचार

विषय : ज्योतिष

समय : सम्वत् लगभग 1850

पृष्ठ संख्या : 8

59. रक्ष सालुव मन्त्र

लेखक : ऋषि वामदेव

विषय : पूजोपचार

समय : सम्वत् 1780

पृष्ठ संख्या : 8

विशेष : मोर पदाकृति का अंकन

60. सौभाग्यकाण्डे कालिकापनिषद

लेखक : नाथोगुरु

विषय : पूजा

समय : सम्वत् 1754 चैत्र शुक्ल प्रतिपदा

पृष्ठ संख्या : 2

61. श्री हंसयामले वाला सहस्त्रनामस्त्रोत

लेखक : अनाम

विषय : धर्म

समय : लगभग 1800

पृष्ठ संख्या : 9

62. चंद्रिकायां कुंड मंडप विधानं

लेखक : परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री विबुधेन्द्राश्रम पूज्यपाद शिष्य देवेन्द्राश्रम

विषय : धर्म

63. योगिनी शाक्तफलम्

लेखक : हरिशंकर

विषय : तन्त्र

समय : सम्वत् 1850

पृष्ठ संख्या : 4

64. सहस्त्रभलवपरां

विषय : पूजा

समय : संभवत: 1790

पृष्ठ संख्या : 23

65. गुरु मंडल विद्यागौदपाद का भाष्यकोश

विषय : व्याकरण

समय : लगभग 1789

पृष्ठ संख्या : 14

66. बालाह्दय

लेखक : शंकर

विषय : साहित्य

समय : सम्वत् 1912

पृष्ठ संख्या : 4

67. काली तन्त्र का परम रहस्य कालिका पटल

विषय : तन्त्र

समय : सम्वत् लगभग 1900

पृष्ठ संख्या : 11

68. महाकाल संहिता

विषय : तन्त्र

समय : सम्वत् 1830 लगभग

मसि रंग : काले / नारंगी / भूरे रंग का प्रयोग

पृष्ठ संख्या : 3

69. अमर प्रारम्भ

विषय : व्याकरण

समय : सम्वत् 1925 लगभग

मसि रंग : पूरे पीले पृष्ठ पर काली स्याही से लिखित

पृष्ठ संख्या : 3

70. विद्या षोड्सी ज्ञानाक्षरी

विषय : व्याकरण

समय : लगभग सम्वत् 1920

मसि रंग : लाल/काला

पृष्ठ संख्या : 6

71.चक्र साधन विधि

लेखक : सदाशिव

विषय : तन्त्र

समय : सम्वत् 1875 लगभग

विशेष : श्रीचक्र आदि की पूजन विधि,
गोरोचन का वर्णन

72. महामंत्र मयं स्त्रोत

लेखक : कालिदास चक्रवर्ती

विषय : पूजा

समय : सम्वत् 1830 लगभग

पृष्ठ संख्या : 2

73. षटत्रिशतत्वं न्यास

विषय : पूजा

समय : सम्वत् 1920 लगभग

मसि रंग : लाल/काला

पृष्ठ संख्या : 11

विशेष : मातृकाओं के गुणगान पर लिखी पांडुलिपि/
षोडश कला का वर्णन

74. प्रयोग रत्न

लेखक : नारायण भट्ट

समय : सम्वत् 1920 लगभग

मसि रंग : चमकदार काली स्याही का प्रयोग

पृष्ठ संख्या : 11

75. रत्नजीवी मदालसं

लेखक : राम श्रीमालि

विषय : व्याकरण

समय : सम्वत्1830 लगभग

पृष्ठ संख्या : 39

76. श्री गणेशाय नमः श्री भवान्यै नमः (अर्चन पद्धति का प्रथम पृष्ठ)

विषय : पूजा

समय : लगभग 1780

मसि रंग : नीले/काले/ लाल/सफेद रंग का प्रयोग

विशेष : 12 कली के दो चक्र, हंस मुखाकृति का अंकन

77. रूद्र यामले मंत्र खंड

विषय : पूजन विधि

समय : सम्वत् 1920

पृष्ठ संख्या : 2

78. कुलार्णवे महारहस्य (लक्षणग्रंथ)

लेखक : श्रीनाथ

विषय : व्याकरण

समय : सम्वत् 1789

पृष्ठ संख्या : 4

79. श्री महाविघ्नोर्मदा स्तुति

विषय : पूजा-स्तुति

समय : सम्वत् 1759 वैशाख सुदी 11 गुरुवार

पृष्ठ संख्या : 10

विशेष : प्रयाग में लिखी गई गंगा की स्तुति है

80. आनन्द लहरी

लेखक : शंकराचार्य

विषय : साहित्य

समय : सम्वत् 1793 माघ कृष्ण 14 भौमवार

पृष्ठ संख्या : 33

81. ईश्वरलिनि दुष्टग्रहं

विषय : ज्योतिष

समय : सम्वत् 1720

विशेष : चित्रिमंत्र लिपिपत्र

82. स्वयम्भू विमातृका तंत्र सारस्वत कल्प

लेखक : ब्राह्मणदत्त

विषय : तन्त्र

समय : सम्वत् 1891

पृष्ठ संख्या : 3

83.सुदर्शन संहिता उत्तरखंड

विषय : धर्म

समय : लगभग 1770

पृष्ठ संख्या : 199

84. भूषणस्य टीका मंजुभाषिणी

लेखक : दिवाकर

विषय : गणित

समय : शके 1591

पृष्ठ संख्या : 29

85. आनन्द लहरी

विषय : साहित्य

समय : सम्वत् 1812

मसि रंग : लाल/काला

86. स्कन्द पुराण का प्रज्ञावर्द्धने स्त्रोत

विषय : धर्म

समय : अज्ञात

मसि रंग : लाल रंग का बार्डर

पृष्ठ संख्या : 2

87. श्री मातृका निघंट

लेखक : सोनभट्ट

विषय : तन्त्र

समय : सम्वत् 1846

पृष्ठ संख्या : 3

88. रुद्रयांमले कल्याण वृष्टि स्त्रोत

लेखक : अज्ञात

विषय : पूजा

समय : सम्वत् 1811

पृष्ठ संख्या : 5

89. भैरवी तन्त्र

लेखक : अज्ञात

विषय : तन्त्र

समय : सम्वत् 1840 लगभग

मसि रंग : केवल काले रंग का प्रयोग

पृष्ठ संख्या : 3

90. त्रिपुटात्सवः

लेखक : अज्ञात

विषय : पूजा

समय : सम्वत् 1870 लगभग

पृष्ठ संख्या : 4

91. पंचमी स्तवराज महामंत्र रुद्रयान

लेखक : अज्ञात

विषय : स्तुति

समय : सम्वत् 1755 आषाढ़ त्रयोदशा रविवासरे

मसि रंग : हरा/लाल/काला

विशेष : अंतिम पृष्ठ पर गोलाकृति जिसमें बड़ी 26 कली का पुष्पांकन

92. बोधानन्द विरचित ललितोदय

लेखक : विश्वनाथ (पांडुलिपि लेखक)

विषय : लौकिक

समय : सम्वत् 1780 लगभग

पृष्ठ संख्या : 22

93. वामकेश्वर तन्त्र

लेखक : अज्ञात

विषय : तन्त्र

समय : सम्वत् 1840 लगभग

पृष्ठ संख्या : 13

94. नील सरस्वती मंत्र विधानम्

विषय : तन्त्र

समय : सम्वत् 1850 लगभग

पृष्ठ संख्या : 72

95.सर्वसाम्राज्य मेधानाम सहस्त्र स्त्रोत

लेखक : भवानीशंकर (शाजापुर निवासी)

विषय : स्त्रोत

समय : सम्वत् 1722 शके वैशाख

पृष्ठ संख्या : 34

96. श्री राज राजेश्वरी व्रत परम रहस्य

लेखक : अज्ञात

विषय : व्रत

समय : सम्वत् 1530 लगभग

मसि रंग : लाल/काला

पृष्ठ संख्या : 11

97. व्यास संहिता

विषय : व्याकरण

समय : सम्वत् 1880 लगभग

पृष्ठ संख्या : 4

98. धातु पाठं स्येदं पुस्तकं यज्ञेश्वरस्म

लेखक : अज्ञात

समय : सम्वत 1790 लगभग

पृष्ठ संख्या : 58

99. शिवार्चन ज्ञान पटल

लेखक : अज्ञात

विषय : पूजापद्धति

समय : सम्वत् 1790 लगभग

पृष्ठ संख्या : 9

100. कालिका संवाद (कौतुक संक्षेप विधि)

लेखक : नारायण (संभवत:)

विषय : साहित्य

समय : सम्वत् 1858 चैत्र 7

101. योगि लक्षणम्

लेखक : अज्ञात

समय : सम्वत् 1801

मसि रंग : लाल हाशिया काला लेख

पृष्ठ संख्या : 7

102.रुद्रयामले शिव शिवा संवाद शिवसहस्त्रनाम स्त्रोत

लेखक : अज्ञात

विषय : स्तुति

समय : सम्वत् 1920 लगभग

पृष्ठ संख्या : 6

विशेष : शिव आराधना का स्त्रोत है।

103. श्री गणेश नमस्कस केशवी नाम पद्धति

लेखक : अज्ञात

विषय : धर्म

समय : सम्वत 1643 अषाढ़ शुद्ध सोमे

पृष्ठ संख्या : 1

104. जीवदानाष्टकं

लेखक : अषन्द्रानाथ

विषय : दर्शन

समय : सम्वत् 1748 चैत्र कृष्ण पंचमी

पृष्ठ संख्या : 2

105. अन्नपूर्णा स्त्रोत

लेखक : शंकर

समय : सम्वत् 1856

पृष्ठ संख्या : 3

106. शुद्ध शक्ति मालामंत्र

लेखक : बाई दुर्गा

विषय : पूजा

समय : सम्वत् 1792 ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी

पृष्ठ संख्या : 6

107. कार्तवीर्य दीपदान विधि

लेखक : अज्ञात

विषय : पूजाविधि

समय : अज्ञात

मसि रंग : काली स्याही/
विशेष्य के लिए नारंगी रंग का प्रयोग

विशेष : अनुष्टुप छन्द

108. श्री महालक्ष्मी हृदय स्त्रोत

विषय : स्त्रोत

समय : सम्वत् 1780 माघ मास शुक्ल पक्ष

109. मंत्र मुक्तावली

लेखक : अज्ञात

विषय : स्त्रोत

समय : सम्वत् 1721आषाढ़ 14 मंगलवार

पृष्ठ संख्या : 3

110. प्रज्ञावर्द्धनं स्त्रोत (स्कन्दपुराण)

विषय : धर्म

समय : अज्ञात

पृष्ठ संख्या : 2

111.शिवस्त्रोत

लेखक : सिद्ध गुणाकर शर्मा

विषय : स्त्रोत

समय : सम्वत् 1764

पृष्ठ संख्या : 3

विशेषताएं : 8.1 x 3.5 इंच का आकार,
प्रत्येक पृष्ठ में लगभग 14 पँक्ति

112.बोधायन रचित ललितोदय

लेखक : विश्वनाथ

विषय : लौकिक

समय : सम्वत् 1880 लगभग

पृष्ठ संख्या : 22

विशेषताएं : 6.8x4 इंच आकार के प्रत्येक पृष्ठ में लगभग 9 पँक्तियां

113. पूर्णाभिषेक पद्धति

लेखक : श्रीचक्र

विषय : पूजा पद्धति

समय : सम्वत् 1900 लगभग

पृष्ठ संख्या : 5

114. केदार सहस्त्रनाम स्तोत्र

विषय : स्त्रोत

समय : सम्वत् 1867 ज्येष्ठ तृतीय भृगवासरे

पृष्ठ संख्या : 23

115. स्कन्द पुराण ब्रह्मोत्तर शिववर्ण कथलाभ, द्वादशो अध्याय

विषय : धर्म

समय : सम्वत् 1890 लगभग

मसि रंग : पीला हरताल

पृष्ठ संख्या : 3

116. ऋग्विधनने (पंचम अध्याय)

विषय : धर्म

समय : सम्वत् 1697

पृष्ठ संख्या : 38

विशेष : 9 x 4 आकार के प्रत्येक पृष्ठ में आठ पँक्तियां

117. लाला उमराव

लेखक : अज्ञात

विषय : साहित्य

समय : सम्वत् 1877

विशेष : केवल कुछ ही पृष्ठ उपलब्ध हैं

118. आदित्य हृदयं

लेखक : निगुणाकर अनन्त वैभव के पुत्र रामचन्द्र

समय : सम्वत् 1870 लगभग

पृष्ठ संख्या : 2

119. रूधादिश

लेखक : अज्ञात

विषय : व्याकरण

समय : सम्वत् 1890 लगभग

पृष्ठ संख्या : 14

विशेष : प्राप्ति स्थल-पूँछ,हरि,राम आदि के रूप भी लिखे हैं।

120. मुरारि टीका

लेखक : वीरेश्वर

विषय : धर्म

समय : शके 1581

पृष्ठ संख्या : 93

121. कार्त्तवीर्यार्जुन सहस्त्र नामाख्य स्तवं

विषय : धर्म

समय : सम्वत् 1857

पृष्ठ संख्या : 47

विशेष : प्रत्येक पृष्ठ में पाँच पँक्तियां

122. द्वादश मास वर्णन

विषय : ऋतुवर्णन

समय : सम्वत् 1769

पृष्ठ संख्या : 33

विशेष : हिन्दी का प्रयोग

123. पंद्या सारंगधस्य पद्धति

लेखक : सोमे

विषय : धर्म

समय : सम्वत् 1722 मार्गशीर्ष शुद्ध प्रतिपदा

पृष्ठ संख्या : 24

विशेष : आकार- 10.5x4.5 इंच, बाद में तीन पँक्तियां क्षेपक की भाँति जोड़ी गईं हैं।

124. सप्तशती स्त्रोत

लेखक : अज्ञात

विषय : धर्म

समय : सम्वत् 1890 लगभग

पृष्ठ संख्या : 4

आकार : 5.2 x 2.7 इंच

125. वालात्रिपुरानित्य पूजा विधि

लेखक : अज्ञात

विषय : धर्म

समय : सम्वत् 1766

पृष्ठ : 4

विशेष : 7x4.3 इंच आकार वाले प्रत्येक पृष्ठ पर 7 पँक्तियां

126. मूर्ति प्रतिष्ठा सामग्री

लेखक : अनन्त ने लिखी जिसे वाराणसी में किसी महोपाध्याय ने कहा

विषय : पूजा पद्धति

समय : सम्वत् 1701 चैत्र कृष्ण पक्ष

पृष्ठ संख्या : 12

आकार : 9 x 3.8 इंच

127. कार्त्तवीर्यार्जुन

लेखक : वीरेश्वर कृत/नारायण भट्ट द्वारा लिखित

विषय : धर्म

समय : सम्वत् 1754 कार्तिक कृष्ण 14 रविवासरे

पृष्ठ संख्या : 29

128. ब्रह्माण्ड पुराण (अष्टम अध्याय)

लेखक : घमंडी लक्ष्मण भट

विषय : धर्म

समय : सम्वत् 1880 लगभग

पृष्ठ संख्या : 6

129. भैरव कल्पे शरभ स्त्रोत

लेखक : रामभट्ट खाण्डेकर

विषय : स्त्रोत

समय : सम्वत् 1814 अश्विन मासे

पृष्ठ संख्या : 5

आकार : 6.8 x 3.5 इंच

130. वराहितन्त्र देवी सूक्त

लेखक : अज्ञात

विषय : तंत्र

समय : सम्वत् 1870 लगभग

मसि रंग : काली स्याही / अलंकृत पत्र बंध

पृष्ठ संख्या : 12

आकार : 4.3 x 2.5 इंच

131.वर्णाये माला मंत्र

लेखक : वेणीराम

विषय : यंत्र

समय : सम्वत् 1805 पौष शुक्ल

विशेष : प्रथम पृष्ठ पर बीजमंत्र यंत्र का अंकन

132. शिव अर्चना पद्धति

लेखक : अज्ञात

विषय : पूजा

समय : सम्वत् 1732 श्रावण मासे कृष्ण पक्ष 11 गुरुवार

मसि रंग : पीला हरताल

पृष्ठ संख्या : 8

133. अर्जुन गीता

लेखक : अज्ञात

विषय : पूजा

पृष्ठ : 34

मसि रंग : पहले काला/लाल, बाद में खाकी/लाल

विशेष : 24 पृष्ठ में गीता , 10 में शिवपूजन/ लिखावट में भी अन्तर

134. सिद्ध महालक्ष्मी मन्त्र

विषय : पूजा

विशेष : एक कागज पर लम्बवत्

135. शिवभुजंग

लेखक : अज्ञात

विषय : धर्म

समय : सम्वत् 1800 लगभग

136.श्री रुद्रयामले ईश्वर पार्वती संवाद

लेखक : अज्ञात

विषय : धर्म

समय : सम्वत् 1870 लगभग

पृष्ठ संख्या : 4

137. हर्ष दीक्षित विरचित अंकग्रंथ टीका

लेखक : चूड़ामणि दीक्षित

विषय : अंकशास्त्र

समय : सम्वत् 1750 लगभग

पृष्ठ संख्या : 13

विशेषताएं : बीज चित्र अंकित हैं

138. रुद्रयामले स्त्रोत

लेखक : श्रुतमंगल पाठक

विषय : स्त्रोत

समय : सम्वत् 1800 लगभग

मसिरंग : लाल

पृष्ठ संख्या : 12

139. रत्न-रत्नाकर सेतु टीका

लेखक : भास्कर

विषय : व्याकरण

समय : सम्वत् 1912 वैशाख कृष्ण 13 सनौवासरे

पृष्ठ संख्या : 15

विशेष : श्री रामलला मंदिर कोंच में लिखी गई, ऐसा उल्लेख है।

140. बाला प्रवक्ष्यामि मन्त्र

लेखक : मनमहीधर

विषय : मन्त्र

समय : सम्वत् 1880 लगभग

पृष्ठ संख्या : 8

141. पर्यंवासना पद्धति

लेखक : प्रसन्न विश्वात्म योगी

समय : सम्वत् 1890 लगभग

मसि रंग : भूरा/ विशिष्ट शब्द चिह्न पीला हरताल

पृष्ठ संख्या : 8

142. भुवनेश्वरी पूजा विधि

लेखक : अज्ञात

विषय : पूजा

समय : सम्वत् 1870 लगभग

पृष्ठ संख्या : 5

143. सर्वमातृकाय महीमन्त्र पुष्पांजलि

लेखक : अज्ञात

विषय : मन्त्र

144. गीता अष्टादश अध्याय

लेखक : अज्ञात

विषय : धर्म

समय : सम्वत 1880 लगभग

मसि रंग : लाल/काला

पृष्ठ संख्या : 20

आकार : 2.8 x 5.8 इंच

145. कुहनी तन्त्र, नवेश्वरी कवचं

लेखक : अज्ञात

विषय : धर्म

पृष्ठ संख्या : 2

146. रुद्रयामले बाला पंचमी स्तवं सम्पूर्ण

लेखक : अज्ञात

विषय : पूजा

पृष्ठ संख्या : 2

147. अथ केदार सहस्त्र नाम

लेखक : अज्ञात

विषय : धर्म

समय : सम्वत 1912 लगभग

मसि रंग : विशेष्य के लिए नारंगी रंग का प्रयोग

पृष्ठ संख्या : 12

148. प्रकाशमिदं सत्यं

लेखक : महिदास

विषय : साहित्य

समय : सम्वत 1707 भाद्रपद सुदी 4 गुरुवार

पृष्ठ संख्या : 13

149. संतान कामेश्वरी

लेखक : अज्ञात

विषय : सामाजिक

समय : सम्वत 1900 लगभग

पृष्ठ संख्या : 5

150. चित्र नित्या पूजा विधि

लेखक : अज्ञात

विषय : पूजा

पृष्ठ संख्या : 31

151. लक्ष्मी नृसिंह करावलं वन

लेखक : परिव्राजकाचार्य मछंकराच्चार्य

विषय : ज्योतिष

समय : सम्वत 1790 लगभग

शिलालेख

जालौन जनपद में प्राप्त प्रमुख शिलालेखों/अभिलेखों में से कुछ का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है :-

श्री रोपण गुरु के मंदिर इटौरा के शिलालेख से स्पष्ट होता है कि उक्त मंदिर का निर्माण जहाँगीर ने करवाया। शिलालेख इस प्रकार है-

1. निरंजन सपेक्षणाद क्षेत्र मुनि वृन्तिना भूपाल वृन्द बधेन रामेणाढददे अहितम्।

2. नयन मुनि नृपेब्दे क्रोधन मासि माघे , सदन भकृत रामः पुष्प मेन्दौ च वारे। यवन अवन दक्षे श्री जहाँगीर संज्ञे जगत विशद की हौ कुर्वती शे सुराज्यम्।

3. गंगाकूल सुमूल पूर्व वसति ग्रामन्चिटौरा भिधे राजन्योऽजीनरोपणः पुनरतः श्री जानि रामि प्रभु तस्या पहि सुतो नुतो खिल जनैः श्री परशुरामौ गुरुश्चैत्य चारु चकार चोपल मयम् वैश्यो वदान्यो मुवि।

4. रामाश्चारु चकोर कोविद मतः मनं ददद्दोहि नाम संताप विरुदन विनोद मनयत् सत्कैरवाणां कुलम्। पात्रापात्र विवेक दान निरतः पीयूष पूर्ण सदा। श्रीभद्रोपाणि वश रत्न जलधो जातोद मुतश्चन्द्रमाः।

5. समीप श्री करीपुर्या ग्रामः सहावली तित ततः शिला समानीता श्रीमतारति मानुना।

पाहूलाल मंदिर (जो कालपी के अदलसराय मुहल्ले में है) का निर्माण पाहूलाल खत्री द्वारा अपनी मनौती पूरा होने के उपलक्ष्य में कराया गया था।

मंदिर के अधिष्ठाता देव बिहारीजी हैं, इसीलिए मंदिर को बिहारीजी का मंदिर कहा जाता है। इस मंदिर पर अंकित शिलालेख देवनागरी लिपि में है। शिलालेख इस प्रकार है- 'श्री गणेशाय नमः श्री गोपालजी का मंदिर बनवाया लाला पाहूलाल हीरालाल, ठाकुरदास, गौरीशंकर खत्री मेंहरें निवासी कालपी के पुरा अदलसराय / गुरु नित्यानन्दजी / कारीगर गयाप्रसाद मिती कुआँर सुदी 11 रानौ संवत 1802' इस शिलालेख से स्पष्ट है कि मंदिर का निर्माण संवत् तदनुसार ई. सन् 1746 में किया गया।

कालपी का दिगम्बर जैन मंदिर इस बात का साक्षात् प्रमाण है कि कालपी में जैन संस्कृति का पल्लवन हुआ है। इस मंदिर का निर्माण संवत् 1863 में श्री माखनलाल हरप्रसाद जैन द्वारा आध्यात्मिक चेतना के जागरण हेतु किया गया। इस मंदिर में अंकित शिलालेख इस प्रकार है- 'श्री संवत् 1863 मिती वैशाख शुक्ल 3 दिने श्री मुक्तसंघे बलात्कारेगणे सरस्वती गच्छेण धर्मनाये श्री आचार्य कुंद कुंद आचार्य तत्याद पंकजे विकास भानु श्री महारक श्री जिनेन्द्रभूषण नो पदेसात श्री ओसवालवंशे गांधी गोत्र श्री लाला श्रीचन्द तत्पुत्र ज्येष्ठ मन्त्रीलाल, मध्यमपुत्र पलटीलाल, लघु पुत्र पिस्सीलाल तयो ज्येष्ठ पुत्रस्य पुत्र गंगा प्रसाद मध्यम पुत्रस्य हरप्रसाद शंकरलाल लघु पुत्रस्य पुत्र माखनलाल नित्यं प्रणयेत।'

इसी मंदिर में ऋषभनाथ की धात्विक प्रतिमा की पीठ पर यह लेख अंकित है- 'संवत् 1347 वैशाख सुदी 6 पौष आदान मां सांस्वते श्री जी सुपक्ती मुँह डार मोटा सुत का साँ प्रणामति।'

रामपुर गढ़ी का शिलालेख :- 'श्री गणेशाय नमः श्री कछवाहा श्री राजा

भुवनपाल जू देव इदुर जीतें आई के बुधनौंटा लई सम्वते 1310 की साल में तिन ते बारह साथी की श्री राजाराम साहि जू देव भए तिन अपने नाम के रामपुरा को किला बनवायो 1676 की साल में तिनतें पांच साल पीछें श्री महाराजाधिराज श्री राजा फतेहसिंह जू देव भए तिहि सुत माधवसिंह महल भरौं बनवायो । सम्वत् दस 883 ऊपर पायो । कृष्णपक्ष वैशाख हो नवा सरस सिनानी । नीड लगी शुभ लगन सम प्रेम ध्यान बखानी बनी बरस पांच में आरते कारीगर हरीसिंह की । ता ऊपर तरहन रासुको रहो कढोरे गौ विप्र वेदवान वि वि राम शशि इत नौ हजार लगी लगाई न महल को लीजो चतुर विचार अमल उज्जैन के महाराजाधिराज श्री महाराज अलीजाह सूबेदार श्री दौलतिराव जी सिद्धि ते बहादुर मुकाम इकलाष फौज सौ ग्वालियर बगीचा.....' किले के दक्षिणाभिमुखी मंदिर में अंकित यह शिलालेख स्पष्ट करता है कि किले का निर्माण सम्वत् 1310 में हुआ ।

लक्ष्मीनारायण मंदिर कोंच में हनुमानजी के गले में यह अंकित है -'श्री महावीर जन्मतिथि भादौं सुदी 14 मंगल संवत् 1889 स्थापित 'मंदिर में उत्कीर्ण एक अन्य लेख इस प्रकार है - 'पुनः 210 वर्ष पश्चात स्थापित श्री खुत्रीलाल शिष्य अग्रवाल हलवाई कोंच सम्वत् 2020 चल रहा है ।'

नक्शे :- ई. सन् 1881 दिसम्बर में पं. माधवप्रसाद की सहायता से लखनऊ में छपी जगतवर्णन पुस्तक के नक्शा नम्बर-3 में वर्णित है कि यमुना नदी के तट पर कालपी-मथुरा-आगरा-दिल्ली- इटावा-हमीरपुर आदि मुख्य नगर बसते हैं । नक्शा नम्बर-7 में वर्णित है कि जालौल जिला हमीरपुर के ईशान कोण में अवस्थित है । इसका क्षेत्रफल 1555 वर्गमील है । इसकी कैफियत में

वर्णित है कि कालपी के कागज और मिश्री प्रसिद्ध हैं। जालौन और कोंच भी प्रसिद्ध स्थान है। ये नक्शे जालौन गजेटियर में उपलब्ध हैं।

प्रकाशित ग्रंथ/सनदें/राजाज्ञाएँ :- जहाँ तक जनपद में उपलब्ध प्रकाशित ग्रंथों का सवाल है तो भरसक प्रयत्न करने के बावजूद सन् 1800 ई. के पूर्व को एक भी प्रकाशित ग्रंथ उपलब्ध नहीं हुआ है।

सनदों और राजाज्ञाओं की भी कमोवेश यही स्थिति है। जो प्राचीनतम दस्तावेज उपलब्ध हैं उनमें 12 अक्टूबर 1806 तथा 23 अक्टूबर 1806 के संधिपत्र विशेष उल्लेखनीय हैं। 12 अक्टूबर को हुई संधि के तहत कालपी परगने के बराबर का क्षेत्र अंग्रेजों ने जालौन के शासक नाना गोविन्दराव को लौटाया। इनमें परगना कोटरा के 36 तथा परगना सैदनगर के 14 गाँव शामिल थे। 23 अक्टूबर की संधि में जालौन के शासक गोविन्दराव से अंग्रेजों को प्राप्त होने वाले गाँवों की फेहरिस्त है इनमें कालपी का किला व कालपी शहर भी शामिल है।

सन्दर्भ सूची

1. पाण्डुलिपि विज्ञान , डॉ. सत्येन्द्र , पृष्ठ - 1
2. भारतीय साहित्य , पं. उदयशंकर शास्त्री , जनवरी 1959 , पृष्ठ - 120
3. The American peoplis Encyclopaedia , page. 175
4. विश्व इतिहास की झलक , पृष्ठ 4
5. पाण्डुलिपि विज्ञान , डॉ. सत्येन्द्र ,पृष्ठ - 9
6. The Encyclopaedia Americana . Vol. 2 , page. 163
7. दतिया जिले में पत्र पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण , डॉ. कामिनी, डॉ. सीताकिशोर, डॉ. श्यामबिहारी , पृष्ठ - 33
8. Archives and Records ; what are thay : Basu Purendu
9. पाण्डुलिपि विज्ञान , डॉ. सत्येन्द्र , पृष्ठ - 67
10. सारस्वत (वार्षिक पत्रिका, स.वि.म.इ.कॉ. उरई 2000), पृ. 62
11. तदैव , 2001 , पृ. 98
12. साक्षात्कार दिनाँक 28 अप्रैल 2001 के अनुसार (श्री रातकृष्ण निरंजन सिमरिया)
13. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरिमोहन पुरवार , पृ. 246
14. दतिया जिले में पत्र पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण , डॉ. कामिनी, डॉ. सीताकिशोर, डॉ.श्यामबिहारी , पृष्ठ - 33
15. पाण्डुलिपि विज्ञान , डॉ. सत्येन्द्र , पृष्ठ - 1
16. पाण्डुलिपि विज्ञान , डॉ. सत्येन्द्र , पृष्ठ - 17
17. सारस्वत , 2001 , पृ. 79
18. पाहूलाल मंदिर कालपी के शिलालेख से उद्धृत
19. प्राचीन भारतीय लिपिमाला : गौरीशंकर ओझा , पृ. 145
20. पाण्डुलिपि विज्ञान , डॉ. सत्येन्द्र , पृष्ठ - 304
21. क्रोंच रश्मि , वार्षिक पत्रिका , म.प्र. महाविद्यालय कोंच , वर्ष 41, लेखक - डॉ. रामसंजीवन शुक्ल
22. मध्यकालीन भारतीस संस्कृति : महामहोपाध्याय, गौरीशंकर ओझा

पंचम अध्याय

जनपद जालौन का स्थापत्य

अध्याय - 5

जनपद जालौन का स्थापत्य

मानव स्वभावत: सौन्दर्यप्रेमी होता है। सौन्दर्य की रुचि मनुष्य की अनुकरण प्रवृत्ति द्वारा प्रमाणित होती है। मानव की सर्वोपरि चेतना प्रकृति के अनुकरण में निहित है। भारतीय कला में प्रत्यक्ष की अपेक्षा परोक्ष तथा सत्य की अपेक्षा कल्पना को ही अधिक महत्व दिया गया है, क्योंकि कल्पना के द्वारा मनुष्य में नवचैतन्य का जन्म होता है। किसी भी देश की कला कलाकारों की शताब्दियों की मनोरम कल्पना का परिणाम है तथा आंतरिक मनोभावों की सच्ची परिचायिका है। भारतीय कला दर्शन पर विचार करने के पश्चात शिल्प को 'मूक काव्य' कहना सर्वथा उचित होगा।

समस्त स्थापत्य कला को दो भागों में विभाजित किया गया- धार्मिक और धार्मिकेत्तर कला। धार्मिक कला में जैन, बौद्ध और ब्राह्मण धर्म से संबंधित पूजास्थल आते हैं, जिनमें मठ, मंदिर, चैत्य, स्तूप आदि शामिल हैं।[1] धार्मिकेत्तर स्थलों में किले, दुर्ग, गढ़ियाँ, बावड़ी, वाटिकाएं आदि सम्मिलित हैं। ऐतिहासिक विश्लेषण से ज्ञात होता है कि गुप्तकाल चौथी शताब्दी में उत्तर भारत में मंदिर निर्माण की शैली विकसित हुई। इसके अतिरिक्त इस विशाल देश के विस्तृत भूभाग पर वास्तुविधा और कला की दृष्टि से दो परम्पराएं प्रमुख रूप से पनपी थीं।

पहली आर्य परम्परा है जिसको हम विश्वकर्मीय परम्परा, विश्वकर्मा स्कूल, उत्तरी परम्परा, नार्दन स्कूल या नागर शैली किसी भी नाम से पुकार सकते हैं। दूसरी परम्परा है अनार्य परम्परा या मय परम्परा, साउदर्न स्कूल, द्रविण परम्परा अथवा द्रविण शैली। [2]

भारतीय वास्तुकला का वैसे तो वैदिक काल में ही प्रारम्भ हो गया था पर उसके विकसित होने में कुछ समय अवश्य लगा होगा। वस्तुतः महाकाव्य कालीन समय ही विभिन्न शैलियों का जन्मदाता है। वैदिक कालीन सभ्यता ग्रामीण सभ्यता थी। उसके बाद ही छोटे गांव बड़े नगरों और महानगरों में तब्दील हुए। प्रासाद की नागर बेसर और बेसर शैलियों में मतभेद है। हैवेल का मत है कि प्रासाद की नागर द्रविण शैलियाँ वास्तव में भौगोलिक न होकर धार्मिक हैं। अर्थात नागर शैली में शिव और द्रविण शैली में विष्णु। [3] जबकि फर्ग्यूनस कहते हैं कि इन दोनों शैलियों के अन्तराल में भारतीय भूभाग के दो प्रमुख भौगोलिक विभाग - उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ हैं। [4]

वैदिक काल के बाद मौर्य काल में पूजा वास्तु का प्राधान्य नहीं था। तथापि भारतीय वास्तुकला के जिसकी मुख्य एवं मूर्धन्य प्रासाद कला है, विकासमान बीज पूर्णतः पल्लवित हो चुके थे। क्रमशः शुंग सातवाहन काल में हीनयान एवं महायान की विशिष्टताओं के अनुरूप इन धार्मिक स्थानों- आयान गृहों एवं पूजागृहों की विरचना हुई। इस समय की सर्वश्रेष्ठ एवं एक विशिष्ट कलाकृति गुहामंदिर या लयन प्रसाद अथवा पर्वत तक्षण वास्तु का अभूतपूर्व विकास प्रारम्भ हुआ। गुप्तवंश कलाओं का स्वर्णयुग है। वस्तुतः यहाँ से ही हिन्दू प्रासाद की राज्याश्रयी पृष्ठभूमि प्रारम्भ होती है। द्वार पर गंगा-यमुना का अंकन, स्तम्भों का

घट अंकन गुप्तों की प्रमुख विशेषताएं हैं। गुप्त के बाद स्थापत्य की बागडोर केन्द्र के हाथ से निकलकर प्रांतीय राजाओं के संरक्षण में फली-फूली। भुवनेश्वर के गंग शासक, होयसल, चालुक्य कला, चन्देलों के मंदिर आदि। जहाँ तक जनपद जालौन की कला का प्रश्न है यह चन्देल कला से अतिशय प्रभावित है क्योंकि यह क्षेत्र बुन्देलों के ही अधीन था।

भारत की प्रत्येक क्रिया धर्म से अनुप्राणित है। मूर्तिकारों ने मानव देह के रूप में ही मंदिर का मूर्त रूप तैयार किया -

देहो देवालयो प्रोक्तों जीवो दवः सनातनः
त्यजेद ज्ञान निर्माल्य सोऽहं भावेन पूजयेत।

अर्थात देह ही देवालय है और जीव ही देह है। अज्ञान को निर्माल्य मानकर त्यागना है। वह प्रभु हम ही हैं इस भाव से उसका पूजन करना चाहिये।[5] वास्तुशास्त्री बी.एन. रेड्डी लिखते हैं- ‘ Because of Vastu, the whole world gets health, happiness and all round prosperity. Human being attain divinity with this shastra Vastu and the exitence of this world are interrelated. Becase of Vastuman get not only the worldly pleasures but can experience hevenly bliss also.’ [6]

जिस चबूतरे पर मंदिर का निर्माण होता है यानी जो सारे मंदिर का बोझ संभालता है वह पाद कहा जा सकता है। उसके ऊपर का स्थान जंघा भाग का द्योतक है, जहाँ से मंदिर का भीतरी भाग दिखलाई पड़ता है उसे कटि और भीतरी भाग पेट का, यही गर्भगृह भी होता है। छत पर स्कन्ध और शीर्ष तथा

शिखा मानव का सिर है यानी मंदिर का शीर्ष भाग मनुष्य के सिर के समकक्ष है। उपयोग की दृष्टि से मंदिर को कई भागों में बाँटा गया है, ये हैं- दरबार हाल, विद्वत् परिषद या सभा मंडप, व्यासस्थान तथा शिक्षा का केन्द्र।

खजुराहो शैली की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है-

1. परकोटे का अभाव

2. ऊंचे प्रस्तर का चबूतरा

3. मंदिर का कोई भाग अत्यधिक ऊंचा नहीं

4. मंदिर गर्भगृह, मंडप(सभामंडप स्तम्भ युक्त) तथा अर्द्धमंडप(प्रवेश बरामदा) है।

5. गर्भगृह के समीप बने गलियारे का अंतराल जो गर्भगृह को सभा मंडप से जोड़ता है।

6. विकसित मंदिरों में गर्भगृह के चारों ओर प्रदिक्षणा पथ होता है, इसी से जुड़ा महामंडप।

7. उरुश्रंग की बनावट।[7]

8. मंदिर का द्वार पूर्व दिशा की ओर, द्वार तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ जो धरातल से ऊंची हैं।[8]

शिखर पर आमलक, कलश और स्तूपी तीनों हैं। जनपद जालौन में उपलब्ध मंदिरों में मुगल एवं मराठा शैली का भी प्रभाव है।

धार्मिक इमारतों के अतिरिक्त धार्मिकेत्तर इमारतों में कई भवन शामिल हो जाते हैं। पुरातात्त्विक उत्खननों से मिले अवशेषों से ज्ञात होता है कि हड़प्पा संस्कृति से लेकर अर्वाचीन युग तक दुर्ग बनाने की परम्परा विद्यमान रही है।

साहित्य में विभिन्न प्रकार के दुर्गों की चर्चा है। मानसार में सैनिक प्रयोजन के लिए दुर्गों को सात श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया- गिरिदुर्ग, वनदुर्ग, सलिल, पंक, रथ, देव व मिश्र दुर्ग। वे विवरण के अनुसार ये दुर्ग गोल, वर्गाकार या आयताकार होंगे। इसके आसपास परिखा एवं वप्र (घेरा) होना चाहिये। प्रवेश व बहिर्गमन के लिए कई द्वार (प्रतोली) हों, इसके अन्दर प्रदिक्षणा सोपा तब गूढ़ भिट्टि सोपाल (गुप्त रास्ता) घेरे वाली दीवार के बीच शिखर बने हों जिन पर युद्ध की सामग्रियाँ, अन्दर तालाब एवं आवासीय भवन निर्मित होने जा रहा है।

यहाँ पर दुर्गों और गढ़ियों की बड़ी संख्या है। ये प्राय: सामरिक दृष्टि से बनाये गए हैं और इन्हें गिरि दुर्ग के अन्तर्गत माना जा सकता है। इस क्षेत्र के दुर्गों को दृष्टि में रखकर उनकी कुछ वास्तु सम्बन्धी विशेषताएं इस प्रकार से दृष्टिगोचर होती हैं- अधिक ऊंचाई का दुर्ग सामरिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर निर्मित करवाया गया होगा। किले या दुर्ग के किनारे बनाया गया परकोटा और उसके बुर्ज भी सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से बने होंगे। ऊंची दीवारों पर डिजाइनदार कटाव व दुर्ग की बाह्य दीवारों के चारों ओर परिखा का निर्माण होता है। यह व्यवस्था स्थिति के अनुसार बदली जा सकती है। कालपी के दुर्ग में यमुना नदी की ओर कोई दीवार नहीं बनाई गई है।[9] बड़े दुर्गों में एक से अधिक द्वार बने हुए हैं। कहीं-कहीं तलघर और मंदिर भी देखे जा सकते हैं। कुछ किलों में गुप्त मार्ग भी बने होते हैं जो किसी निश्चित क्षेत्र तक पहुँचते हैं।

जनपद जालौन के स्थापत्य को क्रमश: दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. लौकिक भवन

2. धार्मिक भवन

इस जनपद के स्थापत्य को भलीभाँति समझने के लिए हिन्दू स्थापत्य एवं मुस्लिम स्थापत्य तथा दोनों की कतिपय मिश्रित विशेषताओं को समझना बहुत जरूरी है।

हिन्दू स्थापत्य :- हिन्दू स्थापत्य के अन्तर्गत हिन्दू स्थापत्य शैली, जैन स्थापत्य शैली, बौद्ध शैली, राजपूत शैली, पहाड़ी शैली व मराठा शैली को सम्मिलित किया गया है।

- भवनों की नींव गहरी तथा रोकथाम हेतु चबूतरे का प्रयोग।
- भवनों की ऊंची कुर्सी।
- लकड़ी का बहुतायत प्रयोग, पत्थर व ईंटों का प्रयोग।
- चतुर्दिश द्वार।
- चमकदार पॉलिश, नुकीली घंटियों का प्रयोग।
- सजावट के लिए बारीक और मोटा कार्य।
- स्तम्भों की बनावट सुन्दर व सजीव, तली मोटी व चौड़ी, ऊपर का भाग क्रमशः पतला होता जाता है।

धार्मिक भवनों पर गुम्बदों का प्रयोग/ भवनों के द्वार स्तम्भों, वातायनों पर सुन्दर अलंकरण/ छज्जों एवं दीवारों में आलों का होना/ धार्मिक भवनों के गुम्बदों पर कमल का फूल एवं गुम्बद आधारों के बाह्य क्षेत्र पर पद्मदलों का अलंकरण/ मेहराबदार दरवाजे/ मंदिर शिखर के कई खण्ड/ अलंकरण के प्रमुख उपादान फूल, पत्ते, चिड़ियाँ, जानवर, नर-नारी आदि का अंकन/ हिन्दू मंदिर शकुआकार एवं पिरामिडाकार होते हैं/ शिखर में कमल व कलश को उचित

स्थान उत्कीर्ण अलंकरण को प्रमुखता। हिन्दू कला अलंकरण और चमक-दमक वाली थी। [10]

कालपी क्षेत्र में उपरोक्त विशेषताओं से युक्त भवन इस प्रकार हैं- पाहूलाल मंदिर, गणेश मंदिर, दिगम्बर जैन मंदिर, बटाऊलाल मंदिर, बड़ा स्थान, लक्ष्मीनारायण मंदिर, पातालेश्वर मंदिर, चौरासी गुम्बद, श्री दरवाजा आदि। कोंच में उपर्युक्त हिन्दू स्थापत्य शैली की स्पष्ट छाप लक्ष्मीनारायण मंदिर, रामलला मंदिर आदि में देखने को मिलती है। जालौन के द्वारकाधीश मंदिर, लक्ष्मीनारायण मंदिर, भैरव मंदिर रामपुरा, बम्बई वाला मंदिर आदि स्थापत्य कला के प्रतीक हैं। उरई में लक्ष्मीनारायण मंदिर, मंसिलमाता, रामलला, ठड़ेश्वरी मंदिर, रोपणगुरु मंदिर, कुकरगांव आदि हिन्दू स्थापत्य के उदाहरण हैं। जगम्मपुर, रामपुरा तथा गोपालपुरा की गढ़ियाँ भी हिन्दू स्थापत्यशैली के अन्तर्गत निर्मित हैं। [11]

मुस्लिम स्थापत्य की कतिपय विशेषताएं इस प्रकार हैं :- इमारतों में मेहराब का प्रयोग/ मेहराबदार दरवाजे/ मस्ज़िदों में मीनार तथा गुम्बद/ गुम्बदों पर टाइल्स की जड़ाई/हल्की नक्काशी का काम/ इमारत की छतें धनुषाकार, डॉटदार इमारतों में सजावट बहुत कम/विशाल आँगन, बड़े दालान/ समरूपता के सिद्धान्त का पालन/ इमारतों में सरलता/अलंकरण के लिए कुरान की आयतें और अल्लाह शब्द का उत्कीर्णन/इमारतों में लाल पत्थर व जाली का प्रयोग/[12] इमारतों में चूने की भराई गचकारी (स्टकोवर्क) का प्रयोग। [13]

मुस्लिम स्थापत्य कला शैली का प्रभाव कालपी की काली हवेली, शाही मस्ज़िद, मदरसा मदार साहब के अतिरिक्त उरई में जामा मस्जिद सैदनगर, कोंच

में कलन्दरशाह की मजार आदि पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। उपरोक्त हिन्दू और मुस्लिम शैली का संयुक्त प्रभाव भारतीय संस्कृति की समावेश परम्परा के लिए नवीन नहीं है। जनपद जालौन की स्थापत्य कला भी इस सम्मिलित प्रभाव से अछूती न रह सकी। इसी प्रभाव वाले स्थापत्य के विषय में एक विद्वान का कथन है कि-' हिन्दुओं में मूर्तिपूजा थी, मुसलमान इसका विरोध करते थे। हिन्दू सजावट और शृंगार चाहते थे, इस्लाम सादगी पसन्द करता था। इन विरोधी आदर्शों ने मिलकर स्थापत्य कला की एक ऐसी शैली को जन्म दिया जिसे हम भारतीय मुस्लिम शैली कह सकते हैं।'[14]

भारतीय मुस्लिम स्थापत्य के इन बिन्दुओं से इस शैली को और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है- इस शैली की मीनारें आनुपातिक रूप से चौड़ी से पतली होती जाती हैं/ इमारतों में गुम्बद हैं किन्तु सजावट के लिए टाइल्स का प्रयोग नहीं हुआ/ मंदिरों पर कलश बने हैं/विशाल द्वार जिन पर कुरान की आयतें लिखीं हैं/ कंकरीट और चूने का बहुतायत में प्रयोग/ इमारत की कुर्सी ऊंची रखी गई है/तहखानों का निर्माण/ छज्जों का प्रयोग हुआ/ ताकों की बनावट ऊपर की ओर तथा सरल है/ दरवाजे मेहराबदार हैं/सजावट का रूप कम है परन्तु सुन्दर है। मस्जिदों में हौज बने हैं तथा कुछ में हम्माम भी बने हैं।

उपर्युक्त सम्मिलित विशेषताओं से युक्त कोंच की तकिया खुर्रमशाह, बारहखम्भा, कुम्भज ऋषि आश्रम आदि हैं। जनपद जालौन में कुछ ऐसे भवन भी हैं जो हिन्दू स्थापत्य शैली के अनुसार बने हैं किन्तु मध्यकाल में उन्हें इतना परिवर्तित कर दिया गया कि आज वे हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्य का उदाहरण बन गए हैं। इनमें कोंच का तकिया खुर्रमशाह, श्री दरवाजा, हवेली सुभानगुण्डा

आदि शामिल हैं। इन सब विशेषताओं से युक्त भवनों की क्रमवार विवेचना इस प्रकार है-

रोपण गुरु मंदिर

जनपद जालौन की कालपी तहसील का प्रसिद्ध ग्राम इटौरा $26^0 2^0$ उत्तर तथा $79^0 43^0$ पूर्व में स्थित है।[15] यह ग्राम कालपी से दक्षिण की ओर 8 किलोमीटर एवं उरई से उत्तर पूर्व की ओर 16 किलोमीटर की दूरी पर बसा है। इटौरा - गुरु का इटौरा के नाम से विख्यात है। कहा जाता है कि यह बृहस्पति का स्थान है जो देवताओं के गुरु माने जाते हैं।[16] गुरु का इटौरा अकबरपुर इटौरा के नाम से भी जाना जाता है।[17] यह रोपण गुरु जो डौंडियाखेरे के राजकुल में पैदा हुए थे, की कार्यस्थली थी। इनसे प्रभावित होकर तत्कालीन भारत के मुगल बादशाह अकबर ने अपने नाम की कीर्ति हेतु ग्राम बसाया, इसी कारण यह ग्राम अकबरपुर इटौरा के नाम से भी विख्यात हुआ।[18]

इस स्थान की प्राचीनता ब्राह्मण पुराण में आये विवरण से स्पष्ट हो जाती है, जिसमें कहा गया है कि -'इटौराख्यम् महापुण्यम् भुक्ति मुक्ति प्रदायकम्'[19] अर्थात यह महापुण्यम् क्षेत्र भोग और मुक्ति दोनों प्रदान करने वाला इटौरा के नाम से विख्यात हुआ। इस स्थान के प्रसिद्ध संत रोपण गुरु का जन्म डौंडियाखेरे के राजकुल में संवत् 1540 में हुआ था। यह ग्राम उन्नाव जनपद में है। रोपण गुरु की कीर्ति और अलौकिक शक्तियों से प्रभावित होकर ही अकबर ने एक मंदिर व तड़ाग निर्माण की घोषणा की। सम्वत् 1618 में रोपण ने गुरु की पदवी पायी। तब से आज तक यह परम्परा निर्बाध रूप से चली आ रही है। इस परम्परा में अब तक 16 गुरु हो चुके हैं।[20]

रोपण गुरु का चार मंजिला मंदिर पूर्वाभिमुखी है। मंदिर की दक्षिणी दीवार पर अंकित शिलालेख के अनुसार इस मंदिर का निर्माण अकबर के पुत्र जहाँगीर ने करवाया।[21] जबकि इस मंदिर के निर्माण के विषय में प्रणाम विलास में प्राप्त वर्णन कहता है कि इसका निर्माण अकबर ने कराया।[22]

इस मंदिर के पश्चिमी भाग में रोपण गुरु समेत 15 गुरुओं की समाधियाँ बनी हुई हैं। गर्भग्रह सात सीढ़ियों से नीचे उतरने पर मिलता है। वस्तुत: यहाँ कोई मूर्ति नहीं बल्कि वसन हस्त निर्मित चित्र रखा हुआ है।

सम्पूर्ण समाधिस्थल अलंकृत स्तम्भों द्वारा निर्मित मेहराबदार दरवाजों से सजा हुआ है। स्तम्भों के ऊपरी भाग में घोड़े पर सवार के अतिरिक्त हस्ति अंकन भी प्राप्त होता है। सिंह और मयूर के जोड़े भी तोड़ों को अलंकृत करने का कार्य करते प्रतीत होते हैं। सभी स्तम्भ लाल बलुआ पत्थरों द्वारा निर्मित हैं। चतुर्थ मंजिल अपूर्ण सी प्रतीत होती है, तथापि पूर्णता के द्योतक कलश की स्थापना वहाँ है जो आमलक के ऊपर विराजित है।

इस मंदिर के निर्माण के लिए परशुराम जी के पुत्र श्री रतिभानुजी फतेहपुर-सीकरी से छह मील दूर स्थित भरतपुर स्टेट की रूपवास तहसील के सिंहावली नामक ग्राम से यमुना नदी के रास्ते नौकाओं से पत्थर कालपी लाये थे। कालपी से बैलगाड़ियों पर ढोकर यह पत्थर इटौरा तक लाया गया।[23]

श्री रोपण गुरु मंदिर की पूर्व दिशा में तड़ाग स्थित है। यह काफी विशाल तालाब है जिसके चारों ओर घाट बने हुए थे, किन्तु वर्तमान में केवल उत्तरी और पश्चिम तट पर ही घाट दिखाई पड़ते हैं। विशालकाय तालाब का जो भाग आज भी इटौरावासी प्रयोग कर रहे हैं वह लगभग 435 फुट चौड़ा और 525 फुट लम्बा है।

परासन

जनपद जालौन की कालपी तहसील के अन्तर्गत जीवनदायिनी विन्ध्यगिरि पुत्री वेत्रवती (वेतवा) के तट पर 25⁰56⁰ उत्तर तथा 79⁰44⁰ पूर्व पर बसे एक छोटे से गांव का नाम है परासन।[24] यह पराशर ऋषि की तपोभूमि है।[25] इसी कारण इस स्थान का नाम परासन पड़ा। भगवान व्यास- पराशर ऋषि तथा महाभागा सत्यवती के गर्भ से यमुनाजी के द्वीप जन्में थे।[26] परासन में पाराशर ऋषि का एक मंदिर है जो पीली मिट्टी की पहाड़ी पर स्थित है। मंदिर पूर्वाभिमुखी है। 25 X 60 फुट के एक आयत पर मठिया अवस्थित है, विमान गुम्बदाकार है। इस मठ/मठिया की दीवारें चार फुट चौड़ी हैं। यहाँ गर्भगृह में पाराशर की श्वेत संगमरमरी प्रतिमा है। यहीं पर उपलब्ध दो शिव मंदिर अलग-अलग जगती पर निर्मित हैं। दीवारों पर उच्चकोटि का प्लास्टर किया गया है। दीवारों पर बेलबूटों का अलंकरण है। एक कक्षीय यह मंदिर वर्गाकार है। वर्ग की चारों भुजाओं के ऊपर अष्टभुजी आकृति पर मंदिर का विमान खरबूजाकार स्थिति में/आमलक पर कलश स्थापित है।दोनों मंदिर एक-दूसरे के अगल-बगल बने हैं। उत्तरी दिशा वाले मंदिर की विशिष्टता है दीवारों पर सुन्दर अंकन। मंदिर के तोड़ों पर मयूराकृति तथा चूने द्वारा निर्मित द्विभुजी सिंहवाहिनी हैं। इसी मंदिर में पंचानन शिवलिंग की प्रतिमा है जो काले पत्थर द्वारा निर्मित है। इस मंदिर में चित्रकला के सुन्दर नमूने उपलब्ध हैं।

गणेश मंदिर कालपी

यह मंदिर कालपी नगर के गणेशगंज मुहल्ले में स्थित है। इसका निर्माण मराठा काल में हुआ था। यहाँ मराठों के आराध्यदेव श्री गणेशजी महाराज की प्राणप्रतिष्ठा है।[27] इस मंदिर का जीर्णोद्धार बालाजी बाजीराव पेशवा द्वारा करवाया

गया था।[28]

गोडसे नामक यात्री ने सन् 1857 में अपनी बुन्देलखण्ड यात्रा को अपने यात्रा वृतान्त में (जो बरबर नाम से जानी जाती है) यह तथ्य लिखा है कि पेशवा बाजीराव प्रथम ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया। बताया गया है कि छत्रपति शिवाजी के गुरु समर्थ गुरु रामदास ने शक संवत् 1599 में अपने कालपी आगमन के समय अपने हाथों से लाल बलुआ पत्थर पर दाहिनी ओर से सूंड़ वाले गणेशजी को गढ़कर उनकी स्थापना की थी।[29]

■ यह प्रसद्ध मंदिर 60 X 60 फुट के दायरे में है। पश्चिमाभिमुखी इस मंदिर में 21X 21 फुट के चबूतरे पर 19 X 19 फुट में मंदिर का गर्भगृह स्थापित है। इसकी जगती की ऊंचाई 8 फुट है जिसके ऊपर सात फुट गहरी गोल डॉट है। ऊपर नासिका युक्त चतुष्कोणीय विमान अंकित है जिसकी ऊंचाई 20 फुट है। मंदिर के विमान पर आधी दूरी तक उरुश्रंगों का अंकन है। मंदिर 9 फुट ऊंची दीवारों से घिरा है। साथ ही एक शिवमंदिर भी है जो आकृति एवं प्रकार में गणेश मंदिर जैसा ही बना है। मंदिर में गणेशजी की तीन प्रतिमाएं हैं जो क्रमशः रामदासजी द्वारा निर्मित हैं। द्वितीय मूर्ति के अधिष्ठाता बाजीराव प्रथम द्वारा स्थापित यह मूर्ति 16 इंच लम्बी व 12 इंच चौड़ी है। तृतीय मूर्ति सफेद संगमरमर द्वारा निर्मित है ऊंचाई 14 इंच तथा चौड़ाई साढ़े आठ इंच है। इसकी प्राण प्रतिष्ठा बाई साहब ने कराई थी।

चौरासी गुम्बज

कालपी में प्रवेश द्वार के रूप में खड़ा चौरासी गुम्बज अब खस्ता हाल में है। ऐसी जीर्ण-शीर्ण दशा में भी उसकी बुलन्दी दिखाई पड़ती है। चौरासी गुम्बज की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में विभिन्न मतान्तर हैं। अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होने वाली

यह इमारत आकृति की दृष्टि से बौद्ध भवन प्रतीत होती है । रायबहादुर गौरीशंकर ओझा तथा प्रो. जदुनाथ सरकार के 1928 में कालपी भ्रमण के समय स्व. कृष्ण बलदेव वर्मा के गृहप्रवास के समय इन लोगों ने बताया कि कालपी में चौरासी गुम्बद एवं अन्य मठ बौद्धकालीन हैं। सम्राट अशोक द्वारा बौद्ध धर्म ग्रहण करने के पश्चात एक विश्वस्तरीय सम्मेलन कालपी में हुआ था और उसी आयोजन के अन्तर्गत इस चौरासी गुम्बद एवं अन्य मठों का निर्माण कराया गया था। [29]

डॉ. के.डी वाजपेयी के अनुसार देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि उसका निर्माण पहले किसी अन्य प्रयोजन के लिए हुआ था। यह इमारत वर्गाकार है।[30]

श्री डी.एल.ड्रेक बॉकमैन भी यह स्वीकारते हैं कि बाद में इस भवन को लोधीशाह बादशाह की कब्र के नाम से जाना गया। कुछ लोग तो इसे सिकन्दर लोधी की कब्र मानते हैं। [31] जबकि हम यह तथ्य जानते हैं कि सिकन्दर लोधी आगरा के निकट मरा था और उसके शव को दिल्ली ले जाया गया था।[32]

चौरासी गुम्बद नामक शानदार मकबरा महमूद लोधी का है जो बादशाह सिकन्दर लोधी का अमीर था और कालपी में नियुक्त था। हिजरी 791 में हुए एक युद्ध में महमूद लोधी अपने अंगरक्षक भिश्ती के साथ मारा गया था। उसकी याद में बनी इस मजार के बीच में लोदी बादशाह की कब्र तथा बांयी ओर भिश्ती की कब्र है।[33] किसकी कब्र है इसके लिए कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है। ऐसा मालूम होता है कि नगर के किसी प्रभावी यवन शासक की कब्र है जो मुगलों से पहले की बनी हुई है।[34]

यह विशाल भवन अत्यधिक सुन्दर और वर्गाकृति आकार वाला है। वर्ग की प्रत्येक भुजा के संधिस्थल पर एक मीनार स्थित है। वर्ग की पूर्वी भुजा के

केन्द्रस्थल पर एक विशाल मेहराबदार द्वार स्थित है । इसके ऊपर षट्कोणीय आधार पर एक विशाल गुम्बद है । दीवार की चौखट लाल बलुआ पत्थर से निर्मित है । दरवाजे के ऊपर स्लैब के कारण द्वार आयताकार हो गया है । इस द्वार की गहराई 17 फुट तथा ऊंचाई 25 फुट है । दांयी ओर 14 फुट और 20 फुट की ऊंचाई वाले द्वार हैं । बांयी ओर के द्वार नेस्तनाबूद हो चुके हैं । मर्यादा भित्ति पर 84 द्वार होंगे और उनके ऊपर गुम्बद । इसी कारण इस इमारत का नाम चौरासी गुम्बद पड़ा होगा ।

भवन की मर्यादा भित्ति के अन्दर 80 फुट का वर्गाकार खुला आंगन है । इसी के बाद वर्गाकार में भवन का केन्द्रीय भाग अवस्थित है । वर्ग की भुजाओं पर एक मीनार है । प्रत्येक भुजा पर तीन द्वार हैं । दरवाजों के ऊपर ढालदार छज्जे बने हैं । इन पर कंगूरे अंकित हैं । प्रत्येक द्वार की मध्यभित्ती पर दो दरवाजों की दीवार के मध्यभाग पर एक अलंकृत आला बना है । दरवाजे के दोनों ओर ऊपरी भाग में ज्यामितीय आकृतियों से सुसज्जित गोला अंकित है । इन गोलों में अरबी भाषा में अल्लाह अंकित है । भवन का केन्द्रीय कक्ष आधार पर वर्गाकार किन्तु ऊपर की ओर षट्मुखी और बाद में फिर गोल है । क्रमशः आंतरिक, मध्य एवं बाह्य भुजा पर तीन, पाँच एवं सात द्वार बने हैं । कुल 60 द्वारों से सजे इस भवन के केन्द्रीय भाग में सुन्दर ज्यामितीय डिजाइन उकेरी गई है । अन्दर की दीवारों पर सुन्दर अलंकरण हैं । बाहर सहन के बाद बाउन्ड्री है । बाउन्ड्री में चारों ओर गुम्बद युक्त मेहराबी दरवाजे बने हुए हैं । इनकी मीनारें बहुत छोटी हैं । [37]

चौरासी गुम्बज भवन बाहर से 125 फुट के वर्ग में बना है । इसकी ऊंचाई लगभग 80 फुट है । सम्पूर्ण भवन शतरंज की बिसात की भाँति आठ मेहराब के

स्तम्भों एवं सात रेखाओं द्वारा खुली जगह में विभक्त है। इस प्रकार 64 मेहराब के स्तम्भ हैं जिनके ऊपर समतल छत है। इस भवन के मेहराब के स्तम्भ 6 फुट 2 इंच से लेकर 8 फुट 8 इंच तक के वर्ग के आकार में मोटे तथा 6.5 फुट से 9.5 फुट तक फैलाव लिए हुए हैं।[38]

मदार साहब का चिल्ला

कालपी पीर और फकीरों का शहर माना जाता है।[39] पीरों के पीर थे मदार साहब[40] जिन्हें बदरुद्दीन शाह अली के नाम से जाना जाता है। मुहल्ला मदारपुरा में आज भी इनकी जिन्दा बैठक मानी जाती है। मुहल्ला मदारपुर कालपी के प्राचीन 52 मुहल्लों में से एक है। पुरानी कालपी में शेखपुर बुल्दा है। यहाँ पर मदार साहब का चिल्ला या कब्र बनी है। यहीं पर मदार साहब ने 40 दिन बैठकर इबादत की थी।[41]

मदार साहब का चिल्ला चारों ओर ऊंची दीवारों से घिरा कई भागों में बंटा हुआ भवन है। कहा जाता है कि मदार साहब की सवारी बब्बर शेर की थी। साहब के चिल्ले पर बनी शेर की आकृति भी इस लोकोक्ति का समर्थन करती है। इबादतगाह में एक कलात्मक चिराग़दान का भी वज़ूद है। इस भवन में एक आलीशान रिहायशी मकान के अवशेष भी देखे जा सकते हैं।

मदार साहब का चिल्ला वर्गाकार आकृति का बना है, जिसकी प्रत्येक भुजा 30 फुट की है। हर भुजा पर मेहराबयुक्त दरवाजों का भी अंकन है। ऊपरी गोल गुम्बद पतली पकी ईंटों से निर्मित है जिन्हें चक्राकार स्थिति में समायोजित किया गया है। चिल्ले की दीवारें 10 फुट चौड़ी हैं। इनमें चूने का प्लास्टर है। यहाँ पर दस आले भी दृष्टव्य हैं। चिल्ले के दक्षिणी सिरे पर श्री दरवाजे की ही भाँति एक दरवाजा बना हुआ है।[42]

पाहूलाल मंदिर कालपी

कालपी तहसील के 52 पुराने मुहल्लों में से एक सराय अदल में यह विख्यात मंदिर स्थापित है। इसे पाहूलाल खत्री द्वारा निर्मित करवाये जाने के कारण पाहूलाल मंदिर और बिहारीजी की प्रतिमा होने के कारण बिहारीजी का मंदिर के नाम से पुकारा जाता है। यह मंदिर अपने पुत्र कन्हाई के स्वास्थ्य लाभ की मनौती स्वरूप बनवाया गया था। श्री रूपकिशोर टण्डन के अनुसार यह मंदिर सम्वत् 1903 तदनुसार सन् 1847 में बना।[43] प्रताप नारायण पाण्डेय के अनुसार यह एक प्राचीन मंदिर है।[44] मंदिर से प्राप्त शिलालेख से स्पष्ट है कि गोपालजी के इस मंदिर का निर्माण अदल सराय के निवासी लाला पाहूलाल, हीरालाल, ठाकुरदास, गौरीशंकर खत्री ने अपने गुरु नित्यानन्दजी महाराज के निर्देशन में गयाप्रसाद कारीगर द्वारा क्वाँर सुदी 11 संवत् 1802 तदनुसार ईसवी सन् 1746 में कराया।[45]

यह मंदिर विशाल एवं विस्तृत है। यह शिखर युक्त मंदिर है जिसके अन्दर विस्तृत आँगन है।[46] मंदिर के अधिष्ठाता देव बिहारीजी हैं। इसी गर्भगृह के ऊपर विशालकाय शिखर है। मुख्य कक्ष के आजू-बाजू उत्तरी/दक्षिणी कक्षों में भी गर्भगृह प्रदर्शित हैं। मंदिर के पूर्व की ओर एक विशालकाय मैदान है। आँगन की उत्तरी दिशा में एक दालान स्थित है, जिसमें कई मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। मंदिर 9 फुट की ऊंची जगती पर निर्मित है।

गर्भगृह पर शक्वाकार शिखर निर्मित है। उत्तर और दक्षिण की ओर छोटे-छोटे गोलाकार शिखर हैं। मंदिर के पूर्वी द्वार पर गणपति की और उत्तरी द्वार पर भगवान बुद्ध की मूर्ति है। मंदिर के आँगन में व आँगन के चारों ओर छज्जों पर विभिन्न मूर्तियाँ स्थापित हैं। देखा जाए तो यह मंदिर मूर्तियों का संग्रहालय है। मुख्य गर्भगृह

के दक्षिणी दिशा में बने कक्ष में एकादश शिव प्रतिष्ठित हैं। गर्भगृह एवं शिवलिंग के अलावा उपलब्ध सभी मूर्तियाँ बलुआ पत्थर से निर्मित हैं।[47] कुल 93 मूर्तियाँ हैं। इन सभी मूर्तियों का नामांकन इनकी पीठिका पर मिलता है। इनमें दशानन विष्णु अवतार आदि मूर्तियाँ हैं।

दिगम्बर जैन मंदिर

जालौन गजेटियर में उल्लेखित है कि सन् 1901 में कालपी में 133 जैन मतावलम्बी लोग थे।[48] यह मंदिर जनपद जालौन में जैन संस्कृति के पल्लवन का द्योतक भी है।

मंदिर 60 X 30 फुट की आकृति में निर्मित है। इसकी ऊंचाई लगभग 40 फुट है। मंदिर का प्रवेश पश्चिमाभिमुखी तथा गर्भगृह पूर्वाभिमुखी है। प्रवेश के साथ ही दालान शुरू हो जाती है। इसके बाद खुला प्रांगण और प्रांगण से जुड़ा हुआ पुनः एक दालान है। ये दालान सम्भवतः मण्डपों का स्वरूप ही है। गर्भगृह की पूर्वी दिशा में दालाननुमा आराधना कक्ष है। गर्भगृह का शिखर लगभग 20 फुट ऊंचा है। इसकी आकृति सुराही की भाँति है। गर्भग्रह की उत्तरी दिशा में एक चैत्याकृति है। इस कक्ष की पश्चिमी दिशा में अनेक जैन मूर्ति विग्रह स्थापित हैं। इस मंदिर में पाषाण एवं धात्विक दोनों प्रकार की मूर्तियाँ हैं। जिनमें से मुख्य इस प्रकार हैं- सर्पछत्रधारी भगवान पार्श्वनाथ (ध्यानमुद्रा की यह मूर्ति काले पत्थर की है), श्वेत संगमरमर की पार्श्वनाथ मूर्ति, भगवान शांतिनाथ, ऋषभनाथ की प्रतिमा पर एक लेख भी अंकित है। यहाँ जैन परम्परा में प्रचलित दो हस्तलिखित चित्र भी उपलब्ध हैं। इनमें से एक प्रथम चित्र तीर्थंकर के जन्म का है। एक अन्य चित्र तीर्थंकर के निर्वाण उत्सव का है।

इसी दिगम्बर जैन मंदिर के पूर्व में श्वेताम्बर जैन मंदिर है। यहाँ उपलब्ध धातु की भगवान शांतिनाथ की प्रतिमा अत्यन्त दुर्लभ मूर्ति है। यह प्रतिमा सम्वत् 1511 की है।[49] कालपी में ही गणेशगंज मुहल्ले में एक अन्य दिगम्बर जैन मंदिर की स्थापना हुई थी जो जैन समाज द्वारा पोषित है।

बटाऊ मंदिर

कालपी क्षेत्र के अदल सराय मुहल्ले में स्थित यह मंदिर अपने निर्माणकर्ता बटाऊ लाल खत्री के नाम से ही प्रसिद्ध हुआ।[50] हनुमानजी के एक अन्य नाम बटाऊ लाल से ख्यातिप्राप्त यह अत्यन्त सिद्ध स्थान है। इस मंदिर का निर्माण लगभग 500 वर्ष पूर्व हुआ था।[51]

बटाऊ मंदिर स्थापत्य कला का शानदार नमूना है। यह मंदिर वर्गाकार क्षेत्र में स्थित है। मध्यभाग में गर्भगृह के अतिरिक्त चारों ओर खुला प्रदक्षिणापथ है। खुले प्रदिक्षणापथ के चारों ओर दालान बना है। मंदिर पूर्वाभिमुख है। मंदिर के ऊपर शिखर लगभग 200 फुट ऊंचा है।[52] मंदिर के शिखर के चारों ओर मठ बने हुए हैं। गर्भगृह के अधिष्ठाता शिव हैं। गर्भगृह की चारों दीवारों पर एक मेहराबदार द्वार था। इन दीवारों के ऊपर की अष्टभुजी मेहराब पर विभिन्न मूर्तियों का अंकन है। इनमें दक्षिणदिशा में 16 भुजी रावण की प्रतिमा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पश्चिम दिशा में लक्ष्मीनारायणजी का अंकन है एवं पूर्व दिशा में गरुड़ पर भगवान विष्णु सवारी किये हुए हैं। अष्टभुजी आकृति के ऊपर गुम्बदाकार छत और लम्बायमान शिखर है। गर्भगृह 20 फुट ऊंचा है। मंदिर की दीवार दो फुट मोटी है। विमान के पूर्व में गणेशजी पश्चिमी दिशा में भैरव, उत्तर में माँ सिंहवाहिनी तथा दक्षिण में हनुमानजी की मूर्ति स्थापित है।

बड़ा मंदिर

कालपी के पुराने बावन मुहल्लों में से एक प्रभावती मुहल्ले में स्थित यह मंदिर दूर-दूर तक प्रसिद्ध है ।[53] इस मंदिर का निर्माण ८00 वर्ष पूर्व हुआ था ।[54] बताया जाता है कि उज्जैन ने इस मंदिर की दो शाखाओं के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की थी, दूसरी शाखा हैदलपुर में स्थित है । दूसरा मत है कि यह मंदिर मराठों ने बनवाया । कालपी के बड़ा मंदिर और हैदलपुर दोनों के पास चार-चार सौ बीघा जमीन है । इस मंदिर के नाम की पूरी काश्त की लगान औरंगजेब के समय से माफ थी । उसका प्रमाण लगानी कागजातों में मौजूद है ।[55]

यह मंदिर उत्तराभिमुखी है । मंदिर की समस्त मूर्तियाँ संगमरमर की बनी हैं । मुख्य मूर्ति भगवान विष्णु और लक्ष्मीजी की है । मंदिर में हनुमान, शंकर एवं कृष्ण युगल अंकित है ।

गोपालजी का मंदिर

कालपी के सदर बाजार में स्थित यह मंदिर श्री दीपचन्द दुलीचन्द माहेश्वरी ने बनवाकर इसे सार्वजनिक उपयोग के लिए समाज को समर्पित कर दिया ।[56] जहाँ यह भवन स्थित है उस प्लाट का खसरा नम्बर 570-571 है । इसकी पैमाइश 28 डेसीमल व 18 डेसीमल है । इसके अन्दर भगवान कृष्ण की अष्टधातु की प्रतिमा स्थापित है ।[57]

तीन मंजिल के इस मंदिर के आधारतल पर रहने के उपयुक्त रिहाइशी कमरे हैं । जिनमें पहले महन्त का निवास था । दूसरे खण्ड में मंदिर स्थापित है । मंदिर पूर्वाभिमुखी है । गर्भगृह सबसे पीछे स्थित है । गर्भगृह के पूर्व की ओर मंडप है ।

मंडप की उत्तरी दीवार में द्वार है । मंदिर के पूर्व में खुला प्रांगण है जो तीन द्वारों के

द्वारा खुले प्रांगण से जुड़ता है। पूर्व की ओर अर्द्धमंडप है। कुछ सीढ़ियों के द्वारा नीचे उतरकर मंदिर में आवागमन किया जाता है। मंडप की दक्षिणी दिशा में एक कक्ष है। खुले प्रांगण के भी दक्षिणी ओर एक दालान है। गर्भगृह के अन्दर सीढ़ियाँ हैं जिनके द्वारा ऊपर पहुँचा जा सकता है। तीसरे तल में भगवान के भोग के लिए रसोई का प्रावधान है। मंदिर शिखर रहित है।

लक्ष्मीनारायण मंदिर

यह मंदिर कालपी के प्राचीनतम मुहल्लों में से एक उदनपुरा नामक मुहल्ले में स्थित है। मंदिर आठ सौ वर्ष पुराना है। प्राचीनकाल में उदनपुरा कायस्थों का मुहल्ला था। ऐसा माना जाता है कि इस मंदिर का निर्माण भी कायस्थों द्वारा ही करवाया गया होगा। पूर्वाभिमुखी गर्भगृह के बाद अंतराल स्थित है और अंतराल से जुड़ा हुआ मंडप। लगभग पचास साल पहले इस मंदिर का जीर्णोद्धार भी करवाया गया था।[58]

पातालेश्वर मंदिर

कालपी नगर में यमुना नदी के दक्षिणी किनारे पर किले के पश्चिमी भाग पर यह पातालेश्वर मंदिर स्थित है।[59] मंदिर में लगे एक पट्ट के अनुसार यह मणिकेश्वर के नाम से जाना जाता है। इसका पूजन पाण्डव गुरु द्रोणाचार्य ने पुत्र प्राप्ति के लिए किया।[60] प्राचीन किले से इसकी दूरी 200 मीटर होगी। संभवत: यह किलेवासियों का आराधनास्थल रहा होगा। दो कक्षों के समूह से निर्मित यह मंदिर पूर्वाभिमुखी है। इसका पूर्वी कक्ष मण्डप की भाँति तथा पश्चिमी कक्ष गर्भगृह की भाँति प्रयोग में आता था। पाँच सीढ़ियों से नीचे उतरकर गर्भगृह में जाते हैं। कक्ष के ऊपर षट्कोणीय विमान है। इस गर्भगृह के बाहर पूर्व की ओर अर्चना मण्डप की गोल डॉट की सादा

छत है। इसके केन्द्र में कलश एवं पताका स्तम्भ लगा है। गर्भगृह के ऊपर बाह्यदीवार पर तोड़े के अलावा मेहराबदार छज्जे का अंकन है। कहा जाता है कि मराठा शासकों ने इस मंदिर का पुनरुद्धार करवाया था। [61]

व्यास क्षेत्र

व्यास क्षेत्र कालपी परगना में स्थापित है। यह कालपी $26^0 8^0$ उत्तर $79^0 45^0$ पूर्व यमुना के दक्षिणी किनारे पर बसी है।[62] कालपी नगर के पश्चिम-उत्तर में व्यास क्षेत्र के नाम से यह प्रसिद्ध क्षेत्र है।[63] व्यास क्षेत्र पर पहले व्यास जी का निवास बताया जाता है। कुछ अवशेष अब भी व्यास टीले पर देखे जा सकते हैं।[64] वैदिक ग्रंथों व महाभारत के अनुरूप महर्षि वेदव्यास का जन्म यमुना तथा व्यास के संगम तट पर हुआ था। इसीलिए आज भी प्रतिवर्ष वसन्त पंचमी पर यहाँ लगता है। पुराणों के जन्मदाता व्यास की जन्मस्थली होने के कारण कालपी अत्यधिक महत्वशालिनी हो उठी। यहीं पर महाभारत की भी रचना हुई थी।

सूर्य मंदिर

कालपी का सूर्य मंदिर यहाँ के प्रसिद्ध पुरास्थलों में से एक है। कहा जाता है कि अपने पिता कृष्ण से 'शापग्रस्त' शाम्ब को कोढ़ से शापमुक्ति का उपाय नारद जी ने यह बताया था कि वह सूर्यदेव की पूजा करे। सूर्य ने प्रसन्न होकर कहा कि तुम्हें शीघ्र ही सूर्य प्रतिमा नदी में तैरती हुई मिलेगी जिसे तुम मूल स्थान (मुलतान जो अब पाकिस्तान में है) में स्थापित करा देना । शाम्ब को स्नान करते समय चन्द्रभागा नदी में सूर्य की काष्ठ प्रतिमा मिली। अस्तु शाम्ब ने सूर्यदेव की प्रतिमा तीन स्थानों पर स्थापित की -

1. पूर्वीय पर्वत

2. यमुना नदी के दक्षिणी तट कालप्रियनाथ में

3. पश्चिमी पर्वत मूलस्थान(मुलतान) में।

कालप्रियनाथ के सम्बन्ध में मनीषियों में मतैक्य नहीं है। नवीन अन्वेषणों के आधार पर कालप्रियनाथ स्थान को कालपी से ही समीकृत किया जाता है। यमुना नदी के दक्षिणी तट पर कालप्रियनाथ में सूर्य की प्रतिमा स्थापित की गई। कालप्रियनाथ समीप कन्नौज के राजा यशोवर्मा का वार्षिकोत्सव होता था, उसी अवसर पर भवभूति के तीन नाटकों का मंचन कालप्रियनाथ के विशाल प्रांगण में हुआ था। स्थापत्य की दृष्टि से अब सूर्यमंदिर के भग्नावशेष ही शेष हैं। यहाँ पर शताधिक मठों की भी जानकार मिलती है किन्तु अब वे भी भग्नमालिका से हैं। भवभूति के नाटको के मंचन के प्रमाणस्वरूप- भवभूति के नाटक 'महावीर चरित' का सूत्रधार कहता है- 'भगवतः *कालप्रियनाथस्य* यात्रामार्यमिश्रा समदिशान्ति।' एक अन्य नाटक 'मालती माधव' की प्रस्तावना में इस प्रकार का उल्लेख है- 'कालप्रियनाथस्य यात्रा प्रसंग नाना दिगन्तवास्तव्यो महाजन समाजः।'

मंदिर की भव्यता को स्पष्ट करने के लिए राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय के यात्रा विवरण का अंश उल्लेख्य है (यह विवरण कैम्बे अभिलेख में मिलता है)-

'यन्माद्यद् द्विपदन्तघातविषमं कालप्रिय प्रांगण/ तीर्णा यत्तुरगैर गाथ यमुना सिंधु प्रतिस्पर्धिनी/ येनेदं हि महोदयारि नगरं निमूल मुन्मूलितं/ नान्माद्यापि जनेः कुंशस्थल भिति ख्याति परां नीयते।' यहाँ (कालपी) से एक पाषाण पट्ट भी प्राप्त हुआ है जो वर्तमान समय में डॉ. हरिमाहन पुरवार के बुन्देलखण्ड संग्रहालय में उपलब्ध है। कालपी क्षेत्र के एक टीले से मिट्टी के पात्र तथा अवशेष भी प्राप्त हुए हैं जिन्हें कुषाण काल से समीकृत किया गया है।

कुरहना

जनपद जालौन की कालपी तहसील के अन्तर्गत उरई से उत्तरपूर्व की ओर 32 किलोमीटर की दूरी पर ग्राम कुरहना बसा हुआ है। अनुश्रुति है कि कुम्भज ऋषि का आश्रम यहीं था। [65] प्रत्येक कक्ष की मठिया अन्दर से वर्गाकार होने पर ग्रीवा भाग अष्टमुखी है जिस पर उलटे कुंभ की भाँति गुम्बद बना हुआ है। चारों वर्गाकार भुजाओं के भीतर एक मेहराबयुक्त दरवाजा बना हुआ है जिसके ऊपर दो प्रकोष्ठ बने हैं। इन कक्षों का आकार 25 फुट है। प्रत्येक वर्ग की भुजा 14.5 फुट लम्बी, दीवार 2 फुट चौड़ी है। इसका दरवाजा 6.5 फुट ऊंचा और 2.5 फुट चौड़ा है। इस पर चूने का प्लास्टर है। ये कक्ष पूर्वाभिमुखी हैं।

लक्ष्मीनारायण मंदिर

लक्ष्मीनारायण मंदिर कोंच नगर के मालवीय नगर में मलंगा नाले के किनारे स्थित है।[66] सत्रहवीं शताब्दी में निर्मित इस मंदिर के संस्थापक गोस्वामी श्री भानुदासजी महाराज थे जो कि अठारहवीं विक्रमी शती में हुए थे।[67] गोस्वामी भानुदासजी की उपलब्धियों के कारण तत्कालीन शासकों ने निजी निर्वाह के लिए कई भूमियाँ सेवा-पूजा के लिए दान दे दीं।

देवमूर्ति के लिए भी कई गांव दिये गए। महाराज अनूपसिंह बुंदेला द्वारा जारी की गई राजाज्ञा दिनाँक जेठ बदी 14 सम्वत् 1767 विक्रम से प्रकट होता है कि इसके पहले भी कई जमीनों का दान मंदिर की सेवा पूजा के लिए दिया जा चुका था। [68]

यह मंदिर तीन परकोटों के अन्दर स्थित है तथा पश्चिमाभिमुख है।[69] इसका मुख्य दरवाजा 25 फुट ऊंचा तथा 15 फुट चौड़ा है। यह पतली ईंटों और चूने से निर्मित है। इसकी निर्माण तिथि सम्वत् 1970 व पूर्ण तिथि 2017 अंकित है। मंदिर का

गर्भगृह 10 X 10 फुट के वर्गाकार में बना है। मंदिर के ऊपर प्रथम तल अष्टकोणीय आलों से सुसज्जित हैं। ऊपर गोल गुम्बदाकार डॉट बनी है। गर्भगृह के शिखर के चारों ओर छोटे मंडप स्थित हैं। मंदिर भवन की रचना शैली 16वीं एवं 17वीं शती की प्रतीत होती है। गर्भगृह के प्रदक्षिणा पथ के पूर्व की ओर विशाल जगमोहन है। जगमोहन के उत्तरी दिशा में दालान है। गर्भगृह के उत्तर में भंडारगृह एवं रसोई और नलकूप है। तत्पश्चात दो अन्य कमरे भी हैं। महावीर की मूर्ति के उत्तर में एक ओर एक सत्संग कक्ष एवं पुस्तकालय है। कथामंच के दक्षिणी ओर बाग और खुला प्रांगण है। यह 80 X 50 फुट स्थान घेरे हुए है।

विष्णु और लक्ष्मी इस मंदिर के अधिष्ठाता युगल हैं। इनके अतिरिक्त हनुमान, राधा-कृष्ण तथा विष्णु की एक चुतुर्भुज प्रतिमा है।

बारहखम्भा

बारहखम्भा भवन कोंच के भगतसिंह मुहल्ले में स्थित है। इसी के बाजू में राम तलैया नामक तालाब है। उसके पास मुहाल आराजी में आठ खम्भा स्थित है। कहा जाता है कि दिल्ली सम्राट सिरसागढ़ में मलखान को पराजित करने के बाद घायल होकर अपने सैनिकों के साथ कोंच आये थे। उनके विश्राम के लिए रातोंरात बारहखम्भा और तालाब का निर्माण कराया गया। तालाब और बारादरी का निर्माण उनके सामन्त चामुणडराय ने कराया। इसी से तालाब का नाम चामुण्डराय चौड़िया के नाम पर पड़ा। बारहखम्भा चन्देलकालीन भी कहा जाता है। [70]

बारहखम्भा की वास्तुशिल्प इमारत ऊंची पीठिका पर स्थित है। बारहखम्भा को एक वर्गाकार ढांचे पर अर्द्धगोलाकार शिखर बना है। [71] बारादरी का ढाँचा देखने से स्पष्ट है कि जिस निर्माण सामग्री का यहाँ प्रयोग किया गया है वह पहले भी अन्य

स्थानों पर प्रयुक्त हो चुकी है। इसकी दक्षिणी भुजा के अंतिम छोर पर स्थित एक शिलापट्ट कुछ अस्पष्ट सा लिखा हुआ है। इस बारादरी के दक्षिण में स्थित एक कच्चा तालाब है जिसे चौड़िया तालाब कहते हैं। प्रत्येक स्तम्भ की ऊंचाई 8 फुट है और उसके ऊपर गोलडॉट का गुम्बद बना हुआ है।

तकिया खुर्रमशाह

वली खुर्रमशाह का तकिया कोंच का सिद्ध स्थान है। बताया गया कि इस स्थान को दागियाना कहते हैं। कहा जाता है कि चूँकि इस स्थान पर हिन्दू ठाकुरों ने इस्लाम कुबूल किया था। इसकी वजह से हिन्दू ठाकुरों की कौम पर दाग लग गया और यह जगह दागियाना हो गयी।

यह तकिया 30 X 30 फुट के चौकोर व तीन फुट ऊंचे चबूतरे पर बना है। इसकी ऊंचाई 60 फुट है तथा इसका दरवाजा दक्षिण की तरफ है। इसकी दीवारें तीन-तीन फुट मोटी हैं। पहली मंजिल की चारों दीवारों और चारों कोनों पर मेहराबदार आठ आले बने हैं जिनके ऊपर गोल डॉट पड़ी हुई है। छज्जे के तोड़ों पर मोर, तोता आदि परिन्दों की तस्वीरें गढ़ी हुईं हैं। पहली मंजिल पर ही तकिये की दीवारों के चारों कोनों पर एक-एक गुम्बदयुक्त मीनार बनी हुई है। मुख्य गुम्बद पर एक पुष्प की आकृति का अंकन है। तकिया की वास्तुकला पर हिन्दू स्थापत्य की छाप दिखाई पड़ती है। [72]

शिवमंदिर सरावन

सरावन गांव में भगवान शिव का बड़ा ही सुन्दर मंदिर है। इसका निर्माण सरावन के राजा फतहसिंह द्वारा सन् 1205 में किया गया था। यूँ तो सरावन छोटी सी जागीर है लेकिन राजा के भक्ति भाव और आध्यात्मिक रुचि ने इस मंदिर का निर्माण

करवाया। यह मंदिर नागर शैली का सुन्दर उदाहरण है। इसका गर्भगृह लगभग 10 फुट ऊंचाई तक सीधा गया है जो बाद में शंक्वाकार होकर संकुचित होता गया है। सम्पूर्ण मंदिर में लम्बवत् रेखीय अंकन द्रष्टव्य है।[73]

इसकी चारों भुजाएं आधारतल से लगभग 15 फुट ऊंचाई पर एकसाथ मिलकर मंदिर के आमलक का निर्माण करती हैं, जिस पर चक्राकार अंकन के बाद कलश स्थापित है। इस गर्भग्रह के पूर्व में एक विशाल आयताकार मंडप आकृति है। वस्तुतः यह मंडप नहीं है क्योंकि यह चारों ओर दीवारों से घिरा हुआ है। ऊपर छत पर चारों ओर एक-एक गुम्बदाकृति अंकित है। छत पर जाने के लिए दक्षिणी भुजा से जुड़ी हुई सीढ़ियाँ हैं। छत की मंदिर के किनारे कमलदलों का अंकन है। मंदिर पर चूने का प्लास्टर किया गया है। शिव के अधिष्ठाता होने के कारण गर्भगृह में भगवान शिव की सुन्दर मूर्ति है जो संगमरमर से निर्मित है।[74] शिवजी बिना पीठिका के विराजे हैं।

द्वारकाधीश मंदिर

मुरली मनोहर नामक मुहल्ले में द्वारकाधीश का मंदिर है। मंदिर का निर्माण सेठ चतुर्भुज दास मारवाड़ी के पुत्र नाथूराम मारवाड़ी ने कराया था। मुख्य उद्देश्य यश, पुण्य और पुत्र प्राप्ति था। मंदिर में अष्टायाम सेवा का विधान है। मंदिर का भवन ककैया ईंटों और चूने से निर्मित है।

तीन मंजिल वाले इस मंदिर में बगीचे और खुले प्रांगण का प्रावधान है। पश्चिम दिशा में बगीचा है। पूर्व दिशा में दालान तथा चौक का विधान है। चौक के उत्तरी दिशा में देवी मंदिर का निर्माण किया गया है। मंदिर की कुल लम्बाई 209 फुट तथा चौड़ाई 136 फुट है।

लक्ष्मीनारायण मंदिर

जालौन स्थित इस मंदिर का निर्माण सन् 1623 में श्री गोविन्द राव बुन्देला ने कराया था। [75] इस मंदिर निर्माण का मुख्य उद्देश्य संतान प्राप्ति था।[76] यह मंदिर 125 फुट लम्बे तथा 80 फुट चौड़े क्षेत्र में बना है। मध्यभाग में बने गर्भगृह के चारों ओर खुला प्रांगण और उसके बाद दालान का निर्माण किया गया। गर्भगृह 7.8 X 7.5 फुट की लम्बाई-चौड़ाई वाला है। इसी से जुड़ा आराधना मंडप है। इसके उत्तर में व्यासपीठ का निर्माण है।

आराधना मंडप के सामने लाल बलुआ पत्थर से बना एक हौज भी है। अर्द्धमंडप भी है जिसके मेहराबदार दरवाजे उत्तरी दिशा में खुलते हैं। यहाँ तीन स्तम्भ हैं जो 2 फुट 6 इंच चौड़े हैं। ये बेलबूटों एवं ज्यामितीय आकृतियों से अंकित है। मंदिर के नीचे एक तलघर का निर्माण भी है जिसके द्वार आदि सुन्दर अलंकरणों से युक्त हैं। प्रदक्षिणा पथ से जुड़ा हुआ रिहायशी सहन है। जालियाँ 4.8 इंच लम्बी तथा 3.3 इंच चौड़ी हैं। गर्भगृह में सिंहासन पर भगवान लक्ष्मीनारायण विराजित हैं। अलंकरण के उपादानों में मोर, शुकों, शंख, तिलक, मुकुट, चक पक्षी तथा पंखयुक्त नभचारी स्त्री का चित्रण है। यहाँ एक मनोरंजन कक्ष का भी निर्माण है जिसमें ताली बजाते ही तबले की थाप जैसी ध्वनि प्रतिध्वनित होती है।

पंचमुखी महादेव मंदिर

ग्राम चुर्खी जनपद जालौन के अन्तर्गत आता है। यहाँ पंचमुखी महादेव का मंदिर है। गर्भगृह के पूर्व दिशा में अर्चना मंडप है। गर्भगृह और अर्चना मंडप एक चबूतरे पर स्थित है। इसके बाद एक खुला प्रदक्षिणापथ। गर्भगृह के मध्य में पंचमुखी शिवलिंग व उत्तर में नन्दी विराजमान है। गर्भगृह के ऊपर षट्कोणीय ग्रीवा उसके बाद

गुम्बदाकार शिखर है। इसके ऊपर ध्वजदण्ड का प्रावधान है। षटभुजी ग्रीवा पर कमलदल का अंकन है। यहाँ विराजित शिव और पार्वती काले पत्थर से निर्मित हैं तो नन्दी बलुआ पत्थर से।

लक्ष्मीनारायण मंदिर उरई

यह प्राचीन मंदिर माहिल तालाब के नाम से प्रसिद्ध जलाशय के उत्तर-पूर्व में स्थित है। उरई नगरी छत्रसाल के आधीन थी जिसे उन्होंने मराठों की मदद के प्रतिफलस्वरूप उन्हें (मराठों को) दे दिया।[77] चूँकि मराठा शासक पेशवा के आराध्य लक्ष्मीनारायण थे इसीलिए जालौन तथा उरई में भगवान लक्ष्मीनारायण के मंदिर बनवाये गए। जनश्रुति है कि यह मंदिर तीन सौ वर्ष पुराना है।

नवीं और बारहवीं शती के मध्य चन्देलों द्वारा निर्मित अन्य मंदिरों की भाँति जमीन से लगभग दस फुट ऊंची जगती पर यह मंदिर निर्मित है। मंदिर एक परकोटे से घिरा हुआ है जिसमें दालाननुमा कमरे हैं। मंदिर की ऊंची जगती और परकोटे के बीच में खुला प्रांगण है तथा उत्तर दिशा में विशाल दरवाजा है। गर्भगृह का द्वार पूर्व दिशा की ओर खुलता है। द्वार लाल बलुआ पत्थर का बना है जिस पर सुन्दर अलंकरण हैं। मंदिर के ऊपर कुम्भजाकृति विमान है जिस पर कलश की स्थापना है जो आमलक का बड़ा स्वरूप है। कलश के चारों ओर छोटी शिखर आकृतियाँ बनी हैं। गर्भगृह से 10-15 फुट की दूरी पर मराठी स्थापत्य से प्रेरित एक भवन निर्मित है। इसके मध्य में एक बड़ा सा सभागृह है तथा आसपास छोटे-छोटे कक्ष हैं। यह मंदिर चन्देल और मराठा स्थापत्य का मिश्रित स्वरूप है। भवन की जगती मंदिर के अनुष्ठान से 5-7 फुट नीची है। मंदिर का प्लास्टर यद्यपि चूने से निर्मित है तब भी संगमरमर जैसा चिकना और चमकदार है , क्योंकि संभवत: अजन्ता की दीवारों पर भी इसी भाँति

का लेप है जो कौड़ी, सरेस, सन, गोंद आदि के मिश्रण से तैयार होता था।[78] गर्भगृह की छत मंदिर की छत से ऊपर है। आंतरिक प्रदक्षिणा के ऊपर की छत पर छज्जा बना है, इस पर तोड़ों का सहारा है। छज्जे के चारों कोनों पर पत्थर के तोड़े लगे हैं जो छज्जा तथा छत को अधिक मजबूती प्रदान करते हैं परन्तु शेष अन्य तोड़े चूने और ईंट के बने हैं। उत्तर-पश्चिम एवं दक्षिण के तोड़ों पर सुन्दर चित्रण भी है। मंदिर के गर्भगृह के बाहर आंतरिक प्रदक्षिणा में पूर्वी दीवार पर गर्भगृह के दोनों ओर दो बड़े - बड़े आले हैं। इनमें से उत्तरी आले में भगवान लक्ष्मीनारायण के वाहन पक्षीराज की मूर्ति रखी है। यह मूर्ति पत्थर की है। गरुड़ पर पुरुष वेश में स्थानक मुद्रा में दक्षिणी कपोत में गणपति प्रतिमा का अंकन है जो काले पत्थर की है। गर्भगृह में भगवान लक्ष्मीनारायण अपनी श्री लक्ष्मी के साथ विराजमान हैं।

राम-सीता मंदिर सैदनगर

वेतवा नदी के उत्तरी किनारे पर स्थित सैदनगर नामक गांव में यह मंदिर स्थापित है। नृसिंह की प्रतिमा की अनुपस्थिति में भी यह मंदिर नृसिंह मंदिर के नाम से जाना जाता है। इस मंदिर का निर्माण मराठाकाल में अर्थात वि.ई. सन् 1750 के लगभग हुआ था। इस मंदिर का नाम संत नृसिंहदास के नाम पर नृसिंह मंदिर पड़ा।[79] यह मंदिर पूर्वाभिमुख है तथा वर्गाकार इसकी प्रत्येक भुजा अन्दर से 15 फुट 4 इंच लम्बी है। गर्भगृह की दीवारें चार फुट चौड़ी हैं। पूर्व दिशा की तरफ एक मंडप है जहाँ पर भक्तगण आरती करते हैं।

इसके बाद एक चौकोर प्रांगण है जिस पर छत आच्छादित है। मंडप के चारों ओर दालान है। यह दालान तीन मेहराब द्वारा मंडप से जुड़ा है। सम्पूर्ण मंदिर एक ऊंचे अधिष्ठान पर स्थापित है। मंदिर नागर शैली का है। शिखर के आधे भाग में उरुश्रृंगों

की आकृतियाँ हैं ।[80] गर्भगृह के अन्दर बालू-पत्थर का ऊंचा सिंहासन है जिस पर सभी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं । द्वार पर कमलाकृति अंकित है, सिंहासन मेहराबदार त्रिद्वार युक्त है । सिंहासन के पूर्वी खम्भों पर एक-एक रक्षक अंकित है । अभंग मुद्रा में दण्डधारित पुरुषाकृति विशेष मराठा पगड़ी धारण किये हुए है ।

जामा मस्जिद सैदनगर

सैदनगर कब्रिस्तान में बनी यह मस्जिद तत्कालीन जागीरदार बसोरे मोती ने निजी सम्पत्ति से निजी उपयोग के लिए बनवाई थी । निर्माण समय हिजरी संवत् 1270 अर्थात 1850 ई. का है । यह मस्जिद 55 फुट लम्बी तथा 40 फुट चौड़ी है । यह एक अठखम्भा इमारत है । मस्जिद के भीतरी कक्ष में जहाँ मौलवी खड़े होकर नमाज पढ़ते हैं, उस स्थान पर द्वार आकृति पर फारसी तहरीर में अंकित है । नमाजगाह का मुख्य कक्ष वर्गाकार आकृति का है, जिसके प्रथम तल पर आठ मेहराब युक्त आले बने हैं । इसके ऊपर गुम्बदाकार छत है ।[81]

रामलला मंदिर उरई

पाठकपुरा मोहल्ले में स्थित इस मंदिर का निर्माण 400 वर्ष पूर्व हुआ था । उद्देश्य था भक्ति भावना का प्रचार-प्रसार । यह मंदिर पूर्वाभिमुख है । इसका गर्भगृह वर्गाकार है । प्रत्येक भुजा 26.5 फुट लम्बी है । यह गर्भगृह चार फुट चौड़े प्रदक्षिणा पथ से घिरा है । गर्भगृह से जुड़ा आराधना मंडप है जो 6.5 फुट वर्गाकार में स्थित है । प्रदक्षिणा पथ के पीछे मेहराबयुक्त दरवाजे के मध्य में एक वर्गाकार प्रांगण है जिसके तीन ओर उत्तर, पूर्व एवं दक्षिण में दालान है । उत्तरी, पूर्वी और दक्षिणी भुजा पाँच-पाँच मेहराबी दरवाजों द्वारा वर्गाकार आँगन से जुड़ती है । मंदिर का मुख्यद्वार 4.5 फुट चौड़ा तथा 5.5 फुट ऊंचा है । ललाट बिम्ब पर गणपति की

प्रतिमा है। उसके ऊपर एक अस्पष्ट शिलालेख जड़ा हुआ है। मंदिर का निर्माण गारा और ईंट से हुआ है। गर्भगृह के ऊपर एक वर्गाकार कक्ष है जिसकी प्रत्येक बाह्य भुजा 13.5 फुट लम्बी है। वर्गाकार कक्ष के उपर आमलक की वृहद आकृति का गुम्बदीय विमान है। इसके ऊपर अंकित कमलदल के मध्य शिखर स्थापित है। इस कक्ष में एक दरवाजा 2.5 फुट चौड़ा है। गर्भगृह के ऊपरी सिरे पर कमलदल का अंकन है। मूर्तियों में मत्स्यावतार, कलिकावतार, वामनावतार, कृष्णावतार की मूर्तियाँ अंकित हैं।

रोपणगुरु का मंदिर कुकरगांव

यह मंदिर उरई से पश्चिम की ओर 9.5 किलोमीटर की दूरी पर स्थित कुकरगांव में है। यह मंदिर लगभग 300 वर्ष पुराना है। [82] रोपण गुरु का मंदिर तीन मंजिला इमारत है जिसका तल वर्गाकार है। इसकी प्रत्येक भुजा 28 फुट लम्बी है। यह मंदिर वर्गाकार चबूतरे पर स्थित है। इसकी भुजाओं में पाँच-पाँच मेहराबदार दरवाजे स्थित हैं। इनके ऊपर तोड़ निकले हुए हैं। इन तोड़ों के मध्य एक सुन्दर चित्र अंकित है। इस दरवाजे के बाद नीचे गर्भगृह है जो कि 18 फुट वर्गाकार में निर्मित है जिसकी प्रत्येक भुजा 14 फुट है। पूर्वाभिमुख बने इस गर्भगृह में दो दरवाजे हैं, दक्षिणी द्वार वातायननुमा है जो सीढ़ियों से होकर तलघर की ओर जाता है। यहाँ रोपण बाबा की खड़ाऊँ रखी है। दीचार 22 इंच चौड़ी है। दूसरा दरवाजा एक गर्भगृह में है। यहाँ चूने और ईंटों की विभिन्न प्रतिमाएं बनी थीं। आधार तल पर अत्यधिक सुन्दर दरवाजे बने हुए थे जिनकी मेहराब पर सुन्दर बेलबूटे युक्त कलाकारी पच्चीकारी अंकित की गई है जो चूने पर प्लास्टर से उकेरी गई है। दूसरी मंजिल भी वर्गाकार है। प्रत्येक भुजा पर तीन मेहराबी द्वार हैं। तीसरी मंजिल साधारण है, जिसकी प्रत्येक भुजा पर एक-एक

दरवाजा बना हुआ है।

स्थापत्य भवन निर्माण की कला है। स्थापत्य की प्राचीन विधाओं में स्थान निर्धारण का श्रेय शुक्राचार्य के नीति-सार को दिया जा सकता है। जिसमें वर्णित 32 विधाओं में शिल्पकला भी एक विधा है। वास्तुशास्त्र या स्थापत्य शास्त्र भवन निर्माण कला का प्रतिपादक समझा जाता है।

भवन निर्माण या नगर रचना एक प्रकार का सांसारिक कृत्य माना गया है, परन्तु भारतीय संस्कृति में भवन निर्माण भी धार्मिक कृत्य है। उसमें प्रासाद रचना तो पूर्ण रूपेण भारतीय दर्शन का मर्म उद्घाटित करता है। यही कारण है कि यहाँ के मनीषियों ने जहाँ शब्द ब्रह्म की कल्पना करके व्याकरण को दर्शन रूप प्रदान किया है, रस ब्रह्म की कल्पना करके काव्य को लोकोत्तराह्लादजनक बताया और नाद ब्रह्म की कल्पना से संगीत को भी ऐहिलौकिक पृष्ठभूमि से उठाकर पारलौकिक परम रहस्य में परिणत किया उसी प्रकार इष्टका पाषाणमय प्रासाद में पुरुष की कल्पना को स्थायित्व देने के लिए वास्तु ब्रह्मवाद की कल्पना की गई है। प्राचीन मत में तो वास्तु पुरुष मंडल एक यंत्र है जो भवन या प्रासाद का डाइग्राम है। यह यंत्र एक प्रकार की रैखिक रचना है जिसके द्वारा परम सत्ता किसी भी स्थल पर पूजार्थ बांधी जा सके। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे परिमित भूमि अपिरमित विश्व शक्ति में परिवर्तित की जाती है। यह अनाम और अरूप सत्ता जो इस वास्तुमंडल में निरूपित की जाती है उसे वास्तु पुरुष कहते हैं।[83]

भारतीय दर्शन में बिना आध्यात्म से जुड़ा कोई भी विज्ञान जीवन का सहायक नहीं वरन संहारक होता है। वास्तु विद्या के प्रवर्तक स्वयं पुराण पुरुष ब्रह्मा को माना गया है और उनके पुत्र विश्वकर्मा को इस विधा का प्रसारकर्ता।

ऐतिहासिक और तुलनात्मक दृष्टिकोण से वास्तुशास्त्र के निम्नलिखित पाँच प्रमुख विवेच्य एवं प्रतिपाद्य विषय हैं-

1. नगर रचना
2. भवन निर्माण
3. मूर्तिकला
4. चित्रकला
5. यंत्रकला

भवनों को दो मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. धार्मिक भवन
2. धार्मिकेत्तर भवन

धार्मिकेत्तर भवनों में मुख्य रूप से दुर्ग, गढ़ियाँ, द्वार स्थापत्य, बाबड़ी, हवेली आदि आते हैं। भारत में दुर्गों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है । ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है कि पुरन्दर (इन्द्र) के अनार्यों ने दुर्गों को तोड़ा।[84] ऋग्वेद में एक ऐसी जाति का उल्लेख किया गया है जो कि किलेबंदी में रहती थी तथा चुर के नाम से विख्यात थी।

राजधानी की सुरक्षा के लिए नगर और क्षेत्र का दुर्गीकरण किया जाता था। यह किलाबंदी प्राकृतिक और अप्राकृतिक हो सकती है। प्राकृतिक किलेबंदी के अन्तर्गत चार प्रकार के किले आते हैं -

1. औदक दुर्ग
2. पार्वत दुर्ग
3. धन्वदुर्ग

4. वन दुर्ग ।

अप्राकृतिक दुर्गों में चारों तरफ परिखा या खाई का भी निर्माण कराकर उनमें खतरनाक जीव-जन्तुओं को छोड़ दिया जाता है। जनपद जालौन के प्रमुख धर्मेत्तर भवन इस प्रकार हैं -

1. कालपी का किला
2. जगम्मनपुर की गढ़ी
3. रामपुर गढ़ी
4. गोपालपुरा गढ़ी
5. रंगमहल
6. श्री दरवाजा
7. जालौन बाबड़ी
8. हवेली सुभानगुड़ा
9. काली हवेली/ हवेली काली

कालपी का किला

कालपी का किला दक्षिण भारत के प्रवेश द्वार पर अडिग, राजनैतिक एवं सामरिक महत्व का आकर्षण चन्देलों से लेकर प्रथम स्वतंत्रता की अलख जगाने वाली महारानी लक्ष्मीबाई तक की स्मृतियों को अपने हृदय में संजोये, यवन शासकों से अंग्रेजों तक के वज्रघातों और कष्टों को समेटे हुए, अब भी यह किला अपने शौर्य, अपनी प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं का दिगदिगन्त में नाद करता हुआ अडिग खड़ा है।

जनपद के गौरव स्मारक का अवशेष अब केवल एक गुम्बदाकार बुर्ज रह गया है।

बाकी सभी नष्ट और ध्वस्त हो चुका है। किसी की इबारत इस इमारत के सिलसिले में मौजू है कि - 'खण्डहर बता रहे हैं, इमारत बुलन्द थी।'[85] किला यमुनाघाट के ऊपर बना हुआ था। किले से घाट तक पहुँचने के लिए सीढ़ियां थीं। चंदेल शासकों के आठ दुर्गों में कालपी का दुर्ग भी बहुत महत्वपूर्ण था। स्कन्धावार के अतिरिक्त यह प्रमुख व्यापारिक केन्द्र भी था। किले को यहाँ बनवाने का एक प्रमुख कारण यह भी था कि कालपी उत्तर भारत से दक्षिण भारत जाने वाले जल एवं थल रास्तों का संगम था। किले के गुंबज के अतिरिक्त इधर-उधर बनी खाइयाँ दुर्ग के सुदृढ़ीकरण को चिह्नित करती हैं। ख्वाजा इनायत उल्ला के अनुसार 1889 में यह किला अंग्रेजों के आदेशानुसार युद्ध के दौरान सुरंग लगाकर ध्वस्त कर दिया गया। [86]

कालपी किले का यह अवशेष भी मराठों के शासनकाल में राज्य का कोषागार था। यह प्रसिद्ध कोषागार 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों की शरणस्थली था। यहीं झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब पेशवा, तात्या टोपे, कुँअर साहब आदि महान क्रांतिकारियों ने प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को मूर्तरूप देने हेतु मंत्रणा की।[87] 23 अक्टूबर 1806 को बांदा में गोविन्दराव तथा ईस्ट इंडिया के बीच हुई संधि की धारा क्रमांक चार में उल्लेख है कि कंपनी सरकार नाना गोविन्दराव को कालपी शहर, जिला और किले के मूल्य के बराबर इलाका देने को वचनबद्ध है। नाना कालपी शहर, जिला और किले पर से अपना अधिकार त्याग देंगे।[88]

2 जनवरी 1858 को नाना साहब के सेनानायक तात्याटोपे ने बुंदेलखण्ड के सभी राज्यों को अनुरोधपत्र भेजकर अंग्रेजों के विरुद्ध कालपी चलो का आह्वान इसी किले से किया था।[89] कालपी के इस ऐतिहासिक किले को तो अब नष्ट किया जा चुका है, इसके भग्नावशेष की ऊंचाई 80 फीट है। शतरंज की गोट तरह प्रतीत होने

वाले इस दुर्ग की छत चौरस है। केवल एक विशाल गुम्बज बचा है जो मुख्य भवन की छत से 60 फीट ऊंचा है। चारों कोनो पर चार छोटे बुर्ज स्थित हैं। प्रत्येक बुर्ज छत से 40 फीट ऊंचा है।

चंदेलों के दुर्ग की यह गरिमामय स्मृति यमुना के किनारे 120 फीट ऊंची सीधी कगार पर स्थित है। इस दुर्ग की चौड़ाई 40 फीट है। किले की तीन दिशाओं में क्रमश: पूर्व, दक्षिण एवं उत्तर की ओर द्वार हैं। पश्चिम की ओर कोई द्वार नहीं है। किले की गुम्बद में अलंकरण के लिए विकसित पद्म का अलंकरण किया गया है। इस भवन का आंतरिक क्षेत्रफल 107 x 22 फीट है। छत की ऊंचाई 54 फीट है। दरवाजों की दीवारों तथा ऊपरी छत के गोल केन्द्र के मध्य 12 स्थानों पर ताख बने हैं।[90]

जगम्मनपुर की गढ़ी

यमुना के दाहिने किनारे से लगभग चार किलोमीटर दूर बसे जगम्मनपुर ग्राम में यह गढ़ी स्थित है। इसे जगम्मनपुर किले के नाम से जाना जाता है। जगम्मनपुर ग्राम $26^0 25^0$ उत्तर तथा $79^0 15^0$ पूर्व अक्षांश के मध्य बसा है।[91]

यह किला जगम्मनशाह द्वारा सन् 1593 ई. में उस समय बनवाया गया था जब दैव प्रकोपवश उनका कनारा स्थित किला ध्वस्त हो गया। कनारा से उत्तरपूर्व की ओर उन्होंने जगम्मनपुर बसाया।[92] 100 फुट चौड़ी तथा 50 फुट गहरी खाई से युक्त यह किला सात एकड़ क्षेत्र पर स्थित है। वर्तमान में उत्तराभिमुख यह किला पूर्वाभिमुख था। आधार तल तीन मंजिल के ऊपर बने इस भवन के नीचे एक भूमि तल भी है। किले में चार गुम्बजों के अतिरिक्त दक्षिणी दीवारों के मध्य में पाँचवां गुम्बज बना हुआ है। परकोटे के विभिन्न स्थानों में मारें बनी हुई हैं जो सुरक्षा की दृष्टि

से बनाई जाती थीं। इसका विशाल पूर्वी द्वार मेहराबदार है। इसके ऊपर बालकनीनुमा आकृति बनी हुई है। इसके ऊपर ईंट, चूना एवं प्लास्टर से भी मूर्तियों का निर्माण किया गया है। मुख्य दरवाजे लकड़ी से निर्मित हैं। इन पर पीतल से अलंकरण हैं। हाथी की सुरक्षा के लिए इनमें सूजे लगे हुए थे। पतली ईंटों, गारे और चूने की जुड़ाई से बने इस किले में सुन्दर बेलपत्तियों का अलंकरण है। चित्रकला के कुछ नमूने भी यहाँ उपलब्ध हैं।[93]

रामपुरा की गढ़ी

रामपुरा की गढ़ी जिला मुख्यालय उरई से 30 मील उत्तर-पश्चिम $26^0 22^0$ उत्तरी अक्षांश व $74^0 13^0$ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है।[94]

46 ग्रामों की जागीर का मुख्य केन्द्र रामपुरा में स्थित यह गढ़ी निश्चित रूप से एक महत्वपूर्ण पुरातात्त्विक धरोहर है, जो आज तक क्षत्रियों के राजवंशीय कछवाहा जो रामदेव के समकालीन थे, के संघर्ष, साहस और शोर्य का प्रतीक है। यह तत्कालीन भवन निर्माणकला का उत्कृष्ट नमूना प्रदर्शित करता है। कुशवाहा क्षत्रियों की उत्पत्ति महाराज रामचन्द्र के द्वितीय पुत्र कुश से मानी गई है। [95] इन्दुरखी राज्य के जन्मदाता इन्द्रदेव की छठवीं पीढ़ी में रामपाल और भुवनपाल को जागीर मिली तदन्तर रामसिंह (रामशाह) ने अपने नाम से रामपुर बसा कर एक किले का निर्माण किया।

रामपुरा की गढ़ी के चारों ओर 150 फुट चौड़ी और 20 फुट गहरी खाई है। प्रवेशद्वार 20 फुट ऊंचा और पूर्वाभिमुख है। इसके ऊपर एक कोविल विद्यमान है। कुलदेव शिव वहाँ अपने नन्दी के साथ विराजमान हैं। उत्तर दिशा में हनुमान, दक्षिण दिशा में गुप्तेश्वर शिवलिंग स्थापित है। जनश्रुति है कि इसी के नीचे से एक सुरंग

टीहर तक जाती है। मोटी लकड़ी से निर्मित दरवाजे हस्तिमस्तक भेदक कीलों से सुसज्जित हैं। यहाँ दीर्घकालीन भंडारण के साक्ष्य हैं। किले के मुख्यद्वार में प्रवेश करने के बाद परिखा की ओर एक दरवाजा मिलता है। अन्दर प्रवेश करने पर महल की दीवारों की ऊंचाई लगभग 410 फुट है। किले के बाहर एक कमल बुर्ज भी था। कहा जाता है कि तात्या टोपे ने 1857 में तोप का एक गोला इस गढ़ी पर मारा था जिसके कारण वह नष्ट हो गया। इसी वंश के महाराज यशवंत ने इटावा राज्य के अंतर्गत आने वाले भदेख राज्य पर अधिकार के लिए आक्रमण किया, जिसे जीता न जा सका। उरई से 60 किलोमीटर दूर भदेख गांव का उल्लेख अकबर के समय से प्राप्त होता है। भदेख राज्य के रिश्तेदारों ने (भदौरियों ने) रामपुरा पर सात वर्ष तक अधिकार बनाये रखा।[96] 1857 में यह कालपी के 16 महलों में से एक था।[97] यद्यपि विश्वासघात के कारण राजा यशवंत सिंह संग्रामभूमि में ही वीरगति को प्राप्त हो गए थे, परन्तु उन्होंने जिस वीरता से सेंगर राज्य से घोर युद्ध किया वह किसी से छिपा नहीं है। यहाँ पर बने पाँच कुएं भदौरिया शासन के प्रमाण हैं। रामपुरा महाराज ने महाराज जयपुर की मदद से यहाँ पर अधिकार कर पाया।[98] गढ़ी के भीतर महल में स्थित दक्षिणाभिमुखी मंदिर के द्वार पर एक शिलालेख अंकित है। इस शिलालेख में स्पष्ट है कि इस महल की तामीर संवत् 1310 में रामसिंहजू देव द्वारा कराई गई।[99]

गोपालपुरा गढ़ी

गोपालपुरा जागीर $26^0 15^0$ उत्तर एवं $79^0 8^0$ पूर्व अक्षांश पर स्थित है।[100] यह गढ़ी कोंच तहसील में स्थित है। इस स्थान को गुपालकर भी कहते हैं। राजा कृष्णपाल जू देव के अनुसार विक्रमी संवत् 1000 हजार वर्ष से पूर्व इस गोपालपुरा का नाम गोपालगिरि था। इसी गोपालगिरि की किसी सघन वनस्थली में गोपाल

बाबा नाम के एक महात्मा निवास करते थे। इनके नाम पर ही यहाँ का नाम गोपालगिरि पड़ा।[101] गोपालपुरा जागीर की स्थापना लहार (म.प्र.) के राजा रूपपाल सिंह के छोटे पुत्र आलमराव द्वारा की गई।[102] महाराज आलमराव को संवत् 1631 तदनुसार सन् 1574 ई. में जब गोपालपुरा की जागीर प्राप्त हुई तब वे मात्र 19 वर्ष के थे। परन्तु अपनी लगन व निष्ठा से उन्होंने अपने निवास हेतु राजमहल वर्तमान गोपालपुरा की गढ़ी का निर्माण कराया। गोपालपुरा में श्री आलमराव ने सन् 1575 ई. में राज्यावास का निर्माण कराया।[104] राजमाता साहिबा पमारिनजू देव के अनुसार गोपालपुरा गढ़ी के निर्माण में उस समय लगभग 16 हजार चांदी के रुपये व्यय हुए थे। यह गढ़ी 21 माह में बनकर तैयार हुई थी जिसे 50 कारीगरों एवं 150 मजदूरों ने कठिन श्रम करके तैयार किया था।[105]

गोपालपुर की गढ़ी पहूज नदी के किनारे नदी तट से लगभग 150 फुट ऊंची कगार पर उत्तराभिमुख बनी है। पूर्व दिशा में भी एक द्वार है। गढ़ी के दक्षिण भाग में पहूज की खाई है तो पश्चिम भाग भी नदी से आरक्षित है। गढ़ी के दक्षिण एवं पश्चिम में ईंटों से निर्मित बुर्ज हैं जो दिक्प्रहरी की भाँति खड़े प्रतीत होते हैं। गढ़ी के मुख्य द्वार की दीवार 15 फुट चौड़ी है। दरवाजा 12 फुट चौड़ा तथा 15 फुट ऊंचा है। प्रमुख द्वार कंगूरेदार मेहराब से सुसज्जित है। गढ़ी के आंतरिक भाग में प्रवेश करने पर एक खुला स्थान है जिसके मध्य में खुली छत है। तिमंजिले बने इस भवन के निम्नतल पर कभी दरबार हाल रहा होगा। पूर्वी द्वार से प्रवेश करने पर एक पूजागृह था जो अब नष्ट हो चुका है। इस गढ़ी की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है यहाँ का ड्रेनेज सिस्टम या निकास प्रणाली। यह अत्यन्त सुन्दर होने के साथ-साथ वैज्ञानिक भी है। गढ़ी के दानों ओर विशालकाय बुर्ज हैं जो नीचे से चौड़े तथा ऊपर से संकरे हैं। ये

बुर्ज वस्तुतः निरीक्षण चौकी की तरह काम करते होंगे। पहूज नदी से खड़ी चढ़ाई पर अवस्थित यह दुर्ग, दुर्ग निर्माताओं की सूझ-बूझ का ही परिणाम है। इस गढ़ी में पार्वत्य दुर्ग की विशेषताएं पाईं जाती हैं। यहाँ का राजमहल एवं दरबार हॉल दोनों ही दर्शनीय स्थल हैं। गोपालपुरा की गढ़ी ऊसर भूमि में बनी है एवं इसका मार्ग कठिन बना दिया गया है अतः यह एरिण दुर्ग की श्रेणी में आता है।[106]

कालपी का रंगमहल

कालपी के मिर्जामण्डी में स्थित यह रंगमहल अकबर नवरत्नों में से एक बीरबल द्वारा निर्मित कराया गया था। रूपकिशोर टंडन के अनुसार-'अकबर के समय में बीरबल ने कुछ महल अपने रहने के लिए निर्मित कराये थे। इनमें से रंगमहल का कुछ भाग अभी भी बना हुआ है।'[107] प्रो. के.डी. वाजपेयी के अनुसार-'बीरबल का जन्मस्थान कालपी नगर में रंगमहल के नाम से अब भी विद्यमान है।'[108] अकबर के सानिध्य में महेशदास दुबे को बीरबल का नाम दिया गया। अकबर ने उसे कविराय की उपाधि से विभूषित किया।[109] बीरबल को कालिंजर का जागीरदार बनाया गया। इसके पश्चात बीरबल ने अपनी जन्मभूमि कालपी में अपना निवास बनवाया था जिसके भग्नावशेष के रूप में रंगमहल आज भी विद्यमान है।

रंगमहल वस्तुतः सात चौक वाला विशाल महल था। उसने हाथीखाना और घुड़साल का भी निर्माण कराया। जर्जर अवस्था में खड़ा रंगमहल अब बिलकुल ध्वस्त स्थित में है। अब केवल दीवानखाना रह गया है, जिसे देखा जा सकता है।[110] स्थिति कुछ भी हो बीरबल का रंगमहल कालपी के ऐतिहासिक भवनों में से एक है।[111]

श्री दरवाजा

कालपी में बड़े बाजार की पूर्वी सीमा पर श्रीदरवाजा स्थित है , जो राजा श्रीचन्द्र

की शहादत में बना है।[112] यह दर्शनार्थियों को बरबस अपनी ओर खींच लेता है।[113] लोकोक्ति है कि कालपी के अंतिम हिन्दू राजा श्रीचन्द्र मुसलमानों द्वारा पराजित हुए और उनका सिर इस दरवाजे के नीचे गाड़ दिया गया। हिजरी 791 में कालपी के राजा लहरिया उर्फ श्रीचन्द्र जब मुसलमानों से हुए युद्ध में शहीद हुए तब उनके नाम पर इस श्री दरवाजे का निर्माण हुआ।[114] कहा जाता है कि युद्ध में वीरगति को प्राप्त राजा लहरिया श्रीचन्द्र की पटरानी लोढ़ा से राजा श्रीचन्द्र का सिर मांग कर नगर के पश्चिमी भाग में उसे दफनाकर उस पर शानदार दरवाजा बनवाया।[115] डॉ. राजेन्द्र कुमार के अनुसार राजा श्रीचन्द्र सोलहवीं शती के आरम्भ में महमूद लोधी द्वारा मारा गया था। बाद में श्रीचन्द्र के नाम से ही महमूद लोधी ने नगर में एक दरवाजा बनवाया था जो श्री दरवाजे के नाम से आज भी विख्यात है।[116] मुंशी ख्वाजा इनायत उल्ला के अनुसार 791 हिजरी में सुलतान मुहम्मद उर्फ महमूद शाह लोधी ने कालपी शहर में इस आलीशान दरवाजे की नींव डाली।[117] यह श्री दरवाजा कालपी की पूर्वी सीमा पर मेहराबयुक्त दुखी आकृति दर्शाता हुआ बना है।[118] यह विशाल आकृति वाला दरवाजा 36 फुट ऊंचा और 12 फुट चौड़ा है। इसकी दीवारें 14 फुट चौड़ी हैं। द्वार नीचे से ऊपर क्रमशः पतला होता जाता है। द्वार के ऊपर पाँच कंगूरे हैं। इनमें से दो पूर्ण आकृति में नहीं हैं। फाटक के बांयी ओर बने आले में राजा श्रीगुप्त के विश्वस्त अनुचर पूरन कहार को चुनवा दिया गया था।[119] इसी दरवाजे के बगल में शाही मस्जिद है जिसका मुअज्जिन दरवाजे की दीवार से अभी भी अजान देता है। बीच के तीन कंगूरों के बीच ही द्वार आकृति बनी हुई है , यहाँ एक गवाक्ष भी है। इसके नीचे छोटे-छोटे तोड़ों पर एक छज्जा भी निर्मित किया गया है। श्री दरवाजे में लकड़ी के दो विशाल फाटक भी लगे हुए थे। इन्हीं दरवाजों को साधने के लिए पत्थर के गोल

हुक लगे हुए हैं। पूरा दरवाजा पत्थर तथा चूने के संयोग से निर्मित है। इस पर चूने का ही प्लास्टर है।

बाबड़ी जालौन

यह बाबड़ी जालौन नगर के उत्तरी पश्चिमी सीमा में लक्ष्मीनारायण मंदिर के पश्चिम में स्थित है। सम्वत् 1623 में इस बाबड़ी का निर्माण श्री गोविन्दराव बुन्देला (खैर) द्वारा कराया गया था।[120] यह बाबड़ी 143 फुट लम्बी तथा 8 फुट 3 इंच चौड़ी है। पूर्व दिशा में एक कुआं बना है जिसका व्यास 22 फुट है। बाबड़ी और कुओं के संधिस्थल पर एक आयताकार कक्ष बना हुआ है जिसमें कमल और कलश का अलंकरण है। कुएं के बगल से होकर सीढ़ियों द्वारा नीचे जाया जाता है। बाबड़ी के पश्चिम में जलस्तर के बाद विशाल रूप से लम्बी और चौड़ी सीढ़ियाँ बनी हैं तथा आयताकार कक्ष के 18 फुट पश्चिम की ओर बाबड़ी के मध्य एक द्वार है। कुल मिलाकर इस बाबड़ी में तीन तल बने हुए हैं। इस बाबड़ी का निर्माण पतली ईंटों से किया गया है जिसकी माप 9 X 7.5 इंच है।

कालपी हवेली सुभानगुंडा

कालपी किले के आगे मुहल्ला हरीगंज में ही सुभानगुंडा की हवेली है। इस भवन का निर्माण शेख अहमद नागोरी द्वारा किया गया था। किसी समय में यहाँ एक किला था जो अब टीले की शक्लमात्र रह गया है। पत्थर चूने तथा पक्के फर्श इस बात के साक्षी हैं कि यह इमारत काफी पुरानी है। अब मात्र दो कुएं हैं और तीन गुम्बद वाली एक मस्जिद। यह मस्जिद महमूद शाह लोदी के समय ही निर्मित हुई थी। कहा जाता है जो कारीगर हवेली का निर्माण कर रहे थे उन्होंने ही दिन के वक्त चौरासी गुम्बज का निर्माण किया था। रात्रि में कार्य के कारण ऊंघते थे, नाराज होकर

उसने शहर में मिट्टी के तेल की बिक्री पर पाबन्दी लगा दी जिससे हवेली का कार्य रोशनी की कमी के कारण रुक सके, लेकिन शेख साहब ठहरे खुदा के नेक बन्दे सो उनके वज़ू के पानी से ही दीपक और मशालें रोशन हो उठतीं थीं।

इसी कारण मेहमूद इतना प्रभावित हुआ कि वह शेख अहमद नागोरी का मुरीद हो गया। शेख साहब ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती के शिष्य थे। शहर कालपी के बंदोबस्त में प्लाट संख्या 49/1.80 पर यह हवेली स्थित है। 80 X 200 फुट की जगह इस हवेली के नाम थी।

सुभानगुण्डा के नाम से जानी जाने वाली हवेली 66 X 222 फुट के क्षेत्र में बनी हुई है। मध्य गुम्बद की आकृति विशाल है तथा अन्य दो की छोटी। गुम्बदों के ऊपरी सिरे पर कमलदल के अलंकरण हैं जो हिन्दू शैली की विशेषता हैं। कमलदल के ऊपर अभी भी कमल के अवशेष पाये जाते हैं। सभी गुम्बद अष्टभुजी आधार पर बने हैं। पूरा भवन पूर्वाभिमुख है। मध्य गुम्बद के नीचे वर्गाकार कक्ष है। मध्यकक्ष के ऊपर बाहर चारों कोनों पर छोटी-छोटी मीनारें स्थित हैं। मेहराब के ऊपरी भाग में 16 ताखे बने हुए हैं। मध्य विशाल कक्ष के दोनों ओर बने कक्ष अपेक्षाकृत छोटे हैं। दो मेहराब के मध्य एक आला स्थित है। अन्दर से तीनों कक्ष एक-दूसरे से मिले हुए हैं। इनके सभी खम्भे मेहराबदार हैं। इन खम्भों पर अष्टकोणीय अलंकरण बने हुए हैं। प्रत्येक भुजा पर एक-एक मेहराब का अंकन है। इस भवन के तीनों कक्षों में ज्यामितीय वर्गाकृतियाँ बनी हुई हैं जो कालपी किले के अलंकरण से मिलती-जुलती हैं। 80 फुट की दूरी पर एक कुएं का निर्माण भी है। यह ऊपर से वर्गाकृत और नीचे की ओर गोल है। ऊपर प्रत्येक कोण पर एक-एक मेहराब है जो हवेली से मेल खाती है। हवेली के नीचे सात कक्ष भी हैं जिनमें से मध्य का कक्ष मेहराबयुक्त द्वार वाला

है। इस कक्ष की उत्तरी दिशा में बैठने का स्थान भी बना हुआ है। इसके नीचे भी एक तलघर खण्ड होना बताया जाता है। छोटी मीनारें ऊंची गुम्बद पूर्व मुगल स्थापत्य की विशेषताएँ हैं। आंतरिक दृष्टि से कक्षों की जुड़ाई-भराई चन्देल कालीन स्थापत्य को दर्शाती है। सुभानगुण्डा की यह हवेली मुस्लिम वक्फ में 59 जालौन के नाम से दर्ज है। पूरा भवन चूना और पत्थर से निर्मित है।

काली हवेली

महमूद मुहल्ला कालपी में काली हवेली स्थित है। यह मुहल्ला कालपी के प्राचीन 52 मुहल्लों में से एक है। वर्तमान रूप में यह हवेली इमामबाड़े की तरह प्रयुक्त की जाती है। शहीदों की हवेली, बागी हवेली, आधी हवेली आदि उपनामों से जानी जाने वाली यह हवेली न जाने किन प्रकोपों के कारण पूरी न हो सकी। आज भी छत पर उल्टे पड़े चूने भरे तसलों के प्रमाण देखे जा सकते हैं। यह काली हवेली नसीरुद्दीन वल्द अहमद बख्श के नाम नगर पालिका कालपी के कागजातों में दर्ज है। यह इमामबाड़ा जैसी जगह है जहाँ पर अलम आदि रखे जाते हैं। आज भी काली हवेली के नाम से अलम उठाये जाते हैं।

यह पूरी हवेली 100 फीट के क्षेत्र में बनी है। भग्नावशेषों के आधार पर यह एल आकार में बनी हुई हवेली थी। पँक्तियों में कमरे बने हुए हैं। कमरे की छत गोल न होकर सीधी है जिसे पतली ईटों से और चूना गारे से बनाया गया है। हवेली की दीवारें चूने और पत्थर से निर्मित हैं। दीवारें ढाई-ढाई फुट चौड़ी हैं। भीतरी कमरे के बाहर ऊपरी छतों से ढंका बरामदा है। इस हवेली में बलुआ पत्थरों का प्रयोग किया गया। बरामदा बारह खम्भों पर आधारित है। हवेली चार मंजिल की थी। प्रत्येक मंजिल पर पहुँचने के लिए सीढ़ियों की व्यवस्था थी। यहाँ पर लाल बलुआ पत्थर से

ही तीन मेहराबदार दरवाजे बने हुए हैं जिनकी पच्चीकारी अत्यधिक सुन्दर है। बेलबूटों एवं कमलाकृति से अंकित इन पत्थरों को लोहे की क्लिपों द्वारा जोड़ा गया है। पानी के निकलने और रोशनदानों की बहुतायत देखकर कहा जा सकता है कि हवेली निश्चत रूप से वातानुकूलित रही होगी। स्थान-स्थान पर बेलबूटों से अंकित लाल बलुआ पत्थरों के मेहराबयुक्त स्तम्भ पाये गये। वास्तुशिल्प देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह हवेली मुस्लिम स्थापत्य से कहीं अधिक हिन्दू शैली से प्रभावित रही होगी।

सन्दर्भ सूची

1. प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर : प्रो. डॉ. वासुदेव उपाध्याय , पृ. 50

2. भारतीय स्थापत्य : डॉ. डी.एन. शुक्ल,पृ. 255

3. स्टडी ऑफ इंडियन सिविलाइजेशन : हैवेल

4. हिस्ट्री ऑफ इंडियन एण्ड ईस्टर्न आर्किटेक्चर : फर्ग्यूनस एवं बर्जेस ,पृ. 48

5. भारतीय स्थापत्य : डॉ. द्विजेन्द्र नारायण शुक्ल ,पृ. 217

6. ग्लिम्पसेज ऑफ प्रेक्टीकल वास्तु : बी.एन. रेड्डी, पृ. 39

7. प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर : प्रो. डॉ. वासुदेव उपाध्याय ,

8. बुन्देलखण्ड का पुरातत्त्व : एस.डी. त्रिवेदी, पृ. 39

9. तदैव , पृ. 37

10. हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्य कला शैली : कादरी असगर अली, पृ. 112

11. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ.239

12. हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्य कला शैली : कादरी असगर अली, पृ. 95-97

13. बुन्देलखण्ड का पुरातत्त्व : एस.डी. त्रिवेदी, पृ. 124

14. हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्य कला शैली : कादरी असगर अली, पृ. 112

15. जलौन गजेटियर : ब्रोकमेन , पृ. 154

16. शब्द सागर : सं. श्यामसुन्दर दास , पृ. 2490

17. जालौन गजेटियर : ब्रोकमेन , पृ. 146

18. प्रणाम विलास , पृ. 25-26

19. ब्राह्मण पुराण (चतुर्थ अध्याय), पृ. 29

20. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ.120

21. मंदिर में लगे शिलालेख का अवलोकन

22. प्रणाम विलास, पृ. 25

23. कालपी कीर्ति अंक : मोतीलाल शर्मा , पृ. 48

24. जालौन गजेटियर : ब्रोकमेन , पृ. 188

25. कल्याण तीर्थांक वर्ष 1957 : गिरधारी लाल , पृ. 113
26. कल्याण पुराण कथाँक , पृ. 333
27. समारोह पत्रिका (जनपद जालौन) : डॉ. हरिमोहन पुरवार , पृ. 8
28. सांस्कृतिक धरोहर : अर्जुन , पृ. 13
29. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ.134
30. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ.137
31. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ.138
32. युगों-युगों में कालपी : प्रो. के.डी. वाजपेयी , पृ. 8
33. जालौन गजेटियर : ब्रोकमेन , पृ.163
34. रिपोर्ट ऑफ अ टूर इन बुन्देलखण्ड एण्ड रीवा (1883-84) : कनिंघम , पृ. 132
35. पुरातन गाथाओं का शहर : डॉ. राजेन्द्र कुमार , पृ. 5
36. कालपी महात्म्य : रूप किशोर टण्डन , पृ. 63
37. कालपी शरीफ़ के ओलिया इकराम : रहीम बख्श सिद्दीकी , पृ. 64
38. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ.140
39. सांस्कृतिक धरोहर - जनपद जालौन : अर्जुनसिंह , पृ. 10
40. कालपी महात्म्य : रूपकिशोर टण्डन , पृ. 27
41. कालपी शरीफ़ के औलिया इकराम : रहीम बख्श सिद्दीकी , पृ. 62
42. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ.146
43. कालपी महात्म्य : रूपकिशोर टंडन , पृ. 28
44. कालपी कीर्ति अंकन : प्रतापनारायण , पृ. 24
45. शिलालेख पाहूलाल मंदिर का अभिलेख
46. युगों-युगों में कालपी : डॉ. के.डी.वाजपेयी , पृ. 141
47. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ.149

48. जालौन गजेटियर : ब्रोकमेन

49. प्रतिमा पर अंकित लेख

50. कालपी महात्म्य : रूपकिशोर टंडन , पृ. 67

51. कालपी क्षेत्र के प्राचीन मंदिर एवं स्मारक : प्रताप नारायण पाण्डे , पृ. 80

52. तदैव , पृ. 81

53. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ.155

54. कालपी क्षेत्र के प्राचीन मंदिर एवं स्मारक : प्रताप नारायण पाण्डे , पृ. 80

55. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ.155

56. तदैव , पृ. 156

57. कालपी क्षेत्र के प्राचीन मंदिर एवं स्मारक : प्रताप नारायण पाण्डे , पृ. 78

58. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ.157

59. तदैव , पृ. 8

60. तीर्थभूमि कालपी : बिन्देदीन पाठक , पृ. 14

61. मंदिर में लगा सूचना पट

62. जालौन गजेटियर : ब्रोकमेन , पृ. 157

63. कालपी महात्म्य : रूपकिशोर टंडन , पृ. 27

64. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ. 161

65. तदैव , पृ.166

66. क्रौंच रश्मि , पृ. 64

67. जालौन जनपद की हृदय स्थली : मु. नईम बॉबी , दैनिक दीवान (17.7.1995)

68. दैनिक मध्यदेश : अयोध्या प्रसाद कुमुद

69. जालौन जनपद की हृदय स्थली : मु. नईम बॉबी , दैनिक दीवान (17.7.1995)

70. कोंच की साम्प्रदायिक सम्पदा : डॉ. राम संजीवन शुक्ला (दैनिक दीवान, उरई)

71. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ. 179

72. तदैव , पृ. 182
73. भारतीय स्थापत्य : वासुदेव शरण अग्रवाल , पृ. 220
74. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ. 187
75. लोकमंगल : सं. राजाराम पाण्डेय
76. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ. 216
77. 1857 का स्वतंत्रता संग्राम और जनपद जालौन : के.डी. सिंह , पृ. 25
78. कला और कलम : गिर्राज किशोर , पृ. 69
79. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ. 216
80. भारतीय स्थापत्य : प्रो. वासुदेव शरण अग्रवाल , पृ. 36
81. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ. 222
82. तदैव , पृ. 223
83. भारतीय स्थापत्य : डॉ. डी. एन. शुक्ल
84. भारतीय मूर्तिकला : डॉ. आर. एन. मिश्रा
85. कालपी कीर्ति अंक : श्रवण सिंह सेंगर , पृ. 54
86. आईना-ए-कालपी : मुंशी इनायत उल्ला , पृ 75
87. सा. लोकसेवा : अखिलेश विद्यार्थी , पृ. 8
88. ट्रीटीज इंगेजमेन्ट एण्ड सनद रिलेटिंग टू इंडिया एण्ड नेबरिंग कन्ट्रीज, भाग-3 : सी. यू. एचीसन , पृ. 342
89. बुन्देलखण्ड दर्शन : मोतीलाल अशान्त , पृ. 184
90. चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास : डॉ. अयोध्या प्रसाद पाण्डेय , पृ. 217
91. जालौन गजेटियर : ब्रोकमेन , पृ. 150
92. ए ब्रीफ अकउन्ट ऑफ जगम्मनपुर , पृ. 4
93. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ. 87
94. जालौन गजेटियर : ब्रोकमेन , पृ. 189

95. जालौन गजेटियर : ब्रोकमेन , पृ. 190
96. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ. 90
97. 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम और जनपद जालौन : डी. के. सिंह, पृ.71
98. रामपुर राज्य का इतिहास : रसूल अहमद सागर , पृ. 11-12
99. रामपुर गढ़ी का शिलालेख
100. जालौन गजेटियर : ब्रोकमेन
101. बुन्देलखण्ड का इतिहास : दीवान प्रतिपाल सिंह , पृ. 4
102. तदैव , पृ. 137
103. कुश राजवंश प्रदीप : राजा कृष्णपालजू देव , पृ. 183
104. तदैव , पृ. 215
105. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरि मोहन पुरवार , पृ. 12
106. हिन्दू राजशास्त्र : अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, पृ. 78
107. कालपी महात्म्य : रूपकिशोर टंडन , पृ. 37
108. युगों-युगों में कालपी : डॉ. के.डी. वाजपेयी, पृ. 142
109. कालपी महात्म्य : रूपकिशोर टंडन , पृ. 37
110. डायरी (उ.प्र. के सूचना विभाग द्वारा 1954 में प्रकाशित)
111. आईने-अकबरी : अनुवादक -ब्लॉकमेन , पृ. 442
112. जालौन गजेटियर : ब्रोकमेन
113. काली शोध केन्द्र स्मारिका : डॉ. हरिमोहन पुरवार , पृ. 8
114. दैनिक कर्मयुग प्रकाश : डॉ. राजेन्द्र कुमार , पृ. 3
115. सांस्कृतिक धरोहर जनपद जालौन (1993-1994), पृ. 13
116. दैनिक कर्मयुग प्रकाश
117. आईना-ए-कालपी : मुंशी इनायत उल्ला , पृ. 76
118. जालौन गजेटियर : ब्रोकमेन , पृ. 159
119. दैनिक कर्मयुग प्रकाश : राजेन्द्र कुमार , पृ. 3
120. लोक संगम वर्ष 1971-1972 : मुंशी सहाय श्रीवास्तव

षष्ठ अध्याय

जनपद जालौन में उपलब्ध मुद्राएँ

अध्याय- 6
उपलब्ध मुद्राएँ

मनुष्य की उत्पत्ति के समय उसकी सभी आवश्यकताएँ सीमित थीं। रहने, खाने-पहनने की सभी आवश्यकताएँ प्रकृति के अनुग्रह से पूरी होती थीं। प्रकृति ने रहने के लिए गुफाएँ-वृक्ष दिये तो खाने के लिए फल और जानवर तथा पहनने के लिए वृक्षों की छाल और जानवरों की खाल। धीरे-धीरे रहन-सहन में स्थायित्व आया। मनुष्य आखेटक से संग्राहक प्रवृत्ति की ओर बढ़ा, इसके बाद खाद्य उत्पादन की ओर प्रवृत्त हुआ। अभी तक तो प्रत्येक जत्थे के लोगों को अपने क्षेत्र पर अधिकार का भी भान होने लगा। धीरे-धीरे समूहों के मध्य सम्पर्क बढ़ा। इस प्रकार लोगों के बीच वस्तुओं के आदान-प्रदान की भावना का उदय हुआ।[1]

कुछ समय बाद वे वस्तुएँ जिनका प्रयोग सभी के लिए आवश्यक था, विनिमय का साधन बन गईं, जैसे ऋग्वेद के एक सूत्र में इन्द्र की एक मूर्ति का मूल्य गायों में निश्चित किया गया।[2] सैनिकों ने घोड़ों में मूल्य निर्धारण किया तो शिकारियों ने पशुओं की खालों में। किन्तु इन वस्तुओं में समानता न होने के कारण इनका मूल्य भी एक नहीं हो सकता था।[3] इसीलिए विनिमय के ये साधन पूर्णतः सफल नहीं हुए। मुद्राओं के अभाव में यह कार्य धातु की सलाखों और धातु आकृतियों ने सम्पन्न किया।

हड़प्पा सभयता से प्राप्त लगभग दो हजार मुहरों को मुद्रा भी माना गया है।

संभवत: यह विनिमय के लिए प्रयुक्त होती होंगी। सिंधु सभ्यता की मुहरों पर अंकित लिपि पढ़ी नहीं जा सकी है इसलिए यह किस प्रकार से काम में आती होंगी इस बारे में कोई निश्चित राय नहीं बन सकी है।

ऋग्वेदिक काल में आर्यों का जीवन कबाइली शैली का था। पशुपालन उनका प्रमुख उद्यम था। वस्तु-विनिमय के अतिरिक्त सोने, चाँदी और ताम्र धातु का प्रयोग किया जाता था। निष्क प्रारम्भ में स्वर्णहार था।[4] बाद में यह सिक्के या मुद्रा के रूप में उल्लेखित हुआ। ऋग्वेद में एक स्थान पर वर्णन आता है कि एक गायक को एक सौ निष्क एवं एक सौ घोड़े पुरस्कार में मिले।[5]

रामायण काल में विश्वामित्र वशिष्ठ को उनकी प्रसिद्ध गाय नन्दिनी के बदले में एक लाख साधारण गाय देने को तैयार थे।[6] इस काल की सर्वाधिक प्रचलित मुद्रा निष्क थी। पूर्व मौर्यकाल अर्थात 600 ई.पू. से मौर्यकाल तक प्रयुक्त होने वाली मुद्राओं में निष्क, सुवर्णकास, पाद, मासक, काकणिक एवं कार्षापण नामक सिक्कों का उल्लेख मिलता है , किन्तु इनका मूल्य सब प्रदेशों में एक सा नहीं था।

ए.एल.वाशम के अनुसार आयताकार या वृत्ताकार धातु के टुकड़ों का प्रयोग ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। इनकी निश्चित तौल थी और इन पर अनेक प्रकार के चिह्न अंकित थे, जैसे- सूर्य, पर्वत, वृक्ष, वृक्ष की शाखायें, मानव, खरगोश, कुत्ता, बिच्छू, सांप आदि की आकृतियाँ ठप्पा मार कर खोदी जातीं थीं। इन्हें आहत सिक्के कहते हैं। संभवत: यह आकृतियाँ धार्मिक क्रियाओं में पूज्य समझी जाती थीं।[7]

रैप्सन के अनुसार ईरानी सम्राट दारा के सिगलोई नामक सिक्के ईसापूर्व 500 से

330 तक प्रचलित रहे। इन पर भी उस प्रकार के चिह्न मिलते हैं जैसे भारतीय आहत सिक्कों पर हैं। सिगलोई और भारतीय सिक्के बिलकुल एक जैसे हैं।[8]

लेकिन डी. कौसाम्बी तथा दुर्गाप्रसाद रैप्सन के उक्त मत से सहमत नहीं हैं। क्योंकि जिन तक्षशिला के सिक्कों पर इस बहस की शुरूआत हुई थी वे सिक्के पूर्णत: भारतीय थे और संभवत: ये शतमान थे। इन पर विदेशी प्रभाव की कोई संभावना प्रतीत नहीं होती।[9]

सिक्कों के अर्थ को समीकृत करते हुए पाउचर बताते हैं कि आहत सिक्कों पर हाथी और सांड़ यह प्रकट करते हैं मौर्य वंश का बौद्ध धर्म से घनिष्ठ संबंध था। जंगले का वृक्ष सम्बोधि का प्रतीक है।[10]

आहत सिक्कों को धातु की अधिकर्णी (निहाई) पर रखकर मुष्टिक हथोड़े से पीटा जाता था। बाद में संदश (कतरनी) से उसके टुकड़े बनाये जाते थे और अंत में इन टुकड़ों पर बिम्ब टंक से छाप लगाई जाती थी।[11] निर्माण की इस पद्धति के आधार पर मुद्रा तत्वविदों ने इन सिक्कों को आहत मुद्रा का नाम दिया। आहत मुद्राओं के ठप्पे पर लेख न होकर मात्र प्रतीक ही थे। इन चिह्नों की संख्या शताधिक है। ध्यान से सिक्कों को देखने पर ज्ञात होता है कि लांछनों का प्रयोग किसी निश्चित व्यवस्था के अनुसार किया गया है।

पहले सिक्के मूलत: एक ओर ही टंकित किये जाते थे। यह सिक्के का चित्त भाग होता है। दूसरा भाग एकदम सादा होता था। कुछ समय बाद दूसरी ओर भी सिक्कों को अंकित किया जाने लगा। ये प्राचीन कालीन आहत मुद्राएं बड़ी मात्रा में देश के सभी भागों में मिलती हैं। इन्हें महाजनपदों में प्रचलित किया था। ये आहत

मुद्राएं चांदी और तांबे के पत्रों पर अंकित होती थीं। यह कहना अभी भी असंभव है कि ये सिक्के इन जनपदों में से किसने प्रारम्भ किये।

प्रत्येक जनपद के सिक्कों की बनावट, आकृति, वजन, धातु स्वरूप और उन पर अंकित लक्षण एक-दूसरे से भिन्न पाये गये हैं। अश्मक के सिक्के मोटे, गोल और अण्डाकार हैं तथा कटोरी की तरह गहराई लिये हुए हैं। सुराष्ट्र के सिक्के आकार में छोटे और पतले हैं। पांचाल सिक्कों के प्रमुख लांछन मत्स्य, वृष, हाथी सवार सहित या रहित हैं। सूरसेन के सिक्कों पर बिल्ली या सिंह की आकृति है। गांधार के सिक्के बिलकुल अलग हैं। ये एक से पौने दो इंच लम्बे वर्तुलाकार शलाका सरीखे हैं। इस प्रकार के बने टुकड़ों के दोनों सिरों पर एक ही लांछन टांक दिया जाता था। वत्स, काशी, कौशल, मगध, कलिंग, आन्ध्र के सिक्कों पर चार-चार लांछन अंकित हैं।

वत्स जनपद के सिक्कों पर ज्यामितीय आकार, पशु, चक्र, वृश्चिक आदि की आकृतियाँ अंकित हैं।[12] अवन्ति के सिक्कों का कोई निश्चित प्रारूप नहीं है - "The Avanti coins are thin metal pieces of irregular shap about 50 grain in weight."[13]

मगध के सिक्कों के प्रमुख लांछन हैं वृत्त, चक्र, सूर्य, मानव, वृष, हाथी, मृग, गैंडा, मछली, कछुआ, पक्षी आदि। इन सिक्कों पर पाँच लक्षणों का एक समूह है।

चांदी की मुद्राओं का बनना ईसापूर्व की द्वितीय शती में बन्द कर दिया गया था। किन्तु इनका चलन अगले पांच सौ वर्षों तक बना रहा। गुप्तों के उदय तक चाँदी के सिक्के प्राप्त नहीं होते। आहत मुद्रा की छाप से युक्त एक सांचा एरण से मिला है।

कौटिल्य के उल्लेख से प्राप्त होता है कि उस समय तांबे की मुद्रा का प्रचलन था। अधिकारियों को पण (जो चांदी की मुद्रा थी) द्वारा वेतन दिया जाता था।[14] फाह्यान बताता है कि मौर्यकाल में लेन-देन कोड़ियों के द्वारा होता था।[15]

सोने के सिक्के का प्रचलन कदाचित् इसी काल में हुआ था। इन इंडो-ग्रीक सिक्कों पर दोनों ओर सिक्कों का अंकन पाया जाता है। उन पर एक ओर ऊर्ध्वांग छवि है। इन राजाकृतियों ने टोप धारण कर रखा है या फिर खुले केशों पर फीता बांध रखा है। कुछ सिक्कों (दिमित्र के) पर हस्तिमुण्ड का अंकन है।[16]

" The Indo Bactrian rulers issued coins by die striking tichnique which was perhaps earlier unknown in India."[17]

इन इण्डो-ग्रीक राजाओं के सिक्कों पर एक विशेषता अभिलेखों के अंकन की है। समझा जाता है कि यह भारत के लिए सर्वथा नई बात थी।

द्विभाषीय इन सिक्कों पर ग्रीक और खरोष्ठि लिपि में अंकन पाये गए। ई.पू. की दूसरी सदी से यू ची नामक एक कबीले वालों ने बैक्ट्रिया में प्रवेश लिया। उसके बाद क्यू शुआंग के सरदार ने अफगानिस्तान, गांधार और स्वानकांठे पर अधिकार किया।[18]

चीनी इतिहासकार स्यूमा चियन के अनुसार एक नेता कुजुल कउफिसस ने पांच विभिन्न कबायली समुदायों को अपने कुई शाग अथवा कुषाण समुदाय की अध्यक्षता में संगठित किया और भारत की ओर बढ़ा जहाँ उसने काबुल और कश्मीर में अपनी सत्ता स्थापित की। उसके प्रारम्भिक सिक्कों पर मुख भाग पर अंतिम यूनानी राजा हर्मियस की आकृति है और पृष्ठ पर स्वयं उसकी। इसका अर्थ

है कि पहले वह यूनानी राजा हर्मियस के आधीन था।

विम ने सोने और तांबे के सिक्कों में महाराज राजाधिराज महीश्वर सर्वलोकेश्वर आदि विरुद धारण किया, उसके सिक्के भी द्विभाषी है।[19] विम इन द्विभाषीय सिक्कों का अंतिम प्रयोगकर्ता था।

कनिष्क का शासन भारत में मगध तक और मालवा प्रांत तक विस्तृत था। कनिष्क ने विम की तरह ही सिक्के चलाये। उसने भी सोने और तांबे का प्रयोग किया। कनिष्क का अंकन एक ही वेशभूषा में मिलता है। लम्बा कोट, सलवार, कमरबन्द, गोलटोपी, हाथ में माला लिये हुए हवनकुण्ड में आहुति डालता दिखाई पड़ता है। इसके बाद हुविष्क आदि के सिक्के प्राप्त होते हैं। इनके सिक्कों पर बहुसंख्यक देवी-देवताओं के चित्र प्राप्त होते हैं।

गणराज्यों और जनपदों के सिक्के तांबे के मिलते हैं। विदिशा, एरण से शुंग शासकों के सिक्के, पद्मावती आदि से नाग राजाओं के ताम्र सिक्के मिलते हैं। नाग शासकों के ये सिक्के आकार में असाधारण रूप में छोटे हैं और वजन में 8, 18, 36 ग्रेन के हैं।

शुंगों, कण्वों के बाद सातवाहन शासक उभरे। इन्होंने तांबे, सोने और सीसे के सिक्के चलाए। इनके प्रमुख लक्षण षटचक्र, चक्र, मेरु, अश्व, पोत आदि के अंकन प्राप्त होते हैं।

चौथी शती में गुप्त वंश के उदय के साथ ही सिक्कों की सुन्दर परम्परा प्रारम्भ हुई है। पहला गुप्तकालीन सिक्का लिच्छिव राजकुमारी और चन्द्रगुप्त युक्त है, जिस पर लिच्छवय: अंकित है। इन शासकों ने अपने चांदी, सोने, तांबे और सीसे के

सिक्के प्रचलित किये थे। सोने के सिक्के सवार्धिक मात्रा में उपलब्ध हैं। चांदी के सिक्के अपेक्षाकृत कम मात्रा में मिलते हैं। राजाओं की विभिन्न आकृतियों के साथ राजलांछन (गरुड़ ध्वज) का अंकन है। इन सिक्कों के पृष्ठभाग में देव की आकृति अंकित मिलती है।

"On the reverse of all coin the goddess is shove either sitting or standing. the goddess on these coins originated from the Kushan Ardoksho as referred to earlier and took the porm of the Indian goddess Lakshmi. But not on all coins she is depicted as Lakshmi. On some coins where she is seen riding a lion. She may be identified as Durga. Similarly where she is seen standing over a makar (Crocodile). She may be Ganga. On some coin the female on reverse is seen seated in Profile on a wicker-stoot. Divinity in profile is unknown elsewhere in Indian art tradition. On a type of coin of Kumara Gupta Ist, the god kumar(Kartikeya) is shown seatid on his peacock."[20]

गुप्त सिक्कों पर प्राप्त होने वाले अभिलेख भी भिन्नता वाले प्राप्त होते हैं। इन पर सम्राट की प्रशंसा में अंकित किये जाने वाले विरुद हैं। समुद्रगुप्त के सिक्कों पर छह अलग-अलग लेख मिलते हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय के सिक्कों पर दस तो कुमारगुप्त के सिक्कों पर 24 प्रकार के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

चांदी के सिक्कों के प्रचलन में विवाद है। सामान्यत: इनकी शुरूआत चन्द्रगुप्त

द्वितीय के समय से मानी जाती है- "No silver coin of the early Gupta rulers are knnow. These were introduced for the first time in the reign of Chandra Gupta II. Sometime after the gupta year go when he come into contact with the Malwa region.[21]

उल्लेखनीय है कि हाल ही में इस प्रकार का एक चांदी का सिक्का भी प्रकाश में आया है। सिक्के की बनावट तथा आकार-प्रकार स्वर्णमुद्रा जैसा ही है। यदि यह स्वीकार कर लिया जाये तो हमें यह मान लेना पड़ेगा कि गुप्तवंश में सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त प्रथम ने ही रजतमुद्राओं का प्रचलन करवाया था न कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने, जैसा कि अभी तक माना जाता रहा है।

वैसे गुप्त सम्राटों के सोने और चांदी के सिक्कों के अनेक संचय मिलते हैं। इसका कारण यह है कि सिक्कों का उपयोग मनुष्य द्वारा धनसंचय के लिए किया जाता है क्योंकि इनके शीघ्र ही नष्ट होने की संभावना नहीं रहती है। गुप्त सम्राटों के सिक्कों के अभी तक 16 संचय मिले हैं। इनके अतिरिक्त जो गुप्त सम्राटों के सिक्के मिले थे उन्हें पाने वालों ने पिघलाकर सोना बना लिया था। यहाँ तक कि ईस्ट इंडिया कंपनी ने भी फालीघाट से प्राप्त सिक्कों के संचय का सोना बना लिया।[22]

चांदी के सिक्के आकृति और वजन में शकों के सिक्कों के अनुरूप हैं। कुमारगुप्त प्रथम के सिक्के ऐसे मिले हैं जिनमें नीचे तांबा है, ऊपर से चांदी का खोल चढ़ा है। स्मिथ का मत है कि पिछले गुप्त सम्राटों ने इस प्रकार के सिक्के इसीलिए चलाये थे क्योंकि उनके पास पर्याप्त मात्रा में चांदी नहीं थी।[23]

गुप्त सम्राटों ने तांबे के सिक्के भी चलाये थे। समुद्रगुप्त ने इनका प्रचलन प्रारम्भ किया था। गुप्तकाल की विशेषता है कि सोने-चांदी के सिक्के केवल बड़े व्यापार में प्रयोग में लाये जाने लगे।[24] छोटा व्यापार कौड़ियों से होता रहा। भू-खण्ड खरीदने में दीनार का प्रयोग पहले की भाँति होता रहा।[25]

ईसा की छठवीं और सातवीं शताब्दी के अनेक सोने के सिक्के प्राप्त हुए हैं। ये सिक्के उत्तर भारत में मिले हैं। हर्ष, बंगाल के जयनाग शशांक के सोने के सिक्के प्राप्त हुए हैं। शशांक ने चांदी के सिक्के नहीं चलाए।[26]

पूर्व मध्यकाल में शासकों ने चांदी और तांबे की मिश्रित धातु के सिक्के चलाए परन्तु उनमें न तो वजन एक जैसा है और न ही शुद्धता। सेन शासकों ने कपर्दक और पुराण का प्रयोग किया। डाहल के कल्चुरि शासक गांगेयदेव ने गुप्त सम्राटों के अनुरूप सीसे के सिक्के चलाये। दक्षिण के चालुक्यों ने सोने के सिक्के चलाये जो पद्मढंक कहलाये। जेजाकमुक्ति के चन्देलों ने कल्चुरी गांगेयदेव की नकल पर सिक्के चलाये। इन सिक्कों के पृष्ठभाग पर लक्ष्मी की आकृति बनी हुई है।[27]

प्राचीन भारत के सिक्कों के अतिरिक्त सल्तनत और मुगलकालीन सिक्कों पर दोनों तरफ अरबी या फारसी में अंकन होते थे। शासक के नाम और कुछ सिक्कों पर वर्ष के कारण ये सिक्के विशेष महत्व रखते हैं। बाद के सिक्कों पर कलमा अंकित मिलता है। "The Kaling was used on the coins but not so zeatuesly."[28]

712 ई. में कासिम ने सिंध पर आक्रमण किया। उसने कुछ सिक्के चलवाए जो राजस्थान और राजस्ताव में पाये गए। 1007 ई. में महमूद गजनवी ने भारत में

किये गए जेहाद की स्मृति में सोने के सिक्के चलाए। तराइन के द्वितीय युद्ध में विजय के बाद मुहम्मद गौरी ने सोने के सिक्के चलवाए। उसके सेनानायक विनवख्तियार खिलजी ने भी अपने मालिक के प्रति स्वामिभक्ति दर्शाने के लिए स्वर्ण सिक्के निकाले। सल्तनत काल का राजा क्रमशः कुतुबुद्दीन एबक था लेकिन उसने अपने नाम से कोई सिक्का नहीं चलाया जबकि उसके उत्तराधिकारी इल्तुतमिश ने चांदी के सिक्कों के कई प्रकार प्रचलित किये। उसे 1220 में खलीफा की खिलअत प्राप्त हो गई थी।[29] इल्तुतमिश ने चांदी के टंका चलाए।[30]

अलाउद्दीन खिलजी ने खिलाफत और खलीफा ट्रेंड बदलकर स्वयं को सिकन्दर-ए-सानी के नाम से अभिहित किया। उसने स्वर्ण के अलावा कनी-गनी सिक्के भी चलाए।

मुगलों के विरुद्ध रणभेरी फूंकने वाले वीरसिंह बुन्देला और उनके पुत्र छत्रसाल ने बार-बार मुगलों से युद्ध किया। उन्होंने अपने जीवन के 81 वर्षों तक मुगलों से मुकाबला किया। 1685 में छत्रसाल ने सागर, दमोह, वरहटा, बाँदा, राठ, पनवाड़ी आदि के अतिरिक्त कालपी पर भी अधिकार कर लिया। सन् 1721 में मुहम्मद खाँ बंगश नवाब की पदवी लेकर एरच, कोंच, कालपी, जालौन एवं सेंवढ़ा परगनों का सरदार बना। छत्रसाल ने मुहम्मद खाँ बंगश द्वारा नियुक्त पीर खाँ को कालपी से अपदस्थ करके मस्जिदें आदि तुड़वा दीं। बंगश के साथ युद्ध के बाद साकरखेड़ा के युद्ध में विजयी छत्रसाल से पराजय का बदला लेने के लिए बंगश ने मुल्तानी को दमन के लिए भेजा। मु. बशारत मुल्तानी की मनाही ने उससे उरई छीनकर बंगश ने

दतिया के राजा रामचन्द्र को सोंप दी।

इसी समय के भयंकर युद्ध के कारण छत्रसाल ने छत्रपति को संदेशा कहलवाया। छत्रपति के धर्मपुत्र पेशवा की शानदार मदद से बंगश को बुरी तरह मात दे दी। पेशवा को छत्रसाल की जायदाद का एक हिस्सा तृतीय पुत्र की हैसियत से प्रारम्भ हुआ। पेशवा के हिस्से में कालपी, हटा, हृदयनगर, जालौन, गुरुसराय, झाँसी, सिरौंज, गुना, गढ़ाकाटा और सागर आये। सन् 1736 ई. में मराठों द्वारा इस पूरे क्षेत्र पर आधिपत्य कायम करके कालपी को अपना मुख्यालय बनाया तथा गोविन्दराव को प्रथम राज्यपाल नियुक्त किया। कोंच होल्करों के अधीन रहा। यह स्थिति बिना किसी बाधा के सन् 1805 ई. तक चलती रही। [31]

सन् 1738 ईसवी के उत्तरार्द्ध तक जालौन राज्य की स्थापना हो गई। जालौन काफी अन्दर है। इस राज्य का झण्डा लाल रंग का था। इसकी अपनी टकसाल थी। आज भी महोबा से 13 मील दूर स्थित श्रीनगर में गाविन्दराव द्वारा बनाया गया शिवमंदिर है जहाँ आज भी शिवरात्रि के दिन भगवा झण्डे के साथ जालौन का झण्डा फहराया जाता है।

मराठों ने विभिन्न स्थानों पर टकसालें बनवाईं। पुणे की टकसाल द्वारा निर्मित सिक्कों पर मुहिआबाद पूना नाम से अंकित रहता था। परमेश्वरीलाल गुप्त लिखते हैं- "They setup a mint at Pune. Which come to be know as Muhiabad Puna on the coin. Besides there were a large number of mint. Which issued coins under the Maratha power. Some of them were Bagalkot, Mulher, Chandor, Kolaba, Sangli, Miraj,

Panhala, Balbantnagar (Jhansi), Jaloun, Kalpi, Kunch, Balanagar, Gadha (Gadha Mandal), Ravishnagar(Sagar). On the coin of western mint the symbol of good or the letter Sri in Nagari is chifly found. The eastern mint, seem to have a bold trident and a cross with three fork at each end." [32]

जालौन, कोंच और कालपी की टकसालें जालौन जनपद में अवस्थित थीं। जनपद जालौन से, दतिया के राजा के पास कुछ समय के लिए उरई चले जाने के कारण दतिया मिन्ट से बने सिक्के भी यहाँ प्राप्त होते हैं।

कई बार अनायास और अनजाने ढंग से हम संस्कृति का संरक्षण कर लेते हैं। कमोवेश जनपद के लोग इन सांस्कृतिक धरोहरों को सुरक्षित रखे हुए हैं। माचिस की डिब्बियों के खाली रैपर से टिकट और सिक्कों के संग्रह ने अनजाने ही संस्कृति को संभाल के रखा।

सोलह महाजनपदों का जिक्र बौद्ध ग्रंथ अंगुत्तरा निकाय एवं जैन ग्रंथ भगवती सुत्त में उपलब्ध है। इन्हीं 16 महाजनपदों में एक नाम चेदि महाजनपद का है। इसका राजा शिशुपाल था जो पौराणिक कथा के अनुसार कृष्ण का भाई है। [33] गुर्जरा (दतिया म.प्र.), साँची (विदिशा म.प्र.), रूपनाथ तथा कौशम्बी के अभिलेखों के से यह निश्चित होता है कि चेदि जनपद का क्षेत्र मौर्य आधिपत्य में आ चुका है। मौर्यों के पूर्व यह क्षेत्र नन्द वंश के अधिकार में था। मौर्यवंश के अंतिम राजा बृहद्रथ की हत्या उसके सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने की और शुंगवंश की स्थापना की। कालिदास की मा. अग्निमित्रम् के अनुसार अग्निमित्र विदिशा का सूबेदार था।

यह दशार्ण की राजधानी के रूप में वर्णित है।

अग्निमित्र के अंतिम समय एरच एक छोटे राज्य के रूप में उभर रहा था। एरच से प्राप्त सीसे तथा तांबे के सिक्कों पर मुगामुख राजा का नाम अंकित है जो कि ई.पू. द्वितीय शती का है। मुगामुख के पश्चात ई.पू. प्रथम शताब्दी में दाममित्र नाम के राजा का उल्लेख मिलता है जो कि एक ईंट पर अंकित है। लेखों द्वारा चार राजाओं क्रमशः शतानिक, अदितमित्र, मूलमित्र तथा असाधमित्र के नाम मिलते हैं। इनके नाम के साथ सेनापति एवं दशार्णपति और दशार्णेश्वर भी कहलाए। अदितमित्र के सिक्कों से इस बात की पुष्टि होती है। हाल ही में प्राप्त इन्द्रमित्र के ताम्र सिक्के ने शतानिक के वंश में एक नया नाम जोड़ दिया है। तांबे का यह सिक्का कोंच से प्राप्त हुआ है। वर्तमान समय में यह बुदेलखण्ड संग्रहालय में उपलब्ध है।

ओमप्रकाश लाल श्रीवास्तव ने इस सिक्के के बारे में लिखा है कि-'इन सभी सिक्कों पर राजाओं के नाम ब्राह्म लिपि में अंकित हैं , जिनका काल लगभग प्रथम शताब्दी बी.सी. है।'

ईश्वरमित्र का सिक्का :- यह ताम्रसिक्का है जिसकी माप 1.3X1.3सेमी है। चौड़ाई 2.700ग्राम है। मुख भाग पर लेख क्षैतिज रूप में दो भागों में विभक्त है। Rajno Isva/ ramitasa [34] पृष्ठ भाग पर यूप रेलिंग में वर्णित है।

दूसरे ताम्र सिक्के में भी इसी प्रकार का अंकन प्राप्त है। इस सिक्के का आकार 1.5 X 1.4 सेमी है। इसका वज़न 3.200 ग्राम है।

मुखभाग- राजनो ईस्वरामित्र का अंकन है जो दो क्षैतिज भागों में विभक्त है।

पृष्ठभाग - प्रतीक घिसा होने के कारण पहचाना नहीं जा सका।

तीसरा सिक्का :- आकार - 1.3 X 1.2 सेमी.

वज़न - 3.00 ग्राम

मुख भाग की द्वितीय पँक्ति के अक्षरों का निचला भाग पढ़ा नहीं जा सका। प्रथम पँक्ति है -इ (श्व)/र मित्र

पृष्ठभाग रेलिंग में बने यूप का अंक

चतुर्थ सिक्का :- दो पँक्तियों का लेख

आकार - 1.3 X 1.2 सेमी.

वज़न - 2.500 ग्राम

मुख - दो पँक्तियों के लेख में ऊपर वाले में 'राजनो सिवा' तथा निचली पँक्ति में 'मितास'

पृष्ठ - रेलिंग के मध्य यूप चिह्न ।[36]

ये विशेष सिक्के जिनसे एरच की राजवंशावली में नये राजाओं के नाम जुड़े वर्तमान समय में बुन्देलखण्ड संग्रहालय में उपलब्ध हैं।

इनके अतिरिक्त पंचमार्क (आहत मुद्राओं) में गांधार, कौशाम्बी, विदिशा, मगध, उज्जैन आदि महाजनपदों के सिक्के प्राप्त होते हैं।

गांधार आहत मुद्रा :- लगभग 550 बी.सी.

प्रकार : वेन्टवार/वर्तुलाकार

वज़न : 9.800 ग्राम

आकार : 3.9 X 9 सेमी.

आकृतियाँ : दोनों सिरों पर षडर चक्र का अंकन

आहत मुद्राओं में ज्यादातर लेख उपलब्ध नहीं हैं। केवल प्रतीक चिह्न अंकित हैं। ये वर्तुलाकार शलाका रूप में हैं। इस प्रकार के सिक्कों के बारे में परमेश्वरी लाल लिखते हैं- 'ऐसा जान पड़ता है कि धातु की पट्टियाँ ऐसी चौड़ाई में काटी जाती थीं कि अन्य दो आयामों के साथ मिलकर अपेक्षित भार के टुकड़े तैयार हो सकें। टुकड़ों को संतुलित करने के निमित्त आवश्यक होने पर दोनों छोरों के कोनों को कतर दिया जाता था और अगल-बगल से छील दिया जाता था। इस प्रकार के बने टुकड़ों के दोनों सिरों पर एक ही लक्षण टंकित किया जाता था।' [37]

कौशाम्बी :-	लेख	:	राजा सत्यमध
	धातु	:	कांसा
	वज़न	:	2.5 ग्राम
	आकार	:	2.2 X 1.3 सेमी.
	मुखभाग	:	हाथी की आकृति
	पृष्ठभाग	:	यूप और त्रिभुजाकृति
कौशाम्बी :-	धातु	:	ताँबा
	आकार	:	2.1X 1.3 सेमी.
	वज़न	:	2.1 ग्राम
	मुखभाग	:	हाथी,स्वास्तिक, वेदिका में वृक्ष
विदिशा :-	ताम्र मुद्रा		
	आकार	:	1.2 X 3.1 सेमी.

	वज़न	:	2.9 ग्राम
मगध :-	आकृति	:	चौकोर
	आकार	:	1.1 X 3.3 सेमी.
	वज़न	:	3.0 ग्राम
	मुखभाग	:	त्रिफुलिया आकृति एवं वृषभ
	पृष्ठभाग	:	घिसा होने के कारण आकृति स्पष्ट नहीं
उज्जैन :-	ताम्रधातु		
	आकार	:	1.8 X 1.4 सेमी.
	वज़न	:	3.4 ग्राम
	घिसा हुआ होने के कारण अंकन स्पष्ट नहीं		
उज्जैन :-	कार्षापण ताम्रधातु		
	आकार	:	1.0 X .8 सेमी
	वज़न	:	2.9 ग्राम
उज्जैन :-	गोलाकृति		
	आकार	:	1.3 डायमीटर
	वज़न	:	2.5 सेमी.
हस्तिनापुर :-	आयताकार ताम्रमुद्रा		
	आकार	:	1.6 X 1.4 सेमी.
	वज़न	:	2.3 ग्राम
	मुखभाग पर	:	हस्ति, स्वास्तिक

मथुरा :- रजतमुद्रा गोलाकृति पादमुद्रा

वज़न : 2.9 ग्राम

आकार : 1.6 डायमीटर

मुखभाग : चक्र का अंकन

पृष्ठभाग : अस्पष्ट

मथुरा :- गोलाकृति धरनिमुद्रा

वज़न : 3.2 ग्राम

आकार : 1.6 डायमीटर

तक्षशिला :- ताम्रमुद्रा/लालमुद्रा

मुखभाग : तीर, चक्र की आकृति

पृष्ठभाग : सपाट, कोई अंकन स्पष्ट नहीं

तक्षशिला :- प्राचीन धरनिमुद्रा

वज़न : 3.2 ग्राम

आकार : 1.9 X 1.2 सेमी.

तक्षशिला के एक अन्य सिक्के पर यूप में वृक्ष का अंकन है।

वैदिक साहित्य में अड्ढ ये गोलाकृत मुद्राएं अत्यधिक छोटी आकृति की हैं। इनका मानक एक रत्ती है। इन मुद्राओं का समय 1000-800 ई.पू. स्वीकार किया जाता है। इसे ही परवर्ती साहित्य में रत्तिका या गुंजा कहा गया है। यह बीजों का एक आकार था जिसका वज़न एक रत्ती होता था। प्राचीन काकणी कात्यायन के अनुसार 1/2 रत्ती होता था। अड्ढ नामक मुद्रा का वर्णन मनुस्मृति में है, जिसके अनुसार इन मुद्राओं का काल 800-200 ई.पू. है।[38]

पण :- ताम्रमुद्रा

आकार : .8 X .8 सेमी.

वज़न : 7 ग्राम

मुखभाग : वृक्ष का अंकन

अयोध्या :- राजा सत्यमित्र (अंकन)

गोलाकृति : 1.8 डायमीटर

वज़न : 6.4 ग्राम

इण्डो ग्रीक्स के 13 सिक्के प्राप्त हुए हैं जिनमें से 3 का वर्णन इस प्रकार है:-

एण्टीमेकस (100 ई.पू.) :-

धातु : चाँदी

वज़न : 2.5 ग्राम

आकृति : 1.6 डायमीटर

मुखभाग : पंखयुक्त पुरुषाकृति

पृष्ठभाग : घोड़े की आकृति

यूक्रेटाइडीज (175-150 ई.पू.) :-

धातु : चाँदी

वज़न : 9.5 ग्राम

आकृति : 2.5 डायमीटर

मुखभाग : यूक्रेटाइडीज की आवक्ष प्रतिमा जिसके सिर पर टोप का चित्रण है

पृष्ठभाग : हाथ में प्लेटाकृति लिये हुए देवी प्रतिमा

अपोलोडोटस (150 ई.पू.) :-

धातु : ताम्रमुद्रा

मुखभाग : मस्तक पर पट्टी बाँधे राजा की आवक्ष प्रतिमा

पृष्ठभाग : घोड़े पर सवार एक देवाकृति

पश्चिमी छत्रपों में जीवदामन (178 ई.) :-

मुद्रा : चाँदी का गोल सिक्का

वज़न : 1.8 ग्राम

आकार : 1.4 डायमीटर

मुखभाग : घुंघराले बालों वाली आवक्ष आकृति

सातकर्णी :- वृषभ मुद्रा

सीसा, ताँबा एवं पोटीन से निर्मित मुद्रा

आकार : .9 ग्राम

वे मुद्राएं जो जनपद जालौन में उपलब्ध हैं :- जनपद जालौन के विभिन्न स्थानों से उपलब्ध सिक्के वर्तमान में बुन्देलखण्ड संग्रहालय में संग्रहीत हैं।

शाहआलम :- आकृति : गोल, 2.2 डायमीटर

वज़न : 10.8 ग्राम

यह दतिया टकसाल से निर्गत है। इसका चिह्न) (है।[39]

शाहआलम द्वितीय :- वज़न : 11.4 ग्राम

आकार : 2.0 डायमीटर

बलवन्तनगर(ओरछा) टकसाल से निर्गत है। [40]

शाहआलम द्वितीय :- वज़न : 11.4 ग्राम

आकार : 2.2 डायमीटर

कोंच टकसाल से निर्गत।

टकसाल चिह्न - त्रिशूल, तलवार।

शाहआलम द्वितीय के 51वें जुलूस के समय कोंच टकसाल से निर्गत :-

वज़न : 10.8 ग्राम

आकार : 1.9 डायमीटर

टकसाल चिह्न : तलवार, त्रिशूल

शाहआलम द्वितीय के 31वें जुलूस के समय कालपी टकसाल से निर्गत :-

धातु : चाँदी

आकार : 2.1 डायमीटर गोलाकृति

वज़न : 11 ग्राम

शाहआलम द्वितीय के 55वें जुलूस के समय रविसनगर सागर से निर्गत :-

धातु : चाँदी

वज़न : 11 ग्राम

आकार : 1.8 डायमीटर

टकसाल चिह्न : पताका व त्रिशूल

मुहम्मद शाह इटावा :- वज़न : 11 ग्राम

आकार : 2.2 डायमीटर

शाहआलम द्वितीय (नरवर राज्य) :-

धातु : चाँदी

वज़न : 11.0 ग्राम

आकार : 2 डायमीटर

टकसाल चिह्न : पत्ती सांप

शाहआलम द्वितीय के चौथे जुलूस के समय छतरपुर टकसाल से निर्गत :-

वज़न : 11.4 ग्राम

टकसाल चिह्न : मेहताब (सूर्य)

ऐरच के सिक्के :- धातु : सीसा

आकृति : गोल

वज़न : 4.9 ग्राम

मुखभाग : अस्पष्ट

पृष्ठभाग : दौड़ती आकृति का अंकन

आलमगीर द्वितीय के द्वितीय जुलूस के समय बलवंतनगर (ओरछा-झांसी) से निर्गतः-

टकसाल चिह्न :

मराठा राज व्यवस्था के अन्तर्गत निर्गत सिक्का :-

धातु : चाँदी

वज़न : 10.8 ग्राम

आकार : 1.9 डायमीटर

शाहआलम द्वितीय के समय श्रीनगर महोबा से निर्गत सिक्का :-

वज़न : 11.0 ग्राम

टकसाल चिह्न : त्रिशूल के साथ धन का चिह्न

ईसागढ़ (ग्वालियर) की टकसाल से निर्गत जनकोजी का सिक्का :-

वज़न : 10.4 ग्राम

ताम्र सिक्के पर अरबी/फारसी के अस्पष्ट अक्षर किन्तु सीधी पँक्ति में चाँद-तारे की आकृति है। ये संभवत: टकसाल चिह्न है।

वज़न : 1.2 ग्राम

आकार : 2.1 डायमीटर

धातु : ताम्र

शिवाजी की ताम्रमुद्रा :-

धातु : ताम्र

वज़न : 8.6 ग्राम

आकार : 1.9 डायमीटर

मुखभाग : श्री राजा शिव

पृष्ठभाग : प्रथम पँक्ति - छत्र

द्वितीय पँक्ति- पति

उपरोक्त मुद्राएं जनपद जालौन के विभिन्न स्थानों से उपलब्ध हुईं मुद्राएं हैं। इन मुद्राओं के अतिरिक्त भी कुछ मुद्राएं प्राप्त हुईं हैं। इन्हें बुन्देलखण्ड संग्रहालय में बड़े

जतन से संभालकर रखा गया है। इनमें से कुछ का अवलोकन यहाँ प्रस्तुत है-

राजा कुणिन्द्र का सिक्का :-

आकार : 1.7 डायमीटर

वज़न : 1.4 ग्राम

मुखभाग : स्वास्तिक, यूप, पर्वत, नदी, चन्द्रमा, वृक्ष का अंकन

पृष्ठभाग : घोड़े के साथ चँवरधारिणी स्त्री का चित्र व एक आसन का अंकन

लेख : (खरोष्ठी) राजा कुनिमदस्य अमोघभूतिया महाराजस्य,

समय : 300 ईसवी

नाग सिक्के :- वज़न : .8 एवं .7 ग्राम

कई आकृतियाँ अंकित हैं , मुख्य हैं हस्ति, वृक्ष आदि।

धातु : ताम्र

कुषाणमुद्रा :- धातु : ताम्र

वज़न : 5.6 ग्राम

मुखभाग : कुषाणकालीन वेशभूषा युक्त आकृति (अस्पष्ट)

मथुरा का सिक्का :- कुषाणकालीन वेशभूषा युक्त पुरुष आकृति का मुखभाग एवं पृष्ठभाग पर अंकन। आकृति के मुखमण्डल के चारों ओर आभामंडल।

वज़न : 15.4 ग्राम

आकार : 2.5 डायमीटर

संग्रहालय में कुषाणों की लगभग 50 ताम्र मुद्राएं उपलब्ध हैं।

शेरशाह सूरी के सिक्के :- धातु : चाँदी

वज़न : 11.4 ग्राम

आकार : 2.25 डायमीटर

टकसाल चिह्न : तारांकन

इसके अतिरिक्त अनेक गुप्त शासकों की मुद्राएं , जिनमें कुमारगुप्त की मयूराकृति जिसके पृष्ठभाग पर मयूर का अंकन [41] स्कन्दगुप्त की वेदिका प्रकार [42] है। कुमारगुप्त की मयूर मुद्राओं के पृष्ठभाग पर मयूर की आकृति का अंकन [43] गुप्तों की अनेक मुद्राएं तथा नाग शासकों की विभिन्न मुद्राएं उपलब्ध हैं। ऐरच राजवंश के शासकों में नये नाम भी इसी संग्रहालय ने जोड़े हैं।

श्रीमती सुशीला शर्मा के निजी संग्रह के दो सिक्कों का उल्लेख भी यहाँ किया जा रहा है। ग्वालियर एवं इन्दौर के ये सिक्के संभवत: अदला-बदली के कारण यहाँ आ पहँचे। [44]

1. श्रीमंत शिवाजीराव होल्कर, इंदौर

समय : सम्वत् 1945

वज़न : 6.2 ग्राम

आकार : 2 डायमीटर

धातु : ताम्र

मुखभाग : श्रीमंत महाराजा शिवाजीराव होल्कर

पृष्ठभाग : राजमुकुट का अंकन

2. श्री जीवाजीराव शिन्दे अलीजा बहादुर, ग्वालियर

समय : सम्वत् 1886

वज़न : 5.2 ग्राम

आकार : 2 डायमीटर

मुखभाग : श्री जीवाजीराव शिन्दे अलीजा बहादुर, ग्वालियर

पृष्ठभाग : ताज तथा पाव आना अंकित

सन्दर्भ सूची

1. भारतीय मुद्राएँ : पी.एल. गुप्ता , पृ. 3
2. ऋग्वेद 5/19/23
3. प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास : डॉ. ओमप्रकाश , पृ. 147
4. ऋग्वेद 5/19/23
5. ऋग्वेद 1/126/2
6. रामायण 2/70/21
7. वन्डर दैट वाज इंडिया (अद्भुत भारत) : ए. एल. बाथम , पृ. 550
8. इंडियन क्वाइन , पृ. 3
9. प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास : डॉ. ओमप्रकाश , पृ. 148
10. विगिंग्स ऑफ बुद्धिस्ट आर्ट : फाउलर , पृ. 20
11. भारतीय मुद्राएँ : पी.एल. गुप्ता , पृ. 11
12. भारतीय मुद्राएँ : पी.एल. गुप्ता , पृ. 13
13. कॉइन्स : पी.एल. गुप्ता , पृ. 25
14. प्राचीन भारत का इतिहास : श्रीमाली एवं झा , पृ.135
15. प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति : के.सी. श्रीवास्तव , पृ. 23
16. प्राचीन भारतीय मुद्राएँ : परमेश्वरी लाल , पृ. 7
17. कॉइन्स : पी.एल. गुप्ता , पृ. 25
18. प्राचीन भारतीय मुद्राएँ : परमेश्वरी लाल , पृ. 25
19. प्राचीन भारत का इतिहास : श्रीमाली एवं झा , पृ.229
20. कॉइन्स : पी.एल. गुप्ता , पृ. 28
21. ए सिल्वर कॉइन ऑफ चन्द्रगुप्त - कुमारदेवी , पृ. 83 ए.एल. श्रीवास्तव
22. इंडियन कॉइन : रैप्सन उद्धृत प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, पृ. 150
23. स्मिथ उद्धृत प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास , पृ. 151
24. वाटर्स , जिल्द-1 , पृ. 178
25. इंडियन- एंटी. 39 , पृ. 193-216

26. हिस्ट्री ऑफ बंगाल , पृ. 666
27. भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास , पृ. 254
28. कॉइन : परमेश्वरी लाल , पृ. 105
29. मध्यकालीन भारत : आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव , पृ. 33
30. तदैव , पृ. 34
31. कालपी की पवित्र भूमि : के.बी. लाल , पृ. 125
32. कॉइन : परमेश्वरी लाल, पृ. 174
33. प्राचीन भारत का इतिहास : झा एवं श्रीमाली
34. आर्किओलॉजी ऑफ एरच- डिस्कवरी ऑफ न्यू डाइनेस्टीज : ओमप्रकाश
35. तदैव
36. नुमेरीस्मेटिक डाइजेस्ट (वोल्यूम 23-24) 1999-2000
37. प्राचीन भारतीय मुद्राएँ : परमेश्वरी लाल
38. मनुस्मृति
39. कॉइन : परमेश्वरी लाल , पृ. 125
40. तदैव
41. प्राचीन आहत मुद्राएँ : परमेश्वरी लाल , पृ. 64
42. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति : के.सी. श्रीवास्तव , पृ. 136
43. तदैव
44. निजी संग्रह : सुशीला शर्मा

सप्तम् अध्याय

जनपद जालौन में उपलब्ध मूर्तियाँ

अध्याय -7
मूर्तिकला

मूर्तिकला के दो अपरिहार्य अंग हैं- मूर्त अभिप्राय और भाव बोध।[1] मूर्ति अमूर्त को दृष्टि के समक्ष साकार करने का प्रयत्न है। प्रतिमापूजा में प्रतिमा शब्द का मूल अर्थ तो देव विशेष, व्यक्ति विशेष अथवा पदार्थ विशेष की प्रतिकृति, बिम्ब, मूर्ति अथवा आकृति सभी का बोधक है, किन्तु प्रतिभा का तात्पर्य भक्ति भावना से पूजित देव विशेष की मूर्ति अथवा देव भावना से अनुप्राणित पदार्थ विशेष की प्रतिकृति ही है। प्रतिमा पूजा में प्रतिमा एक प्रकार की कलात्मक प्रियता की मानवीय भावना का वह प्रकट व मूर्त स्वरूप है जिसके द्वारा इस देश के मानव ने अदृष्ट शक्ति की कल्पना एवं उसकी उपासना की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष चेष्टा की है।[2]

प्रतिमा का अर्थ है प्रतिरूप। इसी भाव को प्रकट करने के लिए प्रतिकृति, बिम्ब, प्रतिमा आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। बिम्ब का एक अर्थ छाया है। यह शब्द पारलौकिक प्रतिमाओं के लिए प्रयुक्त होता है। शुक्र ने 'अपिश्रेयस्करं नृणां[3] देवबिम्ब लक्षणम्' कह कर प्रतिमा के लिए बिम्ब का उल्लेख किया तो पाणिनी ने इसे अपने सूत्र में 'इवै प्रतिकृतौ'[4] कहकर प्रयुक्त किया है।

हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से स्पष्टतः मूर्तिपूजा के साक्ष्य मिलते हैं। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से धातु, मृण और पाषाण मूर्ति की एक शृंखला प्राप्त हुई है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त मुहर पर अंकित योगासन मुद्रा में पशुपति की प्रतिमा को विद्वानों ने शिव-पशुपति

की पूर्वज (प्रोटोटाइप) माना है। इसी प्रकार मातृदेवी की कई प्रतिमाएँ भी उपलब्ध हुई हैं। आर.पी.चन्द्रा का निष्कर्ष यह है कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई ने यह पूर्ण प्रमाण प्रदान किया है कि योगमुद्रा में मानव तथा देव प्रतिमाओं की (आसन व स्थानक मुद्रा में) उस सुदूर अतीत में पूजा विद्यमान थी।[5] वहीं सभी विद्वजन वैदिक कालीन उपासना को भावात्मक और प्रतीकात्मक मानते हैं।

ऋग्वेद की लगभग तीस ऋचाओं के परिशीलन से पूर्व वैदिक काल में देवों की रूपोद्भावना जो प्रतिमा विज्ञान की जननी है पर पूर्ण आभास प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में शिश्नदेव और मूरदेव इन दो शब्दों से तात्कालिक पूजा पर प्रकाश पड़ता है। ऋग्वेद की 22वीं ऋचा में वशिष्ठ इन्द्र से प्रार्थना करते हैं कि 'शिश्नदेव हमारे ऋत पर आक्रमण न कर पाये।'[6]

डॉ. वोलेन्सन का मत है कि 'वैदिक कालीन व्यक्ति केवल प्रतिमाओं से परिचित ही नहीं थे बल्कि वे उनकी पूजा भी करते थे।'[7] मूरदेव से आशय संभवतः मुरीय (मृ धातु से) नाशवान ग्रहण किया जाये तो मूरदेव का तात्पर्य उन नीचवर्णीय अनार्यों अथवा मूल निवासियों से होगा जो नाशवान पदार्थों, मृणमयी प्रतिमा आदि की पूजा करते थे न कि सनातन दिव्य स्वर्गीय देव-इन्द्र, वरुण, सूर्य, अग्नि आदि की।[8]

ऋग्वेद के बाद के साहित्य यथा - यजुर्वेद, अथर्ववेद, उपनिषद्, वेदांग सूत्र साहित्य में उत्तरवैदिक काल में मूर्तिपूजा के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। षडविश ब्राह्मण का यह उल्लेख 'देवतायतनानि कम्पन्ते देव प्रतिमा हसन्ति रुदन्ति नृत्यन्ति स्फुटन्ति खाद्यन्ति उन्मीलन्ति'[9] देवपूजा का अकाट्य प्रमाण है। इसी प्रकार पंचविशं ब्राह्मण में देवमली मुच अर्थात देवप्रतिमाओं को चुराने वाले शब्द के प्रयोग से भी देवमूर्ति की

उपलब्धता पर प्रकाश पड़ता है।

श्वेताश्वतर उपनिषद में – न तस्यप्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः [10] कहकर यशस्वी की प्रतिमा न बनाने का आदेश दिया है। पतंजलि ने प्रतिमा के लिए अर्चा शब्द का प्रयोग किया है और कुछ ऐसी प्रतिमाओं का उल्लेख है जिन्हें मौर्य राजा अत्यधिक स्वर्ण प्राप्ति की इच्छा से बनवाते थे।[11] मौर्यैः अर्थम्भि अर्चा प्रकल्पितः। [12]

मनुस्मृति के विभिन्न प्रवचनों में तथा पाणिनि के सूत्र और पतंजलि के भाष्य से यह स्पष्ट होता है कि ईसा के 800 वर्ष पूर्व इस देश में प्रतिमा पूजा प्रारम्भ थी। [13]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में जिन देव प्रतिमाओं की पुरमध्य कल्पना अभिप्रेत है उनमें अपराजित , अप्रतिहत, जयन्त, वैजन्त, शिव अश्विन कुमारों नामक देव और श्री एवं मदिरा नामक देवियों का वर्णन है।

परखम से प्राप्त प्रतिमा को यक्षिणी (यक्षी लायावा) प्रतिमा माना है और इसे मौर्यकालीन कृति ठहराया गया है। इसकी वेदी पर कलाकार के उल्लेख से स्पष्ट है कि उस समय यक्ष पूजा का प्रचलन था। भरहुत से प्राप्त कलाकृतियों में यक्ष–यक्षी की बहुतायत देखकर भी यक्षपूजा का प्रमाण पुष्ट होता है। मौर्यकाल से ही मानव के समानुपातिक रूप का मिलना प्रारम्भ हो गया था। इसी के साथ पाषाण में देवत्व उकेरने की वो परम्परा शुरू हुई जो निरन्तर विकास की ओर बढ़ती गई।

मौर्यकला देवत्व के आरोपण से उद्भासित थी वहीं शुंग और पाषाण कला में मूर्तिकला अपने अलौकिक रूप में पूर्ण स्फुरण के साथ दृष्टव्य हुई। गुप्तकाल में गंधारकला के यथार्थवाद से आगे बढ़कर कला ने आदर्शवाद को अपनाया और आध्यात्मिकता गुप्तकाल के सम्पूर्ण कला परिवेश पर छाई रही। वहीं दक्षिण की प्रतिमाओं में अतिशय

लाक्षणिकता और शास्त्रीयता का ध्यान रखा गया। केन्द्रीय नियंत्रण के अभाव में कला और कलाकार दोनो ही विकेन्द्रीयकृत राजवंशों के सानिध्य और संरक्षण में पहुंचे और कला के विभिन्न रूप सामने आये। [14]

समग्र में इकाई और इकाई में समग्रता है प्रतिमा विज्ञान। शास्त्रीय ढंग से निर्मित प्रतिमा ही पूजनीय मानी गई है। शास्त्रीय विवेचन लक्षण, गुण,रूप और आयुधों पर आधारित है- प्रमाण स्थापितः देवाः पूर्जा पूर्णा पूजार्धश्च भवन्ति। [15] प्रमाणो या लक्षणों पर आधारित प्रतिमाओं को ही मंदिरों में प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

वस्तुतः देव, देव तभी बन सकते हैं जब वे मानव रूप में आयें अन्यथा देव निर्गुण और निराकार हैं। इसी दार्शनिक दृष्टि के मर्म को समझने वाले प्राचीन आचार्यों ने देवों की मूर्ति रूप में कल्पना में उनको मानव का रूप ही प्रदान नहीं किया वरन् मानवों की मनोभावनाओं और राग-द्वेषों से भी उन्हें आक्रान्त दिखाया। [16]

प्रतिमाओं के समग्र रूपों के तीन प्रधान वर्गीकरण स्वीकार किये गए हैं-

1. चल-अचल प्रतिमाएँ
2. पूर्ण-अपूर्ण प्रतिमाएँ
3. शान्त और अशान्त प्रतिमाएँ

चल-अचल प्रतिमाएँ :-चल प्रतिमाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जा सकते हैं, जबकि अचल प्रतिमाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं ले जा सकते। चल प्रतिमाएँ हल्की वस्तु या धातु से निर्मित होती हैं जबकि अचल प्रतिमाएँ पाषाणादि से।

चल प्रतमाओं के मुख्य रूप हैं-(बेर शब्द प्रतिमा के लिए प्रयुक्त है)[17]

कौतुक बेर	:	पूजार्थ
उत्सव बेर	:	पर्व विशेष पर बाहर ले जाने के लिए
बलि बेर	:	दैनिक उपचारार्थ पूजा में उपहारार्थ
स्नपन बेर	:	स्नादि के लिए स्नानार्थ

अचल प्रतिमाएँ या मूल विग्रह अथवा ध्रुव बेर प्रसाद गर्भगृह में स्थापित की जाती हैं। ये सदैव यथास्थान प्रतिष्ठित रहती हैं। इनके निम्न भेद प्रकल्पित हैं–

1.	स्थानक	:	खड़ी प्रतिमा
2.	आसन	:	बैठी हुई
3.	शयन	:	विश्राम करती हुई

इन वर्गीकरणों का आधार देहमुद्रा है। शयन मुद्रा में विष्णु को छोड़कर किसी देव की प्रतिमा नहीं मिलती है।

पूर्णापूर्ण प्रतिमाएँ :- इस वर्ग के भी तीन अवान्तर भेद हैं- प्रथम में वे मूर्तियाँ शामिल हैं जिनकी आकृति के पूर्णावयवों की विरचना की गई है। दूसरे जिनकी अर्द्धकल्पना ही अभीष्ट है, तीसरे जिनका आकार क्या है यह व्यक्त न हो, अर्थात प्रतीक रूप।

शान्ताशान्त प्रतिमाएँ :- इन प्रतिमाओं का आधार मनोभाव है। कुछ प्रतिमाएँ रौद्र रूप या उग्र रूप में चित्रित की जाती हैं जबकि कुछ प्रतिमाएँ शान्त एवं सौम्य मुद्रा में। शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए शांत मूर्ति का विधान है वहीं आभिचारिक, मारक, उच्चाटन आदि अभीष्टों के लिए उग्र प्रतिमा का।

इसके अतिरिक्त प्रतिमा निर्धारण के लिए निम्नलिखित वर्गीकरण ज्यादा मूल्यवान है–

1. धर्म

2. देव

3. द्रव्य

4. शास्त्र

5. शैली

इस पंचक के आधार पर वर्गीकरण इस प्रकार हो सकते हैं :-

धर्म के अनुसार - ब्राह्मण, बौद्ध, जैन।

देव - ब्राह्म, वैष्णव, शैव, सौर एवं गाणपत्य।

द्रव्य - मृण्मयी, दारुजा, धातुजा/पाकजा, रत्नोदवा, लेप्या, चित्रजा, मिश्रजा।

शास्त्रीय परम्परा के अनुसार पांच अवन्तर वर्ग किये जा सकते हैं-

1. पौराणिक

2. आगमिक

3. तान्त्रिक

4. शिल्पशास्त्रीय

5. मिश्रित

आसन, वाहन, यान, आयुध तथा मुद्रा आदि के आधार पर ब्राह्मणी मूर्तियों का विभाजन किया जा सकता है। अध्ययनार्थ एक सामान्य विभाजन इस प्रकार भी किया जा सकता है-

1. राज्याश्रित

2. लोकाश्रित

राज्याश्रित कला की विडम्बना है कि कलाकारों को संरक्षक राजा के अनुग्रह के अनुसार मूर्ति निर्मित करनी पड़ती थी जिससे कला पर विशेषाधिकार की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। कला का मूल भाव स्वातन्त्र्य अभिव्यक्ति नष्ट हो जाती है। इससे कला में एकरसता उत्पन्न हो जाती है। राज्याश्रित कला कलकल करती पर बंधे बांध की भाँति है जिससे चमक, कौंध या बिजली तो उत्पन्न होती है पर मुक्त जल का सहज सौन्दर्य नहीं। ये सहजता लोककला में स्वयं उत्पन्न हो जाती है क्योंकि कलाकार किसी और के अनुशासन में बंधकर काम नहीं करता उसकी अनुभूति और अभिव्यक्ति में मौलिकता होती है और मौलिक सृजन देवत्व की विशेषता है।

भारतीय संस्कृति की धर्म सहिष्णुता ने न केवल देश के हिस्सों को प्रभावित किया वरन् विदेशों तक में इस अद्‌भुत विशेषता का प्रभाव रहा है। यथा राजा तथा प्रजा की तर्ज पर बुंदेलखण्ड और उसके अन्तर्गत आने वाला जनपद जालौन भी अपनी धर्म सहिष्णुता की झाँकियां अपने यहाँ की उपलब्ध कला में बिखेरता है। यद्यपि कुछ मंदिरों में स्थापित प्रतिमाओं में मराठा या दक्षिण शैली की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। बुंदेली शैली की मूर्तियाँ भी उपलब्ध हैं। वस्तुतः जनपद का अपना कोई स्कूल नहीं है फिर भी विभिन्न कलाकेन्द्रों के विद्यार्थियों ने जनपद में अपनी साधना के प्रमाण छोड़े हैं। भारतीय कलाकारों की चिर-परिचित विशेषता यहाँ के कलाकारों में भी यशेषणा नहीं है, क्योंकि किसी भी पीठिका पर कोई नाम अंकित नहीं मिला है। जनपद में ब्राह्मण मूर्तियों की प्रधानता है इसके बाद जैन धर्म की तथा बौद्ध धर्म की सबसे कम प्रतिमाएँ उपलब्ध हैं। जनपद में वैष्णव और शैव सम्प्रदाय की प्रमुखता है। विष्णु के द्विभुजी और चतुर्भुजी रूप में विशिष्ट विग्रह यहाँ प्राप्त होते हैं। विष्णु के चतुर्व्यूह के आधार पर उनकी 24 मूर्तियों का प्रादुर्भाव

हुआ है। इन चौबीस मूर्तियों के क्रमशः नाम है– केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, ऋषिकेष, पद्मनाभ, दामोदर, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नृसिंह, अच्युत, उपेन्द्र, हरि एवं कृष्ण। ये सभी स्थानक प्रतिमाएँ हैं, ये सभी रूप चतुर्भुजी हैं जो किरीटादि आभूषणों से सुसज्जित हैं। ये सभी रूप पद्मासना हैं।[18] इनमें समानता होते हुए भी आयुधानुसार भिन्नता है। आयुधों को धारण करने का क्रम ऊपर के दाहिने हाथ से शुरू होता है जो क्रमशः बांए ऊपरी हाथ से बांये निचले हाथ तथा दांये निचले हाथ पर समाप्त होता है। जनपद में विष्णु के कई रूप उपलब्ध हैं। इनमें मुख्यतः केशव रूप है जिसके लक्षण हैं ओम् रूपः केशवः पद्मशंखचक्रगदाधर[19] अर्थात केशव विग्रह में क्रमशः दाहिनी ऊपरी भुजा में पद्म, बांये ऊपरी भुजा में शंख, बांये निचली भुजा में चक्र तथा दांये निचली भुजा में गदा अंकित है।

नारायण रूप में	क्रमशः	पद्म,गदा,चक्र एवं शंख
माधव रूप में	क्रमशः	चक्र, शंख, पद्म, गदा
गोविन्द रूप में	क्रमशः	गदा, पद्म, शंख, चक्र
त्रिविक्रम रूप में	क्रमशः	गदा, चक्र, शंख, पद्म
नृसिंह रूप में	क्रमशः	पद्म, गदा, शंख, चक्र
अधोक्षज रूप में	क्रमशः	गदा, शंख, पद्म, चक्र[20]

विष्णु के अवतार रूप में नृसिंह, वराह और वामन अवतार मूर्तियाँ इस जनपद में बहुलता से प्राप्त होती हैं। इनमें वामन बहुप्रचलित अवतार है। विष्णु के प्रमुख सामान्य लक्षणों में आयुध के अतिरिक्त श्रीवत्साक्रित वक्ष, कौस्तुभ मणि, वैजयन्तीमाला,

कुण्डलकिरीटधारी विष्णु की मूर्तियाँ सात वर्गों में विभक्त हैं–

1. साधारण मूर्तियाँ
2. विशिष्ट मूर्तियाँ
3. ध्रुवबेर
4. दशावतार मूर्तियाँ
5. चतुर्विंशति मूर्तियाँ
6. क्षुद्र मूर्तियाँ
7. गरुड़ और आयुध मूर्तियाँ।

प्राचीन देव शिव अपने दोनों विग्रहों यथा लिंग विग्रह तथा पुरुष विग्रह में प्रतिष्ठित हैं। शिवपूजा के प्रमाण तो सिंधु सभ्यता से ही प्राप्त होने लगते हैं। मार्शल तथा मैके ने पूर्व ऐतिहासिक काल में प्रतीकोपासना (जिसमें लिंग पूजा, पाशुपति शिव पूजा, योगीपूजा आदि पूजा परम्पराओं के पूर्ण आभास प्राप्त होते हैं) की गवेषणा से निष्कर्ष निकाला कि अतीत में यह परम्परा अपने बहुमुखी विकास में विद्यमान थी। ऐसी ही उपासना नदीय सभ्यताओं में भी प्राप्त होती है अतः प्रतीकोपासना एवं प्रतिमापूजा सम्पूर्ण मानव जाति की एक प्रकार से अति पुरातन संस्था कही जा सकती है।[21]

शिव संहार के देव हैं। प्रलय के समय सारे जीव सम्पूर्ण चराचर शिवलिंग में लय हो जाते हैं। इसीलिए शिवलिंग को अपार शक्तिधारी माना जाता है। इसी के द्वारा पुनः सृष्टि कार्य प्रारम्भ होता है। इसीलिए लिंगरूप को अत्यधिक महत्व दिया गया है–

लयं गच्छति भूतानि संहारे निखिल यतः
सृष्टिकाले पुनस्सृष्टि तस्मालिंग मुदीरितम् ।[22]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में शिवलिंग के तीन भाग बताये गए हैं-

1.भोग पीठ : लिंग के ऊपर का भाग भोग कहलाता है, यह वृत्ताकृति का होता है।

2. भाग पीठ : भोगपीठ का निचला अष्टकोणीय या षट्कोणीय भाग।

3. ब्रह्मपीठ : अष्टकोणीय भाग के नीचे का चतुर्भुज रूप।

शिल्पग्रंथों में तीन प्रकार के लिंगों का वर्णन हुआ है जो क्रमशः निष्कल, सकल तथा मिश्र हैं। केवल लिंग रूप में बना आकार-निष्कल, लिंग प्रतिमा का रूप - सकल तथा मुख लिंग रूप मिश्र कहलाता है।

निष्कलं केवलं लिंगं सकलं प्रतिमा स्मृता,
मिश्राख्यं मुखलिंगं स्यान्मिश्र लक्षण लक्षितम्।[23]

सद्योजात, नामदेव, अघोर, तत्पुरुष तथा ईशान, इन पाँच मुखों वाला लिंग रूप मिश्र का उदाहरण है।

राव महोदय ने लिंग के दो रूप बताये हैं - चल एवं अचल।

चल लिंग हल्के होते हैं। वस्तु की दृष्टि से ये छह भागों में विभक्त होते हैं-

1. मृण्मय

2. लौहज

3. रत्नज

4. दारुज

5. शैलज

6. क्षणिक।

मनुष्यों द्वारा निर्मित भाग लिंग मानुष कहलाते हैं। यह क्रमशः ब्रह्म भाग, विष्णु भाग,

रुद्र भाग में बंटे होते हैं। रुद्र भाग का अर्थ भोग भाग होता है। इसी पर पूजा की जाती है। लिंग में पीठिका का बनना अत्यावश्यक है क्योंकि लिंग आधेय है और पीठ आधार।

मानवीय प्रतिमाएँ :-

वैष्णव पुराणों में शिव के जिन रूपों के कई रूपों का वर्णन हुआ है, उन मानवीय प्रतिमाओं को भी दो भागों में बांटा गया है –

1. मंगलकारी शांत मूर्ति
2. दक्षिण मूर्ति
3. नृत्य मूर्ति
4. संहारक या अमंगलकार मूर्ति

जनपद जालौन में शक्ति पूजा अपने परंपरागत रूप में विद्यमान है, इसी कारण यहाँ विभिन्न देवी प्रतिमाएं उपलब्ध हैं। देवी के एकल रूपों के अतिरिक्त देवी के मातृका रूप के विग्रह भी मिलते हैं। मातृका प्रतिमा वस्तुतः देवों की शक्तियों की प्रतीक हैं, अतः ये अपने देवताओं के अस्त्र-शस्त्र और वाहनों से सुसज्जित दिखाई देती हैं।

कालपी के मुहल्ला अदल सराय में पाहूलाल मंदिर में देवी के कई विग्रह प्राप्त होते हैं। लाल बलुआ पत्थर से निर्मित इन मूर्तियों में क्रमशः गौ, काली, लक्ष्मी, गंगा, विंध्यवासिनी, दुर्गा और महाकाली की मूर्तियां हैं। इसके अतिरिक्त पंचकन्याओं की मूर्तियाँ भी यहाँ मिलती हैं। जालौन में वराही देवी के मंदिर में स्त्री प्रतिमा को वराह शीर्षयुक्त दिखाया गया है। प्रतिमा में देवी का अधोभाग ही अंकित है। वराही देवी विष्णु के वराह अवतार की केन्द्र शक्ति हैं। जवाहरनगर रामपुरा में स्थित एक पाषाण पट्ट पर देवी के कई रूप उपलब्ध होते हैं जिन्हें दुर्गा के विग्रह मानकर पूजन किया जाता है। ये मंदिर 16वीं

शताब्दी का है। इसी मंदिर में एक बलुआ प्रस्तर खण्ड उपलब्ध है जिसके मध्य में ब्रह्मा की शक्ति त्रिमुखी ब्राह्मणी का अंकन है जिसके बांयी ओर वीणा बजाता पुरुष और दांयी ओर एक अन्य पुरुष आकृति अंकित है। इस ब्राह्मणी मूर्ति को विभिन्न आभूषणों से सुसज्जित दिखाया है।

उरई के प्राचीन बड़ी माता के मंदिर में स्थापित मूर्ति के आँचल में लेटे एक शिशु का अंकन किया गया है। इस मूर्ति में माँ के आँचल में लेटा एक शिशु है जिसका एक हाथ माँ के स्तन पर है। देवी की मूर्ति अंगद, ग्रेवैयक, केयूर आदि अलंकारों से सुसज्जित है। इस मंदिर में अंकित मूर्ति महालक्ष्मी की मूर्ति मानी जाती है जिन्हें बड़ी माता के नाम से भी जाना जाता है। श्रीमहालक्ष्मी विश्व की आधारभूत शक्ति हैं। इनका स्थान सप्त मातृकाओं में द्वितीय है। प्रथम स्थान ब्रह्मा की पत्नी ब्रह्माणी का है जिन्हें महासरस्वती के नाम से जाना जाता है। उनके अंकन में वाहन के रूप में हंस का तथा हाथों में पुस्तक एवं अक्षमाला का अंकन किया जाता है। शिव की शक्ति महाकाली के नाम से जानी जाती हैं जो मुण्डमाला, खड्ग, त्रिशूल तथा भैरव वाहिनी है।

महालक्ष्मी मंदिर जालौन में भी विष्णु शक्ति महालक्ष्मी की मूर्ति स्थापित मिलती है। यह मूर्ति कमलासीन चतुर्भुज प्रतिमा है जिनके हाथों में क्रमशः कमल, मधुपात्र, वज्र तथा सुदर्शन चक्र प्रदर्शित किया गया है। इस मूर्ति के शीर्ष पर दो अलंकृत हाथियों का अंकन है जो देवी पर जलाभिषेक कर रहे हैं। मूर्ति का यह प्रकार गजलक्ष्मी के नाम से भी जाना जाता है। जालौन के मुहल्ला भवानीराम में स्थित सरस्वती मंदिर में माँ सरस्वती अपने वाहन हंस पर सवार हैं। वे कमलदल को आसन बनाकर वीणापाणि रूप में विराजमान हैं। श्वेत संगमरमर की बनी यह मूर्ति 58 X 42 सेन्टीमीटर ऊंची और चौड़ी है। जालौन

में वर्णित जयन्तीदेवी के मंदिर में आदिगुरु भगवान शिवशंकर ने अम्बिकासुर जैसे राक्षस के रक्तपान हेतु अपने मानस से सृजित एक मानसी शक्ति का सृजन किया, जयन्ती वही मातृका देवी हैं।

रामपुरा ग्राम में पश्चिमी किनारे पर माँ काली की चतुर्भुज प्रतिमा प्राप्त हुई। माँ काली अपने चतुर्भुज रूप में जटा-मुकुट धारण किये गले में मुण्डमाल डाले सुशोभित हो रही हैं। देवी के हाथों में क्रमशः खड्ग, मुण्ड, मधुपात्र और खप्पर का अंकन है।

कोंच से 26 किलोमीटर दूर स्थित नदीगांव में गौरैया माता की मूर्ति है। संभवतः यह नाम गौरी से बिगड़कर बना है। देवताओं द्वारा गौरी को षोडशी मातृकाओं में प्रथम स्थान दिया गया है। कई स्थानों पर देवी प्रतिमाओं में स्त्री मुख की जगह वाहन की मुखाकृति का अंकन किया गया है। स्त्री प्रतिमाओं के साथ मिलने वाला शिशु विग्रह उनके मातृका स्वरूप की पुष्टि करता है।

गणेश विग्रह :-बुद्धि के एक देव गणेश की विविध मुद्रायें इस जनपद से उपलब्ध होती हैं जिसका एक कारण लम्बे समय तक मराठों का शासन है। क्योंकि गणेश मराठों के प्रथम आराध्यदेव हैं। यहाँ पर गणेश की द्विभुजी, त्रिभुजीय, चतुर्भुजीय तथा अष्टभुजीय प्रतिमाएँ भी उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ शास्त्र सम्मत हैं तो कुछ मौलिक।

बुन्देलखण्ड संग्रहालय में उपलब्ध एक प्रतिमा में गणेश का अत्यधिक सहज रूप उपलब्ध है जिसमें वे एक हाथ से मुख में लड्डू ग्रहण कर रहे हैं और दूसरे हाथ से अपने उदर को सहला रहे हैं। यह प्रतिमा नवीं शताब्दी की कलाशैली के समकक्ष है। कोंच तहसील के निकट गणेश के मंदिर में गणेश की एक नृत्य प्रतिमा उपलब्ध है जिसमें गणेश को नृत्यरत दिखाया गया है। इस अष्टभुजी प्रतिमा में गणेश को विभिन्न अस्त्रों के साथ-

साथ नाग और त्रिशूल लिये नृत्यरत मुद्रा में दिखाया गया है। गणेश इस प्रतिमा में कटि में कटिबंध और मेखला, गले में ग्रेवैयक, हाथों में भुजबंध, मणिबंध, केयूर और अंगद धारण किये दिखाई देते हैं।

कालपी के गणेशगंज मुहल्ले में स्थित गणेश मंदिर में गणेश की तीन विशिष्ट प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं। प्रथम गणेश मूर्ति लाल बलुआ पत्थर से निर्मित 12 इंच ऊंची तथा 8 इंच चौड़ी मूर्ति है। गणेश के सौम्य रूप को दर्शाती यह अत्यन्त सरल मूर्ति है। इसके ऊपर तीन नागफनों से युक्त छत्र सुशोभित हैं। द्वितीय गणेश मूर्ति संगमरमर की शांत प्रतिमा है जिसकी सूंड़ वक्राकार रूप में दाहिनी ओर अंकित है। यह मूर्ति 16 इंच ऊंची तथा 12 इंच चौड़ी है । पद्मासन में बैठी इस मूर्ति के सिर पर मराठाकालीन मुकुट अंकित है। हाथों में क्रमशः परसा, पुस्तक, अक्षमाला तथा वरद् मुद्रा में हस्त अंकित है। तृतीय गणेश मूर्ति श्वेत संगमरमर से निर्मित है। यदुम्बरी गणेश का एक हाथ वरद् मुद्रा में है तथा मस्तक पर त्रिपुण्ड का अंकन है। कहा जाता है कि इस मूर्ति की प्रतिष्ठा महारानी लक्ष्मीबाई ने की थी। इसकी ऊंचाई 14 इंच तथा चौड़ाई 8.5 इंच है।

गणेश की अन्य मूर्तियों में क्रमशः उरई राजमार्ग स्थित लक्ष्मीनारायण मंदिर में काले पत्थर से निर्मित मूर्ति है जिसमें गणेश को ऋद्धि-सिद्धि युक्त दिखाया गया है। उरई के मंसिल माता मंदिर में अष्टभुजी नृत्यरत गणेश की प्रतिमा है, इसे दसवीं शताब्दी का माना गया है।

बुन्देलखण्ड संग्रहालय में चतुर्भुजी गणेश की एक प्रतिमा है जो पर्यंक मुद्रा में अंकित हैं। यह प्रतिमा बालुका पत्थर से निर्मित है। बिहारीजी के मंदिर कालपी में प्राप्त गणेश प्रतिमा लम्बोदर रूप में है। इस चतुर्भुजी प्रतिमा में गणेश को परुष और कमल लिए हुए

दिखाया गया है। पातालेश्वर मंदिर कालपी में चतुर्भुजी गणेश वज्रासन मुद्रा में अंकित है। शिलाखण्ड पर उनके वाहन मूषक का विशिष्ट अंकन है।

पाहुलाल मंदिर कालपी में गणेश के कई विग्रह मिलते हैं। श्री गोपालराव वाकणकर के निजी संग्रह में मूषकासीन गणपति की प्रतिमा है जो काले पत्थर से निर्मित है। इस मूर्ति की शैली शारीरिक गठन के आधार पर दक्षिण भारतीय शैली से प्रभावित है।

अकबरपुर इटौरा से उपलब्ध त्रिभुजीय नृत्य गणेश की प्रतिमा उपलब्ध है जो वर्तमान समय में बुंदेलखण्ड संग्रहालय में है। माधौगढ़ से प्राप्त द्विभुजीय गणेश की प्रतिमा स्वाभाविक मुद्रा में दांये हाथ से मोदक ग्रहण कर रही है। गौरा पत्थर से निर्मित द्विभुजीय तांत्रिक गणेश की प्रतिमा जो डॉ. हरिमोहन पुरवार के स्वामित्व में है।

जालौन से प्राप्त चतुर्भुजीय गणेश की प्रतिमा जिसमें उनके कटिबंध के रूप में नागराज प्रयुक्त हैं, गणेश की इस अलंकृत प्रतिमा के अतिरिक्त रामेश्वरम् मंदिर माधौगढ़ से प्राप्त गणपति प्रतिमा में प्रभामंडल का भी अंकन किया गया है।

कोंच के पुरातात्विक उत्खनन में प्राप्त हुई ब्रह्मा की प्रतिमा जो चतुर्भुजीय थी किन्तु उसकी एक भुजा ही शेष है अन्य भुजायें खंडित हो चुकी हैं। दांये हाथ में श्रुवा है जो हवन में हवि के लिए प्रयुक्त किया जाता था। हाथों में कंगन और अलंकृत बाजूबंद अंकित हैं। प्रतिमा श्मश्रु तथा जटामुकुटयुक्त है। इसके अतिरिक्त ग्रेवैयक, जनेऊ, मणिबंध भी धारण किये है। लम्बी पुष्पमाल घुटने से थोड़ा ऊपर उठती हुई जाती है। लम्बे कर्णपाश गुप्तकालीन परंपरा को प्रदर्शित करते हैं। मूर्ति के नीचे दाहिनी ओर एक अनुचरी प्रदर्शित है जो एक घुटने के सहारे अंजुरी मुद्रा में अंकित है। आकृति की दृष्टि से मूर्ति दसवीं शताब्दी की मानी जा सकती है। ये प्रतिमा अपूर्ण होते हुए भी अपने में संपूर्णता समेटती

हुई एक चबूतरे के सहारे से टिकी हुई है।

गतियुक्त देव सूर्य को लोककला में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कोंच में टीले के ऊपर एक वृक्ष के नीचे लाल बलुए पत्थर से निर्मित सूर्य की एक खंडित प्रतिमा विद्यमान है जिसमे सप्ताश्व प्रदर्शित हैं। बुंदेलखंड संग्रहालय उरई में भी लोककला की मौलिक कृति के रूप में सूर्य देव अपने चतुर्भुजी स्वरूप के साथ सात अश्व वाले रथ पर विराजमान हैं। उनके दांयी और बांयी तरफ दो स्त्री आकृतियों का अंकन है। सूर्यदेव का प्रभामंडल अग्नि की लपटों से ज्योतित दिखाया गया है। अनुपात की अनुपस्थिति होते हुए भी कमल-कलिका युक्त यह प्रतिमा अद्भुत बन पड़ी है।

इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त व्याल, गंधर्व, यक्ष, गण, विद्याधर आदि मूर्तियां भी विशिष्ट महत्व रखती हैं। व्याल के गले में रूढ़िगत आयलों का अंकन करणखेरा की एक मूर्ति में मिलता है तथा चिल्ला मदारशाह में सिंह के आयल भी सजीव बन पड़े हैं। जनपद जालौन से विभिन्न दिक्पाल यथा- यम, कुबेर, इन्द्र, अग्नि आदि की प्रतिमाएँ भी उपलब्ध होती हैं।

शिव विग्रह :-मुख्य देव के रूप में शिव के लिंग विग्रह सर्वाधिक संख्या में उपलब्ध हैं। पंचमुखी महादेव मंदिर चुर्खी में स्थापित पंचमुखी शिवलिंग काले पत्थर से निर्मित है। इस शिवलिंग की भोगपीठ, भागपीठ तथा ब्रह्म पीठ तीनों काले पत्थर से ही निर्मित हैं। चारों मुखों के ऊपर पंचमुखी लिंग स्वरूप भी अंकित है। पंचमुखी लिंग में क्रमशः सद्योजात नामदेव अघोर तत्पुरुष तथा ईषान के मुखों का निर्माण किया गया है। इस मंदिर में शिव परिवार की प्रमुख देवी पार्वती का भी अंकन है। जिनके हाथ धारण मुद्रा में दिखाये गये हैं। वे केश मुकुट से सुसज्जित हैं।

सरावन में स्थित शिव मंदिर के गर्भग्रह में शिवलिंग का केवल रुद्रभाग ही अंकित है। आधारपीठिका के रूप में चारों ओर से फन उठाये एक सर्प अंकित है। यह शिवलिंग श्वेत संगमरमर से निर्मित है। कालपी के पातालेश्वर मंदिर में स्थापित शिवलिंग स्वयंभू शिवलिंग है। चारों दिशाओं में एक-एक मुख तथा पंचम मुख लिंग रूप में है। चारों मुखों का भाव शांत है यद्यपि पंचमुखी शिवलिंग में एक मुख अघोर को संहार मुद्रा में दिखाया जाता है। पाराशर मंदिर परासन में वेतवा के तटवर्ती मंदिर काले पत्थर द्वारा निर्मित पंचमुखी शिव स्थापित हैं। पंचमुखी शिवलिंग में चारों शीर्षों के ऊपर पांचवे मुख का भी अंकन किया गया है। जिसके केशों पर सर्प का अंकन किया गया है जो किरीट की भाँति शोभायमान है। अंकित नाग भी पंचमुखी है। सभी पांचों मुख के ललाट पर शिव का अग्निमंडित तृतीय नेत्र भी अंकित है। भागमंडल पर सूर्य अंकित है। पंचमुखी शिवलिंगों का प्रचलन राजपूतकाल से प्रारम्भ हुआ जो कि आठवीं से 13वीं शताब्दी के मध्य तक रहा। इसी प्रकार का लिंग विग्रह झांसी के छोटा गुंसाई मठ में भी पाया गया।

विष्णु विग्रह :-जनपद जालौन में वैष्णव धर्म को मानने वालों की संख्या बहुत अधिक है, इसी कारण अधिकांश मंदिरों में विष्णु के विभिन्न रूपों का अंकन मिलता है। लक्ष्मीनारायण मंदिर उरई में भगवान लक्ष्मीनारायण की मूर्ति है। इस मूर्ति को मूर्ति विज्ञान के अनुसार नारायण नाम से संबोधित किया जाता है, उनके चुतुर्भुज हाथों में क्रमश: पद्म, गदा, चक्र और शंख अंकित हैं। इसी मूर्ति के पास लक्ष्मीजी का भी अंकन है। गर्भग्रह के बाहरी ओर पक्षियों के राजा गरुड़ की प्रतिमा है जो स्थानक मुद्रा में है। पुरुषाकृति गरुड़ के दोनों बाजुओं पर सशक्त पंख अंकित हैं।

पाहूलाल मंदिर कालपी में भगवान विष्णु का विग्रह प्राप्त होता है जिनमें विष्णु को

मत्स्यावतार तथा नृसिंह अवतार के रूप में दिखाया गया है। मत्स्यावतार में विष्णु का अधोभाग मत्स्य तथा आधा भाग पुरुष आकृति का दिखाया गया है। विष्णु के मस्तक पर किरीट, गले में ग्रेवेयक, कटिबंध, बाँहों में केयूर और अंगद हैं। बाहों में क्रमशः चक्र, पद्म, गदा और शंख अंकित हैं। नृसिंह अवतार की प्रतिमा में विष्णु पद्मासन मुद्रा में हैं जिनकी गोद में हरिण्याकश्यप की देह है। उनके हाथों में विशाल अस्त्र दिखाई पड़ रहे हैं। पीठिका पर गरुड़ की पुरुषाकृति प्रणाम मुद्रा में अंकित है।

बटाऊलाल मंदिर कालपी में भगवान विष्णु की विशिष्ट मूर्ति है जिसमें उन्हें गरुड़ की सवारी करते हुए दिखाया गया है। इस प्रतिमा में भी गरुड़ स्थानक मुद्रा में अंकित हैं। यह विष्णु का अधोक्षज रूप है जिसमें उनके हाथों में क्रमशः गदा, शंख, चक्र और पद्म का अंकन है। लक्ष्मीनारायण मंदिर कालपी में अंकित भगवान विष्णु की प्रतिमा श्वेत संगमरमर की बनी हुई है। यह चतुर्भुज प्रतिमा लगभग डेढ़ फुट ऊंची है । उनके तीन हाथों में क्रमशः गदा, चक्र तथा शंख है चौथा हाथ वरद् मुद्रा में दिखाया गया है। इसी हाथ के नीचे एक मानव आकृति दिखाई गई है। बांयी ओर लक्ष्मीजी का अंकन है।

लक्ष्मीनारायण मंदिर कोंच में भगवान विष्णु की अत्यन्त सुन्दर काले पत्थर से निर्मित एक मूर्ति है जिसकी लंबाई 3 फुट 4 इंच तथा 2 फुट 3 इंच है। विष्णु की प्रतिमा कमल पीठिका पर अंकित है। विष्णु के हाथों में क्रमशः पद्म, गदा, चक्र और शंख का अंकन है। हाथों में अंकित इस क्रम के आधार पर यह प्रतिमा नारायण रूप की प्रतिमा है। विष्णु की यह स्थानक प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर है।

लक्ष्मीनारायण मंदिर जालौन में विष्णु की प्रतिमा नारायण रूप में है। इस प्रतिमा की विशेषता है कि नारायण अपने बांये हाथ में शंख के साथ ही माँ लक्ष्मी को भी धारित किये

हुए हैं। देवी द्विभुजी और चक्र कुंडल युक्त हैं। विष्णु का यह नारायण रूप गरुड़ पर आसनारूढ़ है। गरुड़ धावक मुद्रा में तथा पुरुष वेश में है। गरुड़ के वक्ष पर नागमाला, नागकुंडल, हाथ, पैर तथा जंघा पर भी नाग अलंकरण से सुशोभित हैं।

राम-सीता मंदिर सैदनगर में स्थानक मुद्रा में पीतल की विष्णु की चतुर्भुज मूर्ति है जो गरुड़ की पीठिका पर अंकित है। गरुड़ स्वयं पीठिका पर आसीन है । वे पुरुष रूप हैं तथा पंखयुक्त हैं। उनके सिर पर मुकुट और कमर में कमरबंद है। चतुर्भुज विष्णु के हाथों में क्रमशः चक्र और शंख हैं। दाहिना स्वाभाविक हस्त वरद मुद्रा में तथा बांया कटि लंबित है। विष्णु को वैजयन्ती धारण किये हुए दिखाया गया है। सिर पर शंख आकार का किरीट मुकुट धारण किये हुए हैं। परिकर के ललाट में कीर्ति मुख का अंकन है। मूर्तियों पर दक्षिणी शैली का प्रभाव स्पष्ट है।

रामलला मंदिर उरई में विष्णु के कई रूपों का अंकन किया गया है। मत्स्यावतार रूप में विष्णु का अधोभाग मत्स्याकृति तथा ऊर्ध्वभाग विष्णु के चतुर्भुज रूप का है। कूर्मावतार में मूर्ति का अधोभाग कच्छप की पीठिका तथा विष्णु के चतुर्भुज रूप में है। वामनावतार लाल बलुआ पत्थर की बनी मूर्ति में भगवान विष्णु को छाताधारी बटुक के रूप में दिखाया गया है। कृष्णावतार रूप में कृष्ण को वंशी बजाते हुए त्रिभंग मुद्रा में दिखाया गया है। इनके शीश पर मोरमुकुट तथा गले में वैजयंती दृष्टव्य है।

विष्णु के कल्की अवतार में अश्व पर विराजमान कल्की रूप का अंकन है जिनके ऊपर छत्र भी है। इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त भी मंसिल माता उरई, बड़ी माता उरई आदि स्थानों पर विष्णु की कई प्रतिमाएँ स्थापित हैं। ये देव प्रतिमाएँ विशेष महत्व की हैं । मंसिल माता के मंदिर में प्राप्त एक खंडित मुद्रा में विष्णु अतिभंगी मुद्रा में दिखाये गये हैं

जिनकी कटि में कटिबंध, मेखला, गले में ग्रेवेयक , हाथों में भुजबंध तथा अंगद धारण किये हैं। नीचे चार आयुध पुरुषों का अंकन किया गया है। शिरीष चक्र और पार्श्व पट्टिकाओं में भी अलंकृत मूर्तियाँ हैं। यहाँ पर उपलब्ध एक नृसिंह प्रतिमा में नृसिंह को अत्यधिक क्रोधित मुद्रा में दिखाया गया है जिसमें उनका आधा शरीर सिंह के समान तथा आधा शरीर पुरुष के समान है। उनके दो हाथों में क्रमशः पद्म और गदा दर्शाया गया है। इसी मंदिर में उपलब्ध वराह प्रतिमा अद्‌भुत प्रतिमा है। इसमें एक पुरुषाकृति को वराहमुखी दिखाया गया है। जिसके बांये हाथ पर एक स्त्री आकृति का अंकन है जो वराह मुख से स्पर्श करती दिखती है। यह स्त्री प्रतिमा पृथ्वी की प्रतिमा है जिसे वराह ने भूलोक के देवताओं से बचाया था। चतुर्भुजी इस प्रतिमा में दोनों स्वाभाविक हाथ कटि अवलंबित है इसके अतिरिक्त दो हाथों में क्रमशः पद्म और गदा का अंकन है।

नृसिंह मंदिर उरई में भगवान नृसिंह की सफेद संगमरमर की प्रतिमा है जिसमें वे एक खम्भे पर आरूढ़ हैं उनक पैरों पर हरिणाकश्यप है जिसका वक्ष भगवान के दोनों हाथों द्वारा भेदित किया जा रहा है। यह मूर्ति 55 इंच ऊंची और 27 इंच चौड़ी है। भगवान नृसिंह का मुख सिंहाकृति और क्रोधित मुद्रा में है।

विष्णु प्रतिमाओं के साथ अनेक प्रकार की साधारण और असाधारण आयुध मूर्तियाँ भी प्राप्त होती हैं। जनपद जालौन में इस प्रकार की मूर्तियाँ यत्र-तत्र मंदिरों के बाह्य हिस्सों में और वृक्षों के नीचे आश्रय तलाशती सी प्रतीत होती हैं। इन मुख्य मूर्तियों के अतिरिक्त जनपद में कई अन्य देवी-देवताओं की भी मूर्तियाँ भी उपलब्ध हैं।

कालपी के पाहुलाल मंदिर में रावण की प्रतिमा का अंकन मिलता है। रावण को

बहुभुजीय और दसशीष दिखाया गया है।

इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त बच्चों के खिलोनों के रूप में बहुसंख्यक मूर्तियाँ भी प्राप्त होती हैं।

जनपद जालौन में उपलब्ध जैन प्रतिमाएँ

इस जनपद में जैन प्रतिमाएँ अतिअल्प संख्या में हैं। फिर भी जैन प्रतिमाओं की उपलब्धता सिद्ध करती है कि जनपद में जैन धर्म लोकप्रिय था । वर्तमान करणखेड़ा मंदिर में आराधना मंडप में स्थित एक शिलाखण्ड पर स्थानक एवं नग्न पुरुष आकृति है जिसके हाथ-पैरों में बेल चढ़ती अंकित है । इस प्रतिमा के ऊपर गजांकन स्पष्ट है। जो स्पष्ट करता है कि ये बाहुबली की प्रतिमा है।

रूरा-जत्ती ग्राम में भी एक जैन मंदिर है जिसमें महावीर स्वामी की काले पत्थर की प्रतिमा है । यह प्रतिमा 70 सेन्टीमीटर ऊंची तथा 55 सेन्टीमीटर चौड़ी है। इसकी पीठिका पर सम्वत् 1547 अंकित है।

गंगा-जमुनी एक मूर्ति में शान्तिनाथजी पद्मासन मुद्रा में हैं। इस प्रतिमा के मुख पर शांति के भाव हैं साथ ही आभामंडल का अंकन भी है। पीठिका पर बना हिरण चिह्न शान्तिनाथजी का धर्म चिह्न है। मूर्ति के दांई ओर बांई तरफ चँवरधारिणी स्त्री का अंकन है।

रूराजत्ती से एक देवी प्रतिमा प्राप्त हुई है। श्वेत संगमरमर से निर्मित यह प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर है। यह मूर्ति 30 सेमी ऊंची तथा 22 सेमी चौड़ी है। इस प्रतिमा के ऊपर एक नागछत्र भी दृष्टव्य है। यह प्रतिमा जैन देवी पद्मावती की है।

कालपी में स्थित दिगम्बर जैन मंदिर में अनेक विशिष्ट मूर्तियाँ उपलब्ध हैं, जिनमें

पार्श्वनाथ और शांतिनाथ मुख्य हैं। ये पाषाण प्रतिमाएँ हैं। धात्विक प्रतिमाएँ भी इस मंदिर में उपलब्ध हैं। भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा के ऊपर अनेक फणों वाला सर्प है। पीठिका तथा चरण चौकी पर भी सर्प लांछन अंकित है। यह मूर्ति 21 सेन्टीमीटर ऊंची तथा 23 सेन्टीमीटर चौड़ी है। 15वीं शताब्दी में निर्मित इस मंदिर में स्थापित यह मूर्ति ध्यानमुद्रा में है। यह कलाकृति अति बहुमूल्य होने के कारण कलाकृति एवं पुरासंपदा विभाग की पंजीकरण संख्या जेएलएन.यू.पी./183 द्वारा पंजीकृत है। ध्यानमुद्रा में दर्शाती यह मूर्ति काले पत्थर द्वारा निर्मित है।

पार्श्वनाथ की एक अन्य प्रतिमा श्वेत संगमरमर द्वारा निर्मित है। इस मूर्ति के सिर पर सप्तसर्पों का छत्र है। चरण चौकी पर अस्पष्ट लेख है। इस मूर्ति का समय 16वीं शती का निश्चित किया गया है। 32 सेमी ऊंची तथा 20 सेमी चौड़ी इस मूर्ति की पंजीकरण संख्या जेएलएन.यू.पी./173 है।

जैन तीर्थंकर शंतिनाथ की प्रतिमा उनके लांछन हिरन से स्पष्ट होती है। इस मूर्ति की पीठिका पर भी अस्पष्ट लेख है। 16वीं शती की इस मूर्ति की ऊंचाई 33 सेमी तथा चौड़ाई 27 सेमी है। इसकी पंजीकरण संख्या जेएलएन. यू.पी./ 169 है। एक अन्य प्रतिमा भी उपलब्ध है, जो शांतिनाथ की है। लांछन हिरण की पीठिका पर अंकित इस प्रतिमा की ऊंचाई 26 सेमी तथा चौड़ाई 27 सेमी है। पंजीकरण संख्या जेएलएन.यू.पी./ 179 है।

इस मंदिर में धात्विक प्रतिमाएँ भी उपलब्ध हैं। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ऋषभनाथ की प्रतिमा, जो ध्यानस्थ मुद्रा में है। ऋषभदेव सिंहासन पर विराजमान हैं। उनकी प्रतिमा के दोनों ओर दुंदुभी बजाता हुआ देव, घट लिये हुए हस्ति और माला

तथा चमरधारी विद्याधर अंकित हैं। चरण चौकी पर सिंह तथा चक्र बने हैं। नीचे की ओर ऋषभदेव का लांछन वृषभ अंकित है। सुसज्जित पीठिका के नीचे का आसन भी अत्यधिक सुसज्जित है। उसके दोनों ओर दो-दो स्त्री आकृतियों के अतिरिक्त उपासक एवं उपासिकाओं का भी अकंन है। यह प्रतिमा 13वीं शती की है। इसकी पंजीकरण संख्या जेएलएन.यू.पी./170 है।

इसी मंदिर के पूर्व में श्वेताम्बर जैन मंदिर स्थित है जिसमें भगवान शांतिनाथ की धातुमूर्ति है। यह प्रतिमा 1511 ईसवी की है। जनपद जालौन में बौद्ध मूर्तियों की अनुपलब्धता है। केवल पाहूलाल मंदिर कालपी में तथा रामलला मंदिर कोंच में विष्णु के अवतार रूप में बुद्ध की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। इसके अतिरिक्त बुंदेलखण्ड संग्रहालय में बुद्ध की पद्मासन मुद्रा में एक प्रतिमा प्राप्त हुई है।

सन्दर्भ सूची

1. भारतीय मूर्तिकला : डॉ. आर.एन. मिश्रा , पृ. 33

2. भारतीय वास्तुशास्त्र : डॉ. डी.एन. शुक्ल , पृ. 392

3. शुक्रनीति 4/9/36

4. अष्टाध्यायी 5/3/96

5. भारतीय स्थापत्य : डॉ. डी.एन. शुक्ल

6. प्रतिमा विज्ञान : डॉ. डी.एन. शुक्ल , पृ. 35

7. ऋग्वेदिक कल्चर : ए. सी. दास, पृ. 145

8. षडविशं ब्राह्मण 5-10

9. प्रतिमा विज्ञान : डॉ. डी.एन. शुक्ल , पृ. 42

10. श्वेताश्वर उपनिषद 4/19

11. महाभाष्य 45

12. भारतीय मूर्तिकला : डॉ. आर. एन. मिश्रा , पृ. 35

13. भारतीय स्थापत्य : डॉ. डी.एन. शुक्ल , पृ. 405

14. प्रतिमा विज्ञान : डॉ. डी.एन. शुक्ल , पृ. 45

15. समरांगण सूत्रधार 40/13

16. भारतीय स्थापत्य : डॉ. डी.एन. शुक्ल , पृ. 415

17. भारतीय स्थापत्य : डॉ. डी.एन. शुक्ल , पृ. 445

18. प्रतिमा विज्ञान : डॉ. इन्दुमती मिश्र , पृ. 129

19. अग्निपुराण 46/1

20. प्रतिमा विज्ञान : डॉ. इन्दुमती मिश्र , पृ. 130

21. भारतीय स्थापत्य : डॉ. डी.एन. शुक्ल , पृ. 407

22. प्रतिमा विज्ञान : डॉ. इन्दुमती मिश्र , पृ. 263

23. ईषान गुरुदेव पद्धति , प्र. 149

अष्टम् अध्याय

जनपद जालौन में उपलब्ध चित्रकला

है– भयजीत नामक एक धर्मात्मा राजा था। उसके राज्य में सभी प्रसन्न थे। एक दिन एक ब्राह्मण राजदरबार में आया और बोला आपके राज्य में सत्य में पापाचार है अन्यथा मेरा पुत्र अकाल मृत्यु से कैसे मरता। कृपया मेरा पुत्र उस लोक से लौटा लाइए। यम की अस्वीकृति से युद्ध हुआ। यम की हार हुई। ब्रह्मा जी प्रगट हो कर बोले राजन ! जीवन और मृत्यु तो कर्मवश है। यम का इसमें क्या दोष, यदि तुम बालक जीवित चाहते हो तो इसका चित्र खींचो मैं इसमें जान डाल देता हूँ। राजा ने वैसा ही किया, पुत्र जी उठा। ब्रह्मा जी ने पुनः कहा–यह संसार की प्रथम चित्र रचना है अब तुम देवस्थपति विश्वकर्मा महाराज के पास जाओ और चित्रकला की शिक्षा लो।

विष्णुधर्मेत्तर पुराण के अनुसार चित्रोत्पत्ति के विषय का आख्यान नर नारायण से संबंधित है। मार्कण्डेय ने कहा कि चित्र शास्त्र का निर्माण स्वयं नारायण ने किया। कथा है कि बदरिकाश्रम में नर – नारायण नामक दो ऋषि तपस्या कर रहे थे। देवताओं के राजा का सिंहासन ज्यों ही डोला वैसे ही अप्सराएँ ऋषियों का तपभंग करने चली आईं। कामातुरा अप्सराएँ आश्रम में ही विचरण कर रही थीं। नारायण ऋषि उनकी मनोकामनाओं को समझ गए. उन्होंने सहकार का रस लेकर एक बड़ा सुंदर चित्र रच दिया। इस मोहिनी को देख कर सारी अप्सराएं शर्मिंदा हो गईं और स्वर्ग लौट गईं। नारायण रचित इस अप्सरा का नाम उर्वशी रखा गया। नारायण ने चित्र का जो अद्भुत कार्य कर दिखाया वह यहीं नहीं रुका बल्कि उन्होंने इस विद्या को विश्वकर्मा को सौंपा ताकि वे इस विद्या को बढ़ा सकें।

ग्राह्यामास स तदा विश्वकर्माणमच्युतम्॥

प्राचीन भारत के इतिहास पर दृष्टिपात से चित्रकला का विकास स्पष्ट होता है। मौर्यकालीन और बौद्ध भारत के विभिन्न संदर्भों से स्पष्ट होता है कि चित्रकला को

नागरीय जीवन में उत्कृष्ट स्थान प्राप्त था। चित्रकला प्रत्येक नगर की शोभा होती थी।

वात्स्यायन के कामसूत्र में विवरण मिलता है कि प्रत्येक नागरिक के घर में चित्रलेखा और चित्रवर्णों का करण्डक उपलब्ध था।

चित्रों के उपकरण के रूप में मुख्यतः लेखनी, वर्तिका, चित्राधार, लेप दृष्य आदि का उपयोग होता था।

चित्र की प्रमुख शैलियाँ हैं नागर, द्राविण, बेसर, व्यन्तर, कलिंग आदि।

प्रमुख शैलियाँ तीन हैं :-

1. बौद्ध

2. हिन्दू

3. मुगल।

हिन्दू शैली से तात्पर्य पूर्व मध्यकालीन एवं उत्तरकालीन शैली दोनों से है। उत्तर मध्यकालीन को राजपूत कला कहा गया है। इन शैलियों का वृतांत तारकनाथ जी के वक्तव्यों से स्पष्ट हो सकता है। इनके अनुसार बुद्ध चित्रकला की तीन शैलियाँ थी देव शैली, यक्ष एवं नाग शैली।

मध्यकाल की कृतियों में राजपूत एवं मुगल कला शैली है। इनकी उपचित्रशैलियों को विद्वानों ने कलम के नाम से पुकारा है। आधुनिक विद्वानों ने यथा पर्सीब्राउन इत्यादि ने चित्रकला के इतिहास की समीक्षा करके उसे दो भागों में बांटा है ई.पू. एवं ई.उत्तर। ई.पू. को प्रागैतिहासिक तथा ऐतिहासिक दो कालों में विभाजित किया गया।

प्रागैतिहासिक चित्रकला के तो कोई भी साक्ष्य जनपद जालौन में प्राप्त नहीं होते। हिन्दू कला 8वीं शती से 16वीं शती तक चलती रही। इन कलाकृतियों में 11वीं शती के लाल पत्र चित्रण 15वीं शती की जैन पाण्डुलिपियाँ 12वीं शती के एलोरा भित्ति चित्र और

उत्तर मध्यकाल की राजपूत कला शामिल है।

उत्तर मध्यकाल की प्रवाहित मुगल और राजपूत कला की धाराएँ समानान्तर बहती रहीं। राजपूत कला 19वीं शती तक चली और मुगल कला 18वीं शती से पहले ही सूख गईं। राजपूत कला पूर्णरूप से हिन्दू कला है। राजपूत कला का विख्यात केंद्र जयपुर था। यहीं से यह कला मुगल दरबार और निकटवर्ती राज्यों में पहुँची। इसका और विकास कांगड़ा शैली में हुआ। इस कला में न तो कोई धार्मिक उपचेतना है न आध्यात्म का उन्मेष। पहाड़ी कला की प्रथम दृष्टया विशेषता इसकी अतिरंजना है। रेखाओं का चित्रण, वर्णों की तीक्ष्णता। इस चित्रकला का आश्रय धर्म नहीं वरन राज्याश्रय था।

राजपूत कला में जहाँ एक ओर कृष्ण भक्ति और कृष्णलीला के अंकन हैं वहीं ग्रामीण और सामाजिक स्थितियों के चित्र भी बहुतायत में मिलते हैं। विभिन्न राग-रागिनियों, ऋतुओं के चित्र भी इनमें शामिल हैं। राजपूत कला लोककला के रूप में भी खूब विकसित हुई।

राजपूत व मुगल काल की तुलना करने पर लगता है कि राजपूत कला जनतांत्रिक और आदर्श है वहीं मुगलकला राज्याश्रयी एवं यथार्थ है। चित्रकला की शुरूआत मुसलमानों में अकबर के समय से हुई। आईने अकबरी में चित्रकारों की सूची में 40 नाम हैं। चित्रकला जहांगीर के समय में चरम सीमा पर थी. मुगल कला को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं क्षुद्राकृति और पूर्णाकृति। इनमें से क्षुद्राकृतियों में दैनिक जीवन के विषय थे जैसे-मृगया युद्ध, आक्रमण, ऐतिहासिक वृत्तांत, दरबार, पौराणिक आख्यान, पक्षी संसार तथा वनस्पति संसार आदि। यद्यपि मुगल काल की मूल चेतना फारस आदि देशों से आई थी तब भी देहली, पटना, लखनऊ, कश्मीर आदि में

विशिष्ट विशेषताओं वाली कलम का प्रयोग किया गया है।

पूर्णाकृति की शुरूआत भारत में उषा अनिरुद्ध प्रकरण से होती है जिसमें अनिरुद्ध की पूरी तस्वीर बना कर इस परंपरा का श्रीगणेश हुआ था। पौराणिक आख्यानों में इसके अतिरिक्त उर्वशी के जन्म का आख्यान, नग्नजित के चित्रलक्षण का कथानक इन सब आख्यानों से पूर्ण आकृति के चित्रों का विवरण मिलता है। मुगल काल में यही विधा शबीह नाम से जानी गई।

जहाँगीर को चित्रों का अत्याधिक शौक था, जहाँगीर की मित्रता ओरछा के महाराज वीर सिंह जूदेव से थी। बुंदेली कला पर मुगल चित्रशैली का प्रभाव यत्र – तत्र दिखाई पड़ता है। उसकी पृष्ठभूमि में इस प्रकार का निकट संपर्क ही रहा होगा।[3]

बुंदेल खण्ड में ही नहीं वरन् प्राचीन ग्रंथों में चित्राधार के रूप में पटबंधन, पट्टबंधन एवं कुड्यबंधन का प्रयोग ही उपयोगी बताया गया है–

पटे पट्टे कुडये वा चित्र सम्भवः।[4]

कुड्य भूमि बंधन का अर्थ है भित्ती चित्रों के लिए आवश्यक आधार। पट्टभूमि बंधन अर्थात काष्ठपट्टिका पर लगाया जाने वाला आधार जिससे काष्ठपट्ट चित्रांकन के लिए तैयार हो सके।

पटभूमि बंधन अर्थात– पट पर गोमय मिश्रित मृतिका से अथवा सफेदा का लेप ।[5]

बुंदेलखंड के अंतर्गत जिला जालौन में भित्ति चित्रकारी, पट (वस्त्र), पट (काष्ट पट्टिका) के अतिरिक्त कई अन्य उपादानों पर अँकित चित्र भी प्राप्त हुए हैं यथा हाथी दांत की पट्टिका, भोज पत्र, साधारण कागज, कांच धातु आदि पर।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण का आदेश है कि चित्रकार को शास्त्रों के आदेशों का पूर्ण पालन करते हुए भी अपनी बुद्धि से चित्रणीय व्यक्ति अथवा वस्तु के रूप, वेश तथा रंग का

अनुपात ठीक- ठीक करना चाहिए। देश, नियोग, स्थान, कर्म, आसन, शयनयान, वेष सभी प्रकार पूर्ण ध्यान देना आवश्यक है. जो चित्रकार सोते हुए को चेतना युक्त और मृत को चैतन्य रहित दिखा सकता है तथा चित्र में भी ऊँच-नीच का विभाव प्रदर्शित कर सकता है वही वास्तव में चित्रकार है। चित्र को देखने से चित्र हंसता हुआ, डरता हुआ, मुस्कुराता हुआ, श्वांस लेता हुआ, एक शब्द में सजीव सा दिखाई पड़ता है तभी चित्रकार का परम कौशल है।[6]

सुप्तं च चेतनायुक्तं मृत चैतन्य वर्जितम्।

निम्नोन्नतविभागं च य: करोति स चित्रावित्॥[7]

भारतीय मूल के प्रवासी चित्रकार हैदर रजा का कहना है कि -'मुझसे सवाल मत पूछो, मेरे चित्रों को देखो, रंग बोलते हैं वे बता देंगे जो जवाब तुम्हें चाहिए।'[8]

कला कोई प्रतिकृति तो है नहीं। अत: यह छवि चित्रों से भिन्न है, भारत में इसे योग साधना माना है। कला तो हमारे विचारों का दृश्य रूप है, वह हमारी कल्पना शक्ति, आदर्शप्रियता एवं सृजनशक्ति से युक्त है।[9]

प्रागैतिहास से ही चित्रकला के साक्ष्य मिलना प्रारंभ हो जाते हैं। प्रागैतिहासिक चित्रकला की खोज का श्रेय अग्रेंजों को ही जाता है। हमारी संस्कृति और कला को समझने की जिज्ञासा से प्रेरित होकर ही उन्होंने ये खोज की है। ज्ञात तथ्यों के आधार पर जॉन काकबर्न और आर्चिबाल्ड कार्लाइल को ही प्रथमत: शैलचित्रों की खोज का श्रेय जाता है। 1880 में इन्होंने मिर्जापुर के निकट विंध्य के शैलचित्रों को खोजा। उनमें सांभर, गेंडा और बारहसिंघे के चित्र प्राप्त हुए हैं।

1911 में मिर्जापुर में ही सोन की घाटी से प्राप्त चित्रित गुफाओं को सर्वप्राचीन निवास बताया जाता है।

रायगढ़ में कबरा पहाड़ के चित्रों की खोज हुई। अमरनाथ दत्त ने 1931 ई. में अपने अध्ययन ए.फ्यू. प्रीहिस्टोरिक रैलिक्स एण्ड दी एक पेंटिंग ऑफ सिंहनपुर, रामगढ़ स्टेट सी.पी. इंडिया में प्रकाशित हुआ। रायसाहब मनोरंजन घोष ने रॉक पेंटिंग्स एण्ड देयर एण्टिक्वीटीज ऑफ प्रीहिस्टोरिक एण्ड लेटर टाइम्स के नाम से एक लेख लिखा जिसमें होशंगाबाद, लिखनिया, कोहरबार, महररिया तथा विजयगढ़ के चित्र प्रकाशित किए।

स्टुअर्ट पिग्गट ने प्रीहिस्टोरिक इंडिया नामक प्रसिद्ध ग्रंथ में प्रागैतिहासिक चित्रों की विवेचना की। ल्योन हार्ड की पुस्तक प्रिमिटिव आर्ट में प्रीहिस्टोरिक आर्ट ऑफ इंडिया के नाम से लेख छपा जिसमें कुछ शैलचित्रों को हड़प्पा मोहनजोदड़ो से पहले का बताया।

भीम बैठका नामक स्थान जो होशंगाबाद-भोपाल के बीच के स्टेशन औबेदुल्लागंज के समीप दक्षिण में है। भीम बैठका की गुफाओं में करीब 475 चित्र प्राप्त हुए हैं। श्री वी.एस. वाकणकर को इन शैलचित्रों की खोज का श्रेय है। इन चित्रों में लाल, सफेद, हरा, नीला तथा गेरू रंग का प्रयोग है।[10] इन चित्रों में हाथी, गेंडा, चीता, भालू, जंगली, सुअर, गाय, बैल, भैंस, हिरण, बंदर आदि के चित्र हैं।

शैल चित्रकला केवल कला नहीं मनुष्य के विकास के सोपान हैं। इन चित्रों के माध्यम से आखेट करने वाले आदिम मानव ने न केवल संवेगों को बल्कि रहस्यमय प्रवृत्ति और जंगल के खूंखार प्रवासियों के विरुद्ध अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष को भी अभिव्यक्त किया है। इन चित्रों में घात-प्रतिघात की उत्तेजना, गति से परिपूर्ण हिरनों का सौंदर्य, नृत्य लय, मृत्यु की त्रासदी को विषय बनाया है ।[11]

पचमढ़ी से 45 मील दूर आदमगढ़ में भी शैल चित्र मिले हैं, जिनमें हाथी और

भैंसे के विशाल चित्र अंकित पाए गए।

इन शैलचित्रों का मुख्य विषय विभिन्न जानवरों का अंकन तथा मनुष्यों को शिकार करते दिखाया गया है, जिनके कारण पुरा पाषाणकाल के मनुष्यों द्वारा प्रयुक्त अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञान भी प्राप्त होता है आधिकारिक रूप से मोर, स्वास्तिक, त्रिकोण, त्रिशूल तथा चक्र जैसी आकृतियाँ प्राप्त हुई हैं। प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं:-

(1) इस युग के चित्र प्रतीकात्मक हैं।

(2) रेखाकृतियों का कम प्रयोग। कम रेखाओं द्वारा गति और भाव प्रदर्शन।

(3) प्राकृतिक रंगों का प्रयोग।

(4) मुख्यत: गेरू ,काले, लाल एवं सफेद रंग से चित्रण।

प्राचीन भारत के चित्रकला इतिहास में सिंधु सभ्यता के बर्तनों पर कुछ चित्रों का वर्णन है। इसके बाद विश्व प्रसिद्ध अजन्ता के चित्रों का विवरण मिलता है। जिस दीवार पर चित्र बनाए जाते थे उन्हें पत्थर के औजार से समतल बना कर विभिन्न लेपों से चिकना बनाते थे। गीले लेप पर ही रेखांकन किया जाता था तथा रंग भरे जाते थे। वाचस्पति गैरोला ने अजन्ता की चित्रावली को तीन भागों में बांटा है :-

(1) आलंकारिक

(2) रूपमैदिक

(3) वर्णनात्मक। [12]

बाघ (म.प्र.) की गुफाओं से भी विभिन्न चित्र उपलब्ध हुए हैं।

जैन धर्म से संबंधित पाण्डुलिपियों में सर्वप्रथम भोजपत्र, वस्त्र और कागज पर अंकित चित्राकृतियाँ प्राप्त हुई हैं, इन चित्रावलियों युक्त पुस्तिकाओं का समय 1100 से 1500 ई. है। इन जैन ग्रंथों में चटकदार एवं स्वर्ण रंग का बहुतायत में प्रयोग मिलता है।

15वीं शती कलाओं के पुनरुत्थान का समय माना गया है। मुगल काल के समय से चित्रकला का पुनरुत्थान प्रारंभ हुआ। दरबार की शैली के अतिरिक्त कला में जनसामान्य की रुचि जागी और मुगल साम्राज्य के पतन के बाद चित्रकला प्रांतों में बंट गई। मुगल शैली, राजस्थानी, गढ़वाली, कांद्रा , किशनगढ़, मेवाड़, गुजरात विभिन्न प्रकार की शैलियों का प्रादुर्भाव हुआ।

राजनीति या शासन पद्धतियां कलाओं को हमेशा से प्रभावित करती आई हैं। बुंदेलखंड के अंतर्गत आने वाले जिला जालौन के क्षेत्र में चित्रकला की बुंदेली शैली के दर्शन होते हैं। बुंदेली शैली में मुगल शैली, राजस्थानी शैली एवं मराठा शैली का मिश्रण प्राप्त होता है। विभिन्न शैलियों का मिश्रण होने के कारण बुंदेली कला एक दम अनूठी बन पड़ी है। यह कला बंधन रहित होकर मौलिकता युक्त है। बुंदेली शैली ने एक स्वतंत्र रूप ग्रहण कर लिया है। जिसका मूल आधार लोक कला है। अनन्त कुमार स्वामी ने तो राजस्थानी शैली के अंतर्गत ही बुंदेलखण्डी कला को माना है:-

Rajput paintings is the painting of Rajputana and Bundelkhand and the Punjab Himalaya. [13]

कुमार स्वामी का यह मत स्वीकारणीय नहीं है क्योंकि बुंदेली कला पर मराठा और मुगल शैली का भी प्रभाव है जो कि स्वाभाविक भी है। बुंदेलखंड का क्षेत्र राजस्थान की सीमा से लगा हुआ है। ये क्षेत्र मराठों के पहले मुगल आधिपत्य में था जिसके कारण ही बुंदेली शैली में सभी के तत्व आ गए हैं। कला के इन प्रकारों के शास्त्रीय बंधनों को थोड़ा ढीला करके बुंदेली कलाकारों ने लोककला पर विशेष ध्यान दिया इसी के कारण बुंदेली कल मौलिक बन पड़ी है। विषय वस्तु के रूप में प्रकृति अपने विकसित रूप में है ऋतुवर्णन, बारह मासा, पशु -पक्षी, पुष्प, वृक्ष,

नृत्यरत मोर, चक्रवाक युगल, हाथी, हिरण, सर्प आदि प्राकृतिक उपदानों के अतिरिक्त कार्यकलापों का वर्णन भी मिलता है।

बुंदेली कला की कुछ मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार दृष्टव्य हैं-

- गहरे चटकीले रंगों का प्रयोग।
- प्राकृतिक रंगों यथा हल्दी, चंदन, चूना, हल्दी चूना मिश्रित लाल रंग सिंदूर, नील, पत्तों से निर्मित हरा रंग आदि।
- चेहरे पर गलमुच्छों का अंकन।
- एक चश्मी चेहरे का अंकन।
- स्थापत्य, भवनों के सम्मुख चित्रों का प्रयोग।
- बारहमासा एवं रागमालाओं के चित्रण के साथ कविताओं का लेखन।
- धार्मिक चित्रों का बहुतायत में अंकन।
- आकृतियों को उभारने के लिए काले रंग का प्रयोग।
- हाशिए के लिए काले, लाल, पीले का प्रयोग।
- विरोधी रंग संयोजित प्रयोग।
- धार्मिक अंकन सर्वाधिक।
- लौकिक जीवन को धर्म से जोड़ने का प्रयास।
- साहित्याधारित चित्रों का अंकन यथा केशवदास की नायिका भेद, बिहारी की सतसई, मतिराम का रसराज आदि पर आधारित।
- आश्रयदाताओं के व्यक्तिगत चित्र
- घरेलू जीवन का कम चित्रण।
- कथात्मक अंकन।

– लोक चित्रण का सरल एवं सहज प्रभाव।

बुंदेली कला की उपरोक्त विशेषताओं को जनपद जालौन ने आत्मसात कर लिया और संजो के रखा निम्नांकित स्थानों में :-

– कुकुरगांव स्थित रोपण गुरु का मंदिर जो कि चित्रकला का एक संग्रहालय है।

– जालौन में बम्बई वाला मंदिर।

– बुंदेलखंड संग्रहालय में उपलब्ध चित्र।

– अयोध्या प्रसाद कुमुद के व्यक्तिगत संग्रहालय में उपलब्ध चित्र।

सम्पूर्ण चित्रकला को मुख्यत: तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है:-

1. धार्मिक चित्र कला
2. धर्मेत्तर चित्रकला
3. लोक चित्रकला

1. धार्मिक चित्र कला– धर्म समाज की सुदृढ़तम भित्ति है जिसे पौराणिक कथाओं, स्वतंत्र देव चित्र, तंत्रविद, मंत्र चित्र आदि के रंगों से आस्था और विश्वास की कूची ने सुसज्जित किया है और जनजीवन इन्हें अपने जीवन में उतारने का प्रयास करता है।

धार्मिक चित्रकला के प्रमुख भेद इस प्रकार हैं

1. पुराख्यान आधारित।
2. स्वतंत्र देवआकृतियाँ।
3. ज्योतिषाधृत चित्रावली।
4. तान्त्रिक चित्रावली
5. परम्परात्मक पूज्य चित्रावली।

पुराख्यानाधारित चित्र – पुराण, महाभारत , उपनिषद, रामायण कथा, पंचतंत्र

की कथाओं पर आधारित चित्र ही इस शीर्षकान्तरगत उपलब्ध हैं। यह प्रकार बहुल रूप में पाया जाता है जो कि यहाँ के लोगों की धार्मिक आस्था को दर्शाता है। सर्वाधिक दृश्यांकन कृष्ण एवं राम की कथाओं के हैं। बुंदेलखंड संग्रहालय में लगभग 70 अंकन रामायण आधृत हैं जिनमें बाल काण्ड, अयोध्या कांड तथा लंका कांड के अंकन हैं।

जे.एल.एन/यूपी/1435 में लंका कांड के दृश्यांकन में बाणों की बारिश के बीच रावण के दसों सिर भूमि पर गिरे हुए हैं । प्रत्येक सिर पर मुकुट है, कर्णाभूषण कानों में सुशोभित हैं। रावण के शरीर को भी भूमि पर अवस्थित दिखाया है। गिरे हुए मुखों में गलमुच्छों का अंकन है । राम को रथारूढ़ धनुष लिए हुए दिखाया गया है। भील तथा वानरों का भी अंकन है। रंगों का सुंदर संयोजन जिनमें लाल, सफेद, नीला, काला तथा लाल रंग प्रमुख हैं। इस अंकन का आधार रामचरित मानस आधृत निम्नांकित चौपाई है–

ले सर बाहु चले नाराचा। सिर भुज हीन रुण्ड महिनाचा॥ (6/102/2)

जे.एल.एन/यूपी/1417 में लंका में मेघनाथ द्वारा हनुमान को ब्रह्मपास द्वारा बंदी बनाए जाने का दृश्य अंकित है। सोने की लंका को पीले रंग से चित्रित किया गया है। रावण को बीस भुजी, दशमुखी दिखाया गया, इनके अतिरिक्त सात पुरुष आकृतियों का अंकन किया गया है, परकोटे के चारों तरफ हरे-भरे वातावरण का चित्र है ये कलाकृतियाँ लगभग 200 वर्ष प्राचीन हैं। ये चित्रित रामायण के पृष्ठ हैं जिनमें बीच में अंकन है तथा आसपास लेख।

कुकुरगांव में रोपण गुरु के मंदिर के ब्रेकेट्स पर पुरास्थानों के विविध अंकन-कृष्ण लीला के अधिकांश अंकन यथा जन्म पूतना बध, वकासुर वध अमलार्जुन उद्धार, कालीनाग का उद्धार आदि इसके अतिरिक्त गरुड़पुराण वर्णित नारकीय यातनाओं का भी

चित्रण है। जैसे कि सर्पदंश, यमदूतों द्वारा आरे से एक व्यक्ति के सिर को काटा जाना, तेल के कड़ाहे में आदि यातनाओं का अंकन। चित्रों से भाव की अभिव्यक्ति- इन्हें देख कर सहज रूप से ही नरक का भयावह वातावरण साकार हो उठता है।

रामायण की कथानुसार हनुमान का पर्वत उठाए हुए अंकन, रामसीता हनुमान सहित सिंहासनासीन इन आकृतियों में मराठी तथा राजस्थानी दोनों शैलियों का प्रभाव दृष्टव्य हैं। इनकी वेशभूषा के अतिरिक्त पूर्ण अंकन बुंदेली शैली में है।

स्वतंत्र देव आकृतियाँ- हर साध्य के लिए साधना आवश्यक है। साध्य अगोचर हो तो भी तूलिका व रंग रूपी साधन से साध्य को गोचर कर सकते हैं। अपनी इच्छानुरूप नए रूप नए आयाम दे सकते हैं। मनुष्य ने परमात्मा और आत्मा की अवधारणा को स्वीकार करते हुए परा और प्राकृतिक शक्तियों को मानवीकृत कर दिया और विशेषता के लिए विशेषण जोड़ दिया, जैसे कि लम्बोदर, चतुर्भुज, पीताम्बर, दशानन आदि। जनपद जालौन में चित्रकला का यह विभेद सम्पूर्णता के साथ दृष्टिगोचर होता है। राम कृष्ण, विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य, चंद्र आदि सभी देवों के अंकन प्राप्त हैं।

राम, कृष्ण तो विष्णु के अवतार रूप हैं। कृष्ण के दो चित्र हैं जिनमें वे राधा के साथ हैं । जे.एल.एन/यूपी/1512 में राधा मानिनी नायिका भी भांति पाषाण शिला पर बैठी है। कृष्ण उनके पैर पकड़ कर मनाते से दिखाई दे रहे हैं। पास ही यमुना प्रवहमान है। चारों और हरीतिमायुक्त वातावरण है। कृष्ण व उनकी प्रिया दोनों आभूषणों से युक्त सुंदर वेष में हैं। राधा के हाथ में एक पुष्प अंकित है। कृष्ण का मोर मुकुट अति सुंदर है।

एक अन्य चित्र नं. जे.एल.एन/यूपी/1510 में राधाकृष्ण की युगल छवि अत्यधिक

मोहक है इस चित्र में राधा कृष्ण की बांसुरी पकड़े हैं और कृष्ण राधा का हाथ पकड़े हुए हैं, दोनों का स्थानक स्थान है। चित्र में प्राकृतिक रंगों का प्रयोग है।

जे.एल.एन/यूपी/1512 तथा जे.एल.एन/यूपी/1510 दोनों कलाकृतियाँ हाथी दांत पर चित्रांकित हैं।

रोपण गुरु के मंदिर में भगवान विष्णु के विभिन्न अवतारों का अंकन है। राधा, मत्स्य, बराह, वामन, कुर्म, राम, कृष्ण, कल्कि आदि दस अवतारों का अंकन। वहीं एक ब्रेकेट में सुभद्रा जी तथा जगन्नाथ जी का अंकन। इनके अतिरिक्त शिव के विभिन्न रूप हैं। एक दृश्य में शिव किंचित अभंग मुद्रा में पद्मासन में जटाओं से गंगा प्रक्षालित हो रही है। दायीं और पार्वती का अंकन जो गजमुखी चतुर्भुजी बालक को शिव की ओर बढ़ा रही हैं। पार्वती की केश सज्जा तथा वस्त्र मराठी पुट लिए हुए हैं। शिव ब्रह्मचर्य अवस्थित हैं, पार्वती का शिला पर अंकन पार्श्व व पृष्ठ में पर्वत शिखरों का अंकन। बाईं और नंदी के अतिरिक्त एक गण अंकित है जो एक हाथ में सर्प लिए है तथा दूसरे में त्रिशूल लिये है।

एक अन्य रूप में शिव अकेले हैं किन्तु गर्दन और सिर पर सर्प का अंकन है। मस्तक पर चंद्र तथा गंगा प्रभाव का अंकन साथ ही समुद्र का अंकन जो चित्र को एक विचित्र प्रभाव दे रही है।

ज्योतिषाधृत – ज्योतिषाधृत चित्र अधिकांशत: ज्योतिषियो द्वारा रचित जन्मकुण्डलियों आदि में प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के अंकन में ग्रहों और राशि चित्र बहुतायत में प्राप्त हैं। अपने भविष्य को देख पाने की इच्छा हर व्यक्ति में होती है इसीलिए इस विद्या को यहाँ खूब प्रश्रय मिला है अत: इससे सम्बन्धित चित्र भी बहुतायत में मिले हैं। इस प्रकार के डिजाइन में प्रयुक्त रंग हल्दी, नील, चूना व हल्दी से मिश्रित लाल रंग , पत्तियों से बना

हरा रंग मुख्य है। जन्म कुण्डलियों को दोनों ओर मोटी रेखा द्वारा सीमाबंधित किया जाता था तथा राशि चित्रावली में मकर, धनु, मीन, सिंह, मेष, कुंभ, तुला, मिथुन, वृश्चिक, कन्या, वृषभ आदि बारह राशियों का चित्रांकन है। बुंदेलखंड संग्रहालय में उपलब्ध धनु राशि का चित्रांकन अति विशिष्ट है। इसमें ऊर्ध्व अधोभाग पुरुष का संलग्न अग्रद्विपाद गौ पाद से मिलते हैं तथा पश्चद्विपाद एवं पुच्छ अश्व के, दोनों हाथों में धनुष धारित प्रदर्शित है। धनु स्वरूप पुरुष के मुखमंडल पर दाढ़ी एवं मूंछ का अति विशिष्ट अंकन ग्रीवा तथा वक्ष पर सुंदर हार तथा सिर पर पगड़ी का अंकन है। इसी प्रकार कुंभाकन में उसे पुरुष राशि दर्शाते हुए एक पुरुष आकृति के कंधों पर कुंभाकन।

तुला को भी पुरुष राशि स्वीकार हुए एक पुरुष के हाथ में तुला पकड़ा दी है। कन्या राशि का अंकन भी विशिष्ट है इसमें एक नाव पर एक कन्या का अंकन है। नाव के अग्रभाग में एक कुंभ भी दृष्टव्य है ।सम्भवतः कन्या को शुभांकनों में स्वीकारते हुए नदी में नाव की सी स्थिति को दर्शाया है। भंवर में फंस जाने पर भी वह घड़े की सहायता से नदी पार कर सकती है।

- इन दृश्यों के अतिरिक्त मृगरथारूढ़ हिमांशु का अंकन, इस दृश्य को काले रंग से चित्रित किया गया है।
- एक अन्य आकृति जिसमें सूर्य को सप्ताश्वारूढ़ दर्शित किया गया है।
- भौम स्वरूप मंगल का अंकन जिसमें उन्हें पगड़ी पहने दिखाया है। यह चित्र लाल रंग से चित्रित है।
- राहु का शीश विहीन अंकन, यह चित्रण काले रंग से किया गया है।

तांत्रिक चित्रावली- तंत्र शब्द का प्राचीनतम उद्‌भव शिव के डमरू से माना गया

है। ततश्च इस पंथ का प्रचलन गोरखनाथ और मत्सेंद्रनाथ के समय से हुआ। वैसे तांत्रिक शब्द की व्याख्या राहुल सांस्कृत्यायन के गंगा पुरातत्त्वांक में हैं जिसमें उन्होंने इसे मंत्र का एक प्रकार बताया है उन्होंने मंत्र के तीन प्रकार बताये हैं-

1. **तांत्रिक**- परंपरागत मंत्र शब्द जो साधना विशेष के आधार रूप हैं। जैसे ऊँ हीं हीं आदि एकाक्षरी शब्द।
2. **व्यक्ति विशेष परक**-जिसमें किसी सिद्ध या पीर की आन दी जाती है।
3. **पंडित वर्ग के परंपरागत वेद मंत्र**- इस प्रकार के मंत्र या तो इच्छित वस्तु पाने हेतु अथवा दुष्प्रभाव या घटना को रोकने के लिए प्रयुक्त किया जाताहै।

सर्प वशीकरण मंत्र :-

सर्पपाप सर्प भद्रम ते गच्छ सर्प महाविध,

जनमेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीक वचनं स्मर।

मंत्र सिद्धि में गुरु का स्थान अपेक्षित है।

मंत्रचित्र :- शब्दों के आरोह अवरोह का उच्चारण मंत्र है और इसी का चित्रण मंत्र चित्र।

मंत्र के विषय में काफी मतभेद है। मंत्र वे शब्द हैं जिन का प्रयोग वैदिक ऋचाओं के लिए किया जाता है। मंत्रों में ध्वनि और शब्द की मान्यता उनके आरोह व अवरोह से निर्धारित होती है। मंत्र के लिए आचार्य कौत्स का मत है कि -

अनार्थकाहिमंत्रा (मंत्र अर्थहीन होते हैं)

वहीं सुप्रसिद्ध निरूक्तकार मास्क का मत है कि-

अर्थवंता शब्द समान्यित: (शब्द सामान्य रूप से अर्थवान होते हैं)

मंत्रों की विशेष प्रकार की लिखाई साथ ही उस यंत्र या मंत्र विशेष के अधिकारी का

चित्रण मंत्र चित्र के अंतगर्त है, क्योंकि (Calligraphy) भी चित्रकला का एक अंग है। इन चित्रों (मंत्र) पर प्रतीकात्मक अंकन भी है। बुंदेलखंड संग्रहालय में इस प्रकार के विभिन्न अंकन दृष्टव्य है, यथा हनुमत यंत्र, गणपति यंत्र आदि।

सिद्ध हो जाने पर मंत्र यंत्र का रूप ले लेते हैं। तथापि यंत्र शब्द सही रूप में उन उपकरणों के लिए उपयुक्त होता है जिनमें रखकर ये यंत्र शरीर में बांध लिए जाते थे, जो कि स्वर्ण, रजत अथवा ताम्र धातु से बनाए जाते थे। मंत्रों में शब्द और अंक दोनों का ही प्रयोग होता है। यथा तिजारी मंत्र-

0	71	71
0	71	71
0	71	71
0	00	00

परंपरागत पूज्य अंकन- बुंदेली शैली का आधार ही लोक कला है जो कि परंपराओं से अनुप्राणित है- *महाजनों येन गताः स पंथा।*

अर्थात महान लोग जिस पथ पर चलें उसी पथ का अनुकरण करना चाहिए। बुंदेली प्रथा है कि सभी बड़े आदरणीय हैं उन्होंने जो किया वही हम करें यही आकांक्षा परंपरा बन गई और आज तक परंपराओं का पालन हो रहा है। लोक विश्वास ही परंपरा के स्वरूप में मुखर है। लोक विश्वास को तीन भागों में बांटा है-

1. अभिचार (टोना)
2. मूढ़माह अंधविश्वास
3. शगुन - अपशगुन

परंपरात्मक पूज्य चित्र के माध्यम रूप कागज और भित्ती ही है। इन पर आलेखन अनेक प्रकार से होता है। विभिन्न पर्वों पर जैसे दीपावली, करवा चौथ, जन्माष्टमी, हरछट आदि पर विभिन्न प्रकार के चित्र अंकित करते हैं। जन्माष्टमी पूजन हेतु निर्मित एक पट्ट बुंदेलखंड संग्रहालय में देखा जो कि पूर्ण रूप से लोक परंपरा पर आधारित है। बाईं और देवकी-कृष्ण, बीच में शेषनाग की छाया में कृष्ण को ले जाते वासुदेव ततश्च यशोदा तथा लेटे हुए कृष्ण, कंस वध आदि का अंकन। सभी आकृतियाँ नितांत लोक शैली में हैं।

इनके अतिरिक्त बुंदेली कला का दूसरा वर्गीकरण अपने में कई विभेद छुपाए हैं, यह इस प्रकार है -

1. व्यक्ति चित्र
2. दैनिकावलोकन
3. प्राकृतिक
4. भावनात्मक
5. ज्यामित्तीय अंकन
6. कटवर्क चित्रावली
7. विचित्र चित्र

व्यक्ति चित्रों में व्यक्ति विशेष का चित्रांकन किया जाता है। यह चित्र समाज के विशिष्ट व्यक्तियों के होते हैं। अधिकांशत: राजा तथा राज परिवारों के अथवा जमींदारों के। जेएलएन /यूपी/ 1480 एक त्रिपुण्डधारी, खड्गधारी जमींदार का अंकन है। यह चित्र बैठी हुई आकृति का है। सिर पर पगड़ी तथा वेष धोती कुर्ता है। ये अंकन लगभग 100 वर्ष प्राचीन है। इसके अतिरिक्त एक दूसरा अंकन पी जेएलएन /यूपी/ 1461 में एक

राजसी वेषभूषा से युक्त पुरुष हिरन को केला खिलाते हुए प्रदर्शित है। उस आकृति के हाथ में सम्भवत: केले का गुच्छा है। नीचे एक हिरन का अंकन है। काले रंग से चित्रित इस चित्र में पुरुषाकृति के गाल पर गलमुच्छों का अंकन है, यद्यपि वेषभूषा विशेष प्रकार की है। इनके अलावा एक स्त्री आकृति का अंकन जो कि एक पत्रा पर अंकित है। इस चित्र के पास तात्यासाठे बेणुबाई शब्द अंकित है। सुगठित तथा सौम्य आकृति जिसके हाथ में फूल है। वेषभूषा तथा केशसज्जा मराठी तथा पार्श्व अंकन है। उपरोक्त सभी चित्र कागज पर चित्रांकित हैं।

दैनिकावलोकनः- कुकरगाँव रोपण गुरु के मंदिर में दैनिक जीवन से संबंधित लगभग हर क्रिया का अंकन है। प्रात:कालीन जागरण, स्नानादि, भोजन पकाना, ग्रहण करना, गौ दुग्ध प्राप्ति, पूजा योग आदि योग के तो 64 आसनों का अंकन है। यहाँ साधु अथवा योगी कौपीन धारी है। इसके अतिरिक्त अधिकांश सामाजिक पेशों से संबंध अंकन भी है, यथा राजगीर ईंटों को चुन रहा है, लोहार लोहे की भट्टी में लोहा गला रहा है तो बढई रथ का पहिया गढ़ रहा है। इन चित्रों से चितेरों के व्यवहारिक ज्ञान की झलक मिलती है।

प्राकृतिक चित्रण- इन चित्रों में प्राकृतिक दृश्यों का अंकन होता है। केशवदास के बारहमासा पर बने चित्र उरई में एडवोकेट अयोध्या प्रसाद कुमुद के संग्रह में चैत्र , बैसाख, पूस,माह, अगहन, क्वाँर, कार्तिक, सावन, भादों आदि के चित्र हैं। इनका अंकन केशवदास के कवित्तानुसार किया गया है। इन चित्रों में माह के रूप को वर्णित करने वाला कवित्त है। ततश्च चित्रों को दो या तीन भागों में दिखाया गया है। इन चित्रों के चितेरे हैं कोंच निवासी मंदन मिश्र। इन चित्रों पर उनके पौत्र श्री लक्ष्मणदास की मुहर लगी है। इनमें बुन्देली शैली की समस्त विशेषताएं मौजूद हैं।

भवनों का सम्मुख दृश्य, व्यक्तियों का पार्श्व अंकन, गहरे रंगों का प्रयोग, विरोधी रंगों का संयोजन, गलमुच्छ, फिचहा आदि।

एक चित्र में आषाढ़ का चित्रण करते हुए अंकित है-

'अध अषाढ़- पवन चक्र प्रचंड बल निचह्नं और चपल गति
पवन नभि - जति मतिमान ह्वतिन्ह की मति संन्यासी इति
भास होत एक आसनवासी सुखिन की ढोक है भये पंछियो
निवासी ऐहिसमैसेजे सोवन लियोसिया सहिन तीनाथलं।
कहि केसवदास असाढ़ चलुमैन सुन्यौ श्रुति गावहूँ।।'

इसके बाद के अंकन में बाईं ओर एक साधु का अंकन है। जैसा कि उपरोक्त में उल्लेख आया है। दूसरे दृश्य में एक स्त्री तथा पुरुष का अंकन है। पुरुष के एक हाथ में फूल तथा एक हाथ में माला है। स्त्री और पुरुष दोनों ही राजसी वेशभूषा में हैं। पृष्ठ भाग पर भवनों का सम्मुख दृश्य है।

भावात्मक अंकन :- मनुष्य का जीवन ही भावों की अभिव्यक्ति है। ये अभिव्यक्तियाँ विभिन्न रसों में व्यक्त होती हैं। अतः रसों का आधार तो भाव ही है। विभिन्न भावों पर आधारित चित्रों को इस प्रकार के चित्रों में रखा जा सकता है। इस श्रृंखला में राग-रागनियों के चित्र बनाये गए हैं। छह राग-रागनियों का संग्रह कुमुदजी के संग्रह में है, जिनमें इन रागों के गाये जाने के समय का अंकन है, तथा रागों का मानवीकरण है। रागों के नाम हैं राग आसावरी, केदारराग, डागिकारी रागिनी, रामकली रागिनी, ललित राग।

राग केदार की उल्लेखनीय पँक्तियाँ हैं-

'प्रिया विरह संताप नूसुसः ध्रूमराकृतिः केदाररागानूयाभोयं जुवा सर्वांग सून्दरः।।36।।

केदार रागिणी। लेखक वीरंनाम् ।'

चित्र में रात्रि बेला का अंकन स्वर्णमंडित अर्द्धचन्द्र, श्वेत छिटके हुए तारे, मंदिर की कुटिया, श्वेत गुम्बज, स्वर्णमंडित कलश एवं ध्वजदण्ड, रक्तिम आभायुक्त ध्वज, कपाटयुक्त खिड़की, कमलदल अलंकरण से युक्त कुटिया जिसके एक ओर रक्तिम फलयुक्त वृक्ष है। मृगछाला पर बहुतार लिए हुए साधक जिसके बगल में पोटली, प्याला व गंगाजली रखी है।

इन चित्रों में गहरे लाल, पीले तथ हल्के हरे तथा नीले रंग का प्रयोग भी दृष्टव्य है।

इन भावात्मक-रागात्मक चित्रों के अतिरिक्त एक प्रकार का अंकन है जो विशिष्ट एवं अत्यधिक प्रयोगित है, जिसमें ज्यामितीय आकृतियों का प्रयोग है। विभिन्न प्रकार के त्रिभुज, चतुर्भुज, शून्य वृत्त, पंचभुजी, षटकाणीय तथा इनसे निर्मित विभन्न आकृतियाँ जिनका प्रयोग मंदिर की भित्तियों को सजाने-संवारने में किया जाता है।

ज्यामितीय अंकन यहाँ की कई छतरियों में है। जालौन के बम्बई वालों के मंदिर में तथा रोपड़ गुरु के मंदिर में बहुतायत में उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त पूजा हेतु बनाये जाने वाले विभिन्न पट्टों के किनारे भी ज्यामितीय अलंकरणों से सुसज्जित रहते हैं। बम्बई वालों के मंदिर का अलंकरण तांतिया भाई नामक कलाकार ने किया है।

चित्रकला के सभी वर्गों के अतिरिक्त यहाँ पर चित्रकला का एक विशेष प्रकार उपलब्ध हुआ है। इस प्रकार को **स्टेन्सिल** प्रकार कहा जा सकता है। इस प्रकार के चित्रों में पहले कागज पर बनाकर उन्हें बारीकी से काटा गया है। इन चित्रांकनों में अत्यधिक कुशलता और एकाग्रता की आवश्यकता रही होगी। इस प्रकार के लगभग 14 चित्र कुमुदजी के संग्रह में है।

– एक पुरुष आकृति शंख फूंकते हुए।

– एक स्त्री जो कि बाड़ पैटर्न का लहँगा और बड़ी सी बेसर पहने हुए है।

– एक अन्य स्त्री कांछदार साड़ी पहने हाथों में थाली लिये है जिसमें पांच ज्योति हैं।

इन चित्रों में एक-एक अंकन सुस्पष्ट और अत्यन्त सुन्दर है। इनमें काले रंग का प्रयोग किया गया है। इन चित्रों के निर्माता हैं मुनीम मन्ना धूसर जोकि जालौन के रहने वाले थे। मन्ना धूसर कला के ऐसे पारखी थे जिन्होंने कला को नये-नये आयाम दिये।

लोकचित्र कला

चित्रकला में अभिव्यक्ति जब लोकजीवन के क्रियाकलापों से जुड़ी तब लोक चित्रकला का आविष्कार हुआ। शैलाश्रित कला ही वह उत्स है जिससे यह स्वाभाविक कला प्रचलन में आई। प्रागैतिहासिक शैलचित्र पाषाणकाल की लोकचित्रकला ही हैं।

आदिमानव ने जब-जब निसर्ग की दीप्तिमान, प्रवहमान एवं स्थिर वस्तुओं को देखा तब उसके मन में उनको व्यक्त करने के लिए कुछ आड़ी तिरछी रेखाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति दी होगी, जो आगे चलकर लोकचित्रकला की आधारशिला सिद्ध हुई। विभिन्न लोकपर्व और लोकोत्सवों पर सरल जनमानस की सहज अभिव्यक्ति ही लोकचित्रकला है।

बुंदेली लोकचित्रकला में मांडनों, अल्पनाओं, विभिन्न पर्वोत्सवों पर बनाये जाने वाले भूमिचित्र, भित्तिचित्र, चित्रपट, मेंहदी-महावर, घट, करवा अलंकरण, गृहसज्जा, उरैन,रंगोली, गुदना, चौक आदि चित्रकला की अन्यान्य प्राविधियाँ हैं।

विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों पर दीवार एवं भूमि पर विभिन्न रंगों की सहायता से ये चित्र महिलाओं द्वारा अंकित किये जाते हैं। इन चित्रों में संबंधित उत्सवों की कथा का दृश्यांकन होता है। कुछ सार्वभौम सत्य के प्रतीकों का भी अंकन होता है। इन चित्रों में जिन रंगों का उपयोग होता हैं वे नितान्त घरेलू और सहज उपलब्ध

होते हैं। पीला रंग हल्दी से, लाल रंग हल्दी और चूने के मिश्रण से, हरा रंग हरी पत्तियों से, गुलाबी रंग आलता या चुकन्दर से, नीला रंग नील से , काला रंग कढ़ाही या तवे की कारौंच से, गेरुआ रंग गेरू से तथा पीला रंग पीली मिट्टी से लेकर इन चित्रों को रंगमय बनाया जाता है। [14]

लोकचित्रकला के शिल्पियों ने न तो कला विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण की और न कला की बारीकियाँ निरूपित करने वाले विष्णु धर्मोत्तर पुराण का अध्ययन किया तथापि उनके आलेखन कलात्मक दृष्टि से बेजोड़ होते हैं। [15]

रंगों के अतिरिक्त गोबर, चाल का घोल, गेरू के घोल आदि का प्रयोग किया जाता है। इन कलाकृतियों में अंकित भारतीय संस्कृति के प्रतीक शास्त्र और चित्रकला के अनुपम उदाहरण हैं। इन चित्रों को अंकित करने वाले कलाकार स्वयं प्रतीकों के अर्थ नहीं जानते। सर्वेक्षण के दौरान आकृतियों का अर्थ पूछने पर तुफैलपुरवा की रामायणी ने बताया कि-'हमाइ अम्मा ने जे नाईं बताओ कि जाको मतलब का होत है। बस उन्ने तो बनाबो बताओ थो।' [16]

लोकचित्रकारों को इन प्रतीकों का अर्थ न मालूम हो तो न सही, लेकिन इनके विशिष्ट अर्थ होते हैं। स्वास्तिक गणेश का चित्रलिपीय रूप है तो कलश सम्मान व सम्पन्नता का। अश्व और गजारोही ऐश्वर्य और शक्ति के प्रतीक हैं, शंख पवित्रता और ज्ञान का, सूर्य-चन्द्र शाश्वतता के प्रतीक हैं, घटधारिणी स्त्रियाँ शुभ तथा मंगल शगुन की प्रतीक हैं। कुछ पर्वों के जैसे- गनगौर पर्व का चित्रण करते वक्त भगवान शंकर की आदि शक्ति गौरी का अंकन किया जाता है, जिसमें उनकी देह में सूर्य, चन्द्र, स्वास्तिक, सर्प, वृश्चिक, त्रिशूल, चिड़िया तथा स्त्री-पुरुष आकृतियों का समावेश किया जाता है। चैत्र शुक्ल तृतीया को होने वाले इस व्रत को गनगौर कहा जाता है। [17]

ऐसे ही छटी चक्र अंकन में अथवा बालक पैदा होने के छह दिन, छह माह या छह वर्ष बाद मनाये जाने वाले इस उत्सव में गोबर या चावल के आटे द्वारा चक्रों का अंकन किया जाता है। इसके साथ ही स्वास्तिक का अंकन भी किया जाता है। कहीं-कहीं जलेबी जैसे गोल सात चक्रों को एक साथ बनाया जाता है। इस चक्र का अंकन यह संदेश देता है कि इस चराचर जगत की रक्षक माँ नवजात शिशु को समाज की विषम परिस्थितियों से बचाये।

लोकचित्रकला में सीधे-सादे ग्रामीण जीवन पनघट, खेत, घरेलू उद्योग, आमोद-प्रमोद आदि को अंकित करने का प्रयत्न किया गया है। तीज-त्यौहार, ऋतु-उत्सव, सपेरा, नट आदि का चित्रण अपनी स्वाभाविकता के कारण अनूठा बन जाता है।[1]

जनपद जालौन में प्राप्त चित्रकला के प्रमुख विषय

जनपद जालौन में चित्रकला के उपलब्ध प्रमाणों को देखकर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यहाँ की चित्रकला में कला के साथ साहित्य और संगीत का अपूर्व समन्वय हुआ है। रागमाला के दृश्यों में राग अर्थात संगीत है तो साथ में केशव की कविताई भी दृष्टव्य है।

प्रेम :- मानव जीवन की गरिमा श्रेष्ठता और पवित्रता का सर्वोच्च बिन्दु है। हर किसी के जीवन में यह घटना घटती है। प्रेम हमेशा सृजन की प्रेरणा देता है।[1] प्रेम का प्रधान अवलम्ब नारी है। नारी जीवन के चित्रण के हेतु चित्रकार काव्य के नायिका भेद पर आश्रित हैं। बिहारी सतसई, केशव की कविप्रिया, जायसी के पद्मावत् में नायिका भेद का चित्रण प्राप्त होता है। कुमुदजी के व्यक्तिगत संग्रह में उपलब्ध चित्रों में नायिका भेद के कई रूप यथा- प्रोषित पतिका, अभिसारिका तथा स्वाधीन पतिका रूप का अंकन होता है। बुंदेलखण्ड संग्रहालय में हाथीदांत के पट पर राधा-कृष्ण का चित्रण है, जिसमें कृष्ण

राधा के पाँव में आलता रहे है।[1] कृष्ण-राधा के एक अंकन में राधा बाँसुरी बजाते अंकित है। कृष्ण का अंकन भी बड़ा मनोहारी बन पड़ा है जिसमें वे वृक्ष पर गोपिकाओं के वस्त्र लिये हुए हैं। गोपियां स्वये को अवगुंठन में रखे हुए अपने वस्त्रों को लौटाने की प्रार्थना कर रहीं हैं।[3]

इसी विषय के अन्तर्गत सामाजिक सम्बन्ध के आधार पर स्वकीया, परकीया, तथा सामान्या और आयु भेद से मुग्धा , मध्या तथा प्रौढ़ा भेद भी किये हैं। पूर्वानुराग, मानप्रवास और करुण के अतिरिक्त विरह की दस दिशाओं , संयोग शृंगार, दूती तथा सखियों का चित्रण किया गया है।[2]

बारहमासा :- चित्रों में प्रकृति का अंकन दो प्रकार से किया गया है- एक, सामान्य पृष्ठभूमि रूप में, दूसरे- षट्ऋतु , बारहमासा तथा अष्टयाम रूप में।

चित्रों में अंकित दृश्यों को भी दो भागों में विभक्त कर सकते हैं-

प्रथम- महल, मण्डप अथवा नगर या गांव का अंकन।

द्वितीय- प्राकृतिक दृश्य, जंगल, उपवन, नदी या पर्वत। इनमें अनेक प्रकार के वृक्ष, पुष्प, चक्रवाक युगल, मयूर, केशवकृत कविप्रिया, बिहारी सतसई और पद्मावत् के बारहमासा के चित्रण के आधार पर चित्रण, वर्षा की फुहार में नायिका के भयभीत रूप का अंकन, मयूर नृत्य दर्शनीय हैं।

भक्ति संबंधी :- गीत-गोविन्द पर आधारित राधकृष्ण के चित्रण, रोपड़ गुरु के मंदिर में ब्रेकेट पर अवस्थित गरुड़-पुराण आद्धित चित्रावली, मन्ना धूसर के स्टेन्सिल चित्रों में दीपक लिए हुए स्त्री का अंकन [1] भगवान राम व श्रीकृष्ण की लीलाओं का चित्रांकन आमतौर पर मिलता है। बुंदेलखण्ड संग्रहालय उरई में कांच पर चित्रित चित्रों में श्रीकृष्ण की रासलीला, झूला, चीरहरण, नृसिंह अवतार, श्री हनुमान तथा प्रथमदेव गणपति के

प्राचीन चित्रों का संग्रह है। उरई से नौ किलोमीटर दूर रोपड़ गुरु के मंदिर में गरुड़ पुराण पर आधारित नाटकीय यातना के चित्रों का अंकन, योग की विभिन्न मुद्राओं में अंकित कौपीनधारी संन्यासी का चित्रण,[2] भी बहुत सुन्दर है। कोंच के निकट मेंड ग्राम में लालजी साहब के मंदिर में कांच पर बने विभिन्न देवी-देवताओं के चित्र दर्शनीय हैं। जगम्मनपुर की छतरियों पर भी गणेश, शिव, विष्णु के अंकन प्राप्त होते हैं।

लोकजीवन :- जनपद जालौन की कला में लोकजीवन प्रथम स्थान पर आदृत है। चितेरी, मांडने, तीज-त्यौहार के अंकन इस जनपद की विशिष्टता है।

रागमालाः- भक्ति, संगीत और कला की त्रिवेणी चित्रकला में समाहित रहती है। संगीत दर्पण, राग केदार, दीपकराग, राग मल्हार आदि राग-रागिनियों के लगभग 35 चित्रों का संग्रह कुमुदजी के संग्रह में है। 1550 ई. की गुजराती कल्पसूत्र की एक प्रति में सर्वप्रथम इस प्रकार के चित्र मिले हैं। विभिन्न रागों के गाने के समय तथा ऋतु का निर्देश संगीत ग्रंथों में मिलता है।[2] रागों की संख्या 6 मानी जाती है। देवकृत राग-रत्नाकर के अनुसार प्रत्येक राग की पाँच भार्यायें हैं। इनमें एक विरहिणी नायिका है। रागमाला, नायिकाभेद एवं बारहमासा के चित्रों में इतनी समानताएँ हैं कि यदि चित्र पर राग का नाम अंकित न हो अथवा ज्ञान न हो तो कभी-कभी भ्रम हो जाता है।

विचित्र रचनाएँ :- रोपड़ गुरु के ब्रेकेट पर बने एक चित्र में नारी आकृतियों से हाथी का अंकन किया गया है।[2] कृष्ण चरित्र में एक प्रसंग आता है कि एक बार वन में कृष्ण ने गोपियों से हाथी पर बैठने की इच्छा प्रकट की। उपस्थित गोपिकाओं ने तुरन्त हाथी के आकार में स्वयं को उपस्थित कर दिया। इसी प्रसंग का आधार लेकर चित्रकला में नारी कुंजर, नारी हय तथा नारी शिविका आदि आकृतियों की रचना हुई है। इसमें कुछ स्त्रियों को इस प्रकार संयोजित किया गया है कि दूर से देखने हाथी, घोड़े अथवा पालकी की

आकृति दिखाई देने लगती है। इन पर कहीं कृष्ण और राधा का अंकन है तो कहीं परी का चित्रण। हास्य–व्यंग्य पर आधारित चित्र भी रोपड़ गुरु के मंदिर में ब्रकेट पर प्राप्त होते हैं। एक व्यक्ति को दिखाया गया है जिसके कान से सर्प निकल रहे हैं। कुछ लोग नशे में धुत पड़े हैं, उनकी खाद्य सामग्री पर चूहे–बिल्ली और कुत्ते मुँह लगा रहे हैं।

कुकरगांव स्थित रोपण गुरु के मंदिर में भित्ति चित्रों अद्‌भुत अंकन हैं। बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि यह मंदिर भित्ति चित्रों का अजायबघर है। यहाँ पर विषयों की विशद दृश्यावली है। मंदिर की प्रथम मंजिल में प्रत्येक भुजा पर बीस–बीस तोड़े बने हुए हैं जिनके अन्दर विभिन्न चित्र अंकित हैं:–

पश्चिमी तोड़े के दृश्य इस प्रकार हैं– हुक्का पीते हुए जमींदार, चरखी खेलती स्त्री, मुगदरयुक्त पहलवान, तंत्र साधना में लीन साधक, परिव्राजिका– मयूर और हिरण के साथ, पानदान एवं तोप के साथ तलवारयुक्त जमींदार, सातवां चित्र अस्पष्ट है, अस्त्रयुक्त अश्वारोही, जमींदार बैठा हुआ, हाथी मय सवार, कृष्ण गोपी सहित, शंकर की श्मश्रु और विषेष आकृति का सर्प धारण की हुई प्रतिमा, बन्दूक युक्त सिपाही, अधिकारी और चार सिपाही, सवारयुक्त अंग्रेज अधिकारी, मिथुन युगल।

दक्षिण दिशा जिसके अधिष्ठाता यमराज हैं के तोड़ों पर गरुड़ पुराण में वर्णित रौरव नरक तथा कर्मों के अनुरूप दिखाये गए दण्डों का वर्णन है। गरुड़ पुराण के दो खण्ड हैं– पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध में सृष्टि, प्रलय, वंश, नीति, ज्योतिष, तीर्थ, आयुर्वेद का वर्णन है। उत्तरार्द्ध में प्रेत कल्प का वर्णन हुआ है। इसमें 35 अध्याय हैं, सभी अध्याय मृतात्मा से संबंधित हैं। मृत्यु के उपरान्त प्रेतात्मा को यमपुर जाने में कितने कष्टों को भोगना पड़ता है।[1]

1. पुरुषों को आग में जलाना 2. खम्भे से बांधकर प्रताड़ित करना 3. रक्त के दरिया

में अपराधी का तैरना 4. सर्पों से कटवाना 5. अस्पष्ट 6. पुरुष के सिर पर आरा चलाना 7. दो यमदूत 8. एक यमदूत 9. त्रिमुखी महाराज 10. राजा-रानी 11. आदिवासी 12. काकभुशुण्डजी 13. संवादरत यमदूत 14. तलवार लिय राजपुरुष 15. अस्पष्ट 16. अस्पष्ट 17. चरखी खेलते युवती 18, 19 एवं 20 अस्पष्ट।

उत्तर दिश के तोड़ों में निम्नांकित अंकन है-

1. जमींदार 2. सिंह द्वारा हिरण का शिकार 3. हुक्का पीता हुआ जमींदार 4. साधु 5. अस्पष्ट 6. समर्थ गुरु रामदास विचरण करते हुए 7. चरखी के साथ क्रीड़ा करती स्त्री 8. नृत्यरत स्त्री एवं दो पुरुष 9. शिवलिंग में ध्यानावस्थित साधु 10. डोली पर जाता जमींदार तथा सेवकगण 11. योगरत साधु 12, 13 व 14. अस्पष्ट 15. दो मोरों की चोंच में उल्टा लटका सांप 16. पहाड़ ले जाते हनुमान 17. नमस्कार मुद्रा में साधु 18,19 व 20. अस्पष्ट।

इसके अतिरिक्त हस्तिशिविका तथा तांत्रिक चित्रण भी पाये गए हैं। तोड़ों की इस चित्रावली के साथ गर्भगृह के प्रदक्षिणा पथ के दोनों ओर की भित्ती पर शंकर भगवान, भगवान राम तथा श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं के साथ विविध योगिक आसनों का पूर्ण चित्रण भी है।

सैदनगर के रामसीता मंदिर पर भी विभिन्न प्रकार के चित्र मिलते हैं। इस मंदिर के दरवाजों पर मेहराबों पर सुन्दर फूल-पत्तियों के रंगीन चित्र अंकित हैं। इन्हें पक्की नील के रंग तथा पक्के गेरू के रंग से रंगा गया है। इस मंदिर में ज्यामितीय अलंकरण की प्रधानता है।

लक्ष्मीनारायण मंदिर में तोड़ों पर भगवान भास्कर, विघ्नविनाशक गणेश, शंकर, कृष्ण आदि के रंगीन चित्र अंकित किये गए हैं जो बिलकुल सजीव प्रतीत होते हैं। मंदिर

में प्रयुक्त ये रंग आज इतने वर्षों बाद भी जस के तस दिखाई पड़ते हैं।

कजौसा में उपलब्ध मठियाओं में सुन्दर चित्र उपलब्ध हैं। यहाँ भी प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया गया है। यहाँ पर अंकित चित्रों में मुख्य आकृतियाँ हैं- स्त्री आखेट, अश्वारोही पुरुष, गणपति, कल्कि अवतार, देवीस्वरूप आदि।

इस मंदिर में कागज के दो हस्तनिर्मित अत्यन्त दुर्लभ चित्र भी हैं जिनका विवरण इस प्रकार है – प्रथम चित्र तीर्थंकर के जन्म का है। यह 40 **गुणा** 45 सेमी के आकार पर निर्मित है। इस चित्र में इन्द्र के ऐरावत हाथी द्वारा तीर्थंकर को सुमेरु पर्वत पर्वत पर स्थापित करना दर्शाया गया है एवं देवताओं द्वारा पूजन व दुग्ध स्नान का चित्रण किया गया है। चित्र में रानी के द्रासाद कक्ष का चित्रांकन भी किया गया है।

दूसरा अन्य चित्र चित्र तीर्थंकर के निर्वाण उत्सव का है। यह चित्र भी हस्तनिर्मित है। यह 41 **गुणा** 32 सेमी के आकार पर निर्मित है। इस चित्र में चन्द्रमा रात्रि का द्योतक बताया गया है। अन्य देवगण अपने-अपने विमानों से स्वामी तीर्थंकर के निर्वाण उत्सव का अवलोकन कर रहे हैं। इन दोनों ही हस्तनिर्मित चित्रों में राजस्थानी शैली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

संदर्भ सूची

1. विष्णु धर्मोत्तर - 43.39

2. समरांगण सूत्रधार - 71

3. बुंदेलखंड का पुरातत्व, एस.क्यू. त्रिवेदी, पृष्ठ- 63

4. समरांगण सूत्रधार- 43,38

5. भारतीय स्थापत्य,डॉ. डी.एन. शुक्ल, पृष्ठ- 542

6. विष्णुधर्मोत्तर पुराण चित्रसूत्रम-56

7. भारतीय स्थापत्य डॉ. डी.एन. शुक्ल

8. दैनिक भास्कर 18 फरवरी, 1997 (शोधार्थिनी द्वारा लिया गया साक्षात्कार)

9. रूपप्रद कला के मूल आधार, शर्मा एवं अग्रवाल

10. धर्मयुग सितम्बर 1973 भीम बैठका की गुफाओं का रहस्य- डॉ. वीरेंद्र नाथ मिश्र

11. भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास- लोकेश चंद्र शर्मा, पृष्ठ 15

12. वाचस्पति गैरोला- भारतीय चित्रकला पृ. 112

13. History of India and Indian Art- A. Kumarswami

14. बुन्देली चित्रकला , डॉ. हरिमोहन पुरवार, पृष्ठ - 19

15. बुन्देलखण्ड का लोकजीवन , संस्कृति विभाग उ.प्र., पृष्ठ - 35

16. व्यक्तिगत साक्षात्कार - रामायनी देवी

17. बुन्देली लोकचित्रकला : डॉ. हरीमोहन पुरवार, पृ. 20

18. तदैव , पृ. 75

19. कला और कलम : डॉ. गिर्राज किशोर , पृ.142

20. प्रांकुर (हिन्दी मासिक) सितम्बर 1999 : उमास्वरूप

21. बुन्देलखण्ड संग्रहालय

22. तदैव

23. तदैव

24. कला और कलम : डॉ. गिर्राज किशोर , पृ. 141

25. व्यक्तिगत संग्रहालय (अयोध्या प्रसाद कुमुद)

26. सारस्वत (जालौन जनपद विशेषांक) , पृ. 121

27. कला और कलम : डॉ. गिर्राज किशोर , पृ. 147

28. राष्ट्रीय संग्रहालय (नारी कुंजर चित्र) नई दिल्ली , चित्र संख्या - 47.110/1502

29. कला और कलम : डॉ. गिर्राज किशोर , पृ. 148

30. प्रतिमा विज्ञान : डॉ. इन्दुमती मिश्रा , पृ.35

31. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का एंतिहासिक मूल्यांकन : डॉ. हरीमोहन पुरवार, पृ. 217

नवम् अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

किसी भी क्षेत्र का अतीत अच्छा अथवा बुरा, गौरवपूर्ण अथवा शर्मनाक तथा वैभवशाली अथवा दारिद्रपूर्ण तो हो सकता है, किन्तु किसी भी वर्तमान का अतीत यानी कि इतिहास हो ही नहीं यह तो सम्भव ही नहीं है। प्रत्येक वर्तमान की इमारत अतीत की नींव पर ही खड़ी होती है इस सर्वविदित और सार्वभौमिक तथ्य के बावजूद गजेटियर जैसे मानक माने जाने वाले राजकीय प्रकाशन में यह लिखकर कि जालौन जनपद का कोई इतिहास ही नहीं है, एक विदेशी लेखक द्वारा इस जनपद के साथ बाकायदा ऐसी साजिश की गई है जो न केवल निन्दनीय है अपितु एक गंभीर अपराध भी है।

मैंने इतिहास और पुरातत्त्व को जालौन जनपद की देन के बारे में जैसे-जैसे अपना अध्ययन आगे बढ़ाया वैसे-वैसे यह स्पष्ट होता चला गया कि इस जनपद ने न केवल अपना अमूल्य योगदान दिया है, बल्कि इतिहास के प्रत्येक कालखण्ड के महत्वपूर्ण क्षणों में अपनी निर्णायक भूमिका भी निभाई है। जितना इतिहास मैंने पढ़ा और जाना है तथा विभिन्न विद्वजनों से विचार विनिमय के उपरान्त जो जानकारियां एकत्रित की हैं उनके अनुसार तो जालौन जनपद संभवतः अकेला ऐसा जनपद है जिसने सदैव आक्रान्ताओं को मुँहतोड़ जवाब दिया। किसी अन्य जनपद के बारे में ऐसा फतवा कहीं देखने को नहीं मिला कि यह इतिहास विहीन जनपद है। जालौन के बारे में यह पूर्वाग्रह क्यों रहा यह मुद्दा चूँकि यहाँ विवेच्य

नहीं है इसलिए यहाँ हम केवल इतिहास और पुरातत्त्व को जालौन जनपद के योगदान की ही चर्चा करेंगे।

इतिहास को जालौन जनपद की देन

उपलब्ध तथ्य साक्षी हैं कि इस जनपद का इतिहास न केवल गौरवपूर्ण रहा है बल्कि वह अपने समकालीन अन्य जनपदों की तुलना में अधिक घटनापूर्ण और अधिक उथल-पुथल वाला भी रहा है। महाभारत का प्रणयन हो या पुराणों का जन्मकाल, द्वितीय नगरीकरण की किलकारी हो या कुषाण वंश की अंगड़ाई, जनपद जालौन यत्र-तत्र सर्वत्र विद्यमान दृष्टिगत होता है। मुगल शासकों का स्वर्णकाल हो या अंग्रेजी हुकूमत का शैशवकाल, जनपद की मनीषा इन आक्रान्ताओं के खिलाफ़ सदैव अद्भुत जिजीविषा के साथ संघर्षरत मिलती है।

श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास की जन्मस्थली और पाराशर की कर्मस्थली रहा यह जनपद सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक, हर दृष्टि से उल्लेखनीय है। क्रौन्च ऋषि इसीलिए यहाँ चातुर्मास व्यतीत करने आये थे क्योंकि यहाँ का वातावरण शान्त और निर्मल था। यहाँ के बाजारों में कारोबार करने के लिए दूर-दूर से व्यापारी इसीलिए आते थे, क्योंकि यहाँ जैसे खरीददार अन्यत्र नहीं मिलते थे। कालपी में हाथियों और अश्वों का जो बाजार लगता था उसकी धूम तो विदेशों तक थी। कहते हैं कि शहंशाह अकबर के लिए हाथियों की खरीद यहीं से होती थी।

11वीं शताब्दी में जब पृथ्वीराज चौहान ने महोबा की राजकुमारी चन्द्रावलि का डोला मांगा तो चन्द्रावलि का ममेरा भाई अभई (उरई का राजकुमार) पृथ्वीराज की

सेना से टकरा गया। कालपी के राजा श्रीचन्द ने आज़ादी की खातिर किस तरह मुगलों के छक्के छुड़ा दिये यह तो सर्वविदित है। इसी तरह अंग्रेजों के विरुद्ध शहादत की याद दिलाता है अजनारखेड़ा। ऐतिहासिक नगर कालपी प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का मंत्रणाकक्ष बना तो गोपालपुरा रणसेना का जमावड़ा। वस्तुत: इतिहास लेखन में अंग्रेजों के वर्चस्व को हम भारतीय अभी तक तोड़ नहीं पाये हैं। जब जालौन जनपद के इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो एक भी ऐसी घटना नहीं मिलती जो अंग्रेजों को गर्व कर सकने का रंचमात्र भी अवसर उपलब्ध करा सके, अपितु प्रत्येक घटना अंग्रेजों को यहाँ मिले तिरस्कार को ही उजागर करती और उनके छल-प्रपंच की पोल खोलती है। इस शर्म से बचने के लिए ही संभवत: गजेटियर के लेखक ब्रोकमेन को यह कहना ज्यादा सुविधाजनक प्रतीत हुआ होगा कि जालौन जनपद का तो कोई इतिहास ही नहीं है। किन्तु इतिहास कभी किसी फ़तवे का मोहताज नहीं होता, वह कोई दुविधा भी नहीं होता, वह तो वक्त की स्लेट पर लिखी गई वह इबारत है जिसे लिखने के बाद स्वयं वक्त भी नहीं मिटा सकता। भारत में अंग्रेजी राज्य के विस्तार का क्रमबद्ध अध्ययन करें तो यह साफ हो जाता है कि बुन्देलखण्ड ही वह क्षेत्र था जिसने उन्हें लोहे के चने चबवा दिये।

ऐसा कदापि नहीं है कि जालौन जनपद के इतिहास का अध्ययन करने के लिए संदर्भ सामग्री का अभाव हो, किन्तु इस ओर अभी समुचित ध्यान न दिया जाना जरूर खेद का विषय है। विभिन्न पुस्तकालयों, संग्रहालयों, अभिलेखागारों में पर्याप्त सामग्री है, जरूरत सिर्फ इस बात की है कि उसे सामने लाया जाए।

डॉ. जयदयाल सक्सेना के अनुसार जनपद के ग्रामीण अंचलों में कुछ ऐसे अनगढ़

प्रस्तर खण्ड देव-प्रतिमाओं के रूप में पूजित हैं जो वस्तुतः पाषाणकालीन उपकरण प्रतीत होते हैं और जनपद में पाषाणकालीन सभ्यता की मौजूदगी का साक्ष्य उपलब्ध कराते हैं। यहाँ से सिन्धु घाटी की भाँति मिले ताम्र उपकरण भी ईसा पूर्व लगभग 2000 हजार वर्ष पुरानी सभ्यता की निशानी देते हैं।

वैदिक काल में सोमरस बनाने के लिए ऋषि-मुनियों द्वारा जिस तरह की गहरी ओखली का प्रयोग किया जाता था वैसी ही एक आठ फुट लम्बी ग्रेनाइट पत्थर की ओखली कोंच के निकट ग्राम पड़री के एक खेत में मिली। यह तो पहले से ही विदित है कि यह क्षेत्र पराशर, शांडिल्य, क्रोंच, वाल्मीकि, संदीपन जैसे महान ऋषियों की कर्मस्थली रही है, ऐसे में इस ओखली का मिलना भी यहाँ वैदिक कालीन सभ्यता की अवधारणा और भी पुष्ट करता है। इस काल में जो ऋषि-मुनि समाज को नियमबद्ध बनाने का गुरुतर दायित्व निभा रहे थे, यह जनपद निश्चय ही उन महामनीषियों की प्रेरणा का स्त्रोत रहा होगा तभी तो उन्होंने इसे अपनी कर्मस्थली बनाया। कहा जाता है कि देवताओं के गुरु बृहस्पित ने भी इसी जनपद के इटौरा क्षेत्र में सौ साल तक ब्रह्मा की तपस्या की थी।

जनपद के पश्चिमी-उत्तरी किनारे पर स्थित करनखेड़ा (जगम्मनपुर) से ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी के मिट्टी के पात्र मिले हैं जो श्याम पॉलिशयुक्त हैं। एरच डाइनेस्टी की खोज से भी यह सिद्ध हो गया है कि इस काल में यहाँ मानव सभ्यता काफी विकसित हो चुकी थी।

ऐसे ही अनेक तथ्य हैं जो यह प्रमाणित करते हैं कि यह जनपद प्राचीनतम मानव सभ्यताओं का मात्र दर्शक नहीं बल्कि सहभागी रहा है। इसने अनेक युगों के विकसन और पल्लवन को सहेजा और सुपोषित किया है।

पुरातत्त्व को जालौन जनपद की देन

जिस जनपद का इतिहास समृद्ध हो पुरातत्त्व के मामले में वह अपने आप ही सम्पन्न हो उठता है। जालौन जनपद में सर्वत्र बिचरी पुरासामग्री इसलिए और ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें विभिन्न धर्मों, वर्णों, संस्कृतियों और सभ्यताओं का इन्द्रधनुषी संगम बहुत ही गौरवशाली तरीके से विद्यमान है। जनपद के किलों एवं गढ़ियों का निर्माण जिस वैज्ञानिकता के साथ किया गया है उसकी मिसाल कम ही मिलती है।

हाल ही में कालपी में बाईघाट और पीलघाट के बीच के क्षेत्र में उत्खनन के दौरान मिले लगभग 45 हजार साल पुराने जीवाश्मों ने देशभर के पुराविदों को इस जनपद के पुरातत्त्वीय महत्व को सर्वथा नई दृष्टि से देखने को विवश कर दिया है। केन्द्रीय एवं राज्य पुरातत्त्व विभाग के विशेषज्ञों के अलावा अनेक अन्य भूगर्भ विज्ञानी भी इन जीवाश्मों का गहन अध्ययन करने में जुटे हैं। इनके अध्ययन से इस जनपद के अज्ञात विगत के कई आश्चर्यजनक पहलू उजागर होने की उम्मीद है। इन जीवाश्मों के अलावा यहाँ से अस्थि उपकरण भी मिले हैं। यहाँ अब भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण की सेन्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड ऑफ ऑर्कियोलॉजी कमेटी द्वारा अनुमोदित कार्ययोजना के तहत उत्खनन कार्य जारी है। फिलहाल जीवाश्मों के साथ मिले अस्थि हथियारों के प्रारम्भिक विवेचन से इतना तो कहा ही जा सकता है कि इस जनपद में मानव सभयता का विकास शताब्दियों नहीं बल्कि सहस्त्राब्दियों पूर्व हो चुका था।

कोंच में पुराने ईदगाह मैदान की खुदाई के दौरान मिली दो मजारों का भी

अध्ययन किया जा रहा है। इनसे भी कुछ नये ऐतिहासिक तथ्य सामने आने की प्रत्याशा है। कोंच में मिले कुषाणकालीन मृदभाण्ड यहाँ की प्राचीनता को प्रमाणित करते हैं। यहाँ के तहसील प्रांगण से कुछ लौह उपकरण भी मिले हैं। उरई के महावीरपुरा मुहल्ले से प्राप्त ताम्र उपकरण की सम्भावनाएँ भी यहाँ के इतिहास को प्राचीनकाल में ले जाती हैं। कोंच में मिली ब्रह्मा की प्रतिमा का विशेष महत्व इसलिए है क्योंकि ब्रह्मा की प्रतिमाएँ पूरे विश्व में ही अत्यधिक न्यून मात्रा में उपलब्ध हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऐतिहासिक और पुरातत्त्व दृष्टिकोण से यह जनपद एक सुदीर्घ परम्परा रखता है। यह इसका दुर्भाग्य और विडम्बना ही है कि इतिहासकारों ने इसके महत्व को जानबूझकर और बड़े ही सुनियोजित ढंग से उपेक्षित रखा। पाश्चात्य इतिहासकारों का यह रवैया तो इसलिए समझ में आता है क्योंकि यहाँ मिलने वाला एक भी तथ्य अंग्रेजों की स्वनिर्मित कपोलकल्पित महिमा को तनिक भी सम्बल प्रदान नहीं करता, उलटे उनकी कमजोरियाँ ही उजागर होती हैं। अंग्रेज लेखकों की मानसिकता तो समझी जा सकती है किन्तु भारतीय इतिहासकारों ने सतह पर सहजता से नज़र आने वाले तथ्यों को भी जिस तरह से नकारा और अनदेखा किया है वह शर्म और सोच का विषय है। आवश्यकता इस बात की है कि इस जनपद के इतिहास का आद्योपान्त समयबद्ध और सुनियोजित लेखन हो ताकि वर्तमान और भावी पीढ़ियाँ अपने उस गौरवशाली अतीत से परिचित हो सकें जिसे 'है ही नहीं' कहकर खारिज करने का षड्यंत्र रचा गया था। यह सिद्ध करने के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं कि यह जनपद विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं

का पालनहार रहा है। इसके गर्भ में ऐसा बहुत कुछ है जिससे प्रत्येक बुन्देलखण्डवासी का भाल गर्व और गौरव से उन्नत हो सके, आवश्यकता बस इतनी है कि गर्भ में छिपे इन रहस्यों का प्रामाणिक ढंग से प्रकटीकरण किया जाए। जनपद में ऐसे अनेक भवन तथा स्मारक हैं जिन्हें भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण को तुरन्त अपने अधिकार में ले लेना चाहिये। इनके अध्ययन के लिए व्यापक कार्ययोजना बनाने की आवश्यकता है। इनका वैज्ञानिक अध्ययन संभावनाओं के अपरिमित द्वार खोलेगा, यह सुनिश्चित है।

परिशिष्ट-1

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

परिशिष्ट
संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अलबरूनी का भारत — अनु.संतराम
2. बुन्देली लोक गीत भाग 2 — डॉ. रामस्वरूप श्रीवास्तव 'स्नेही'
3. हरदौल चरित्र
4. भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास — सत्यकेतु विद्यालंकार
5. राष्ट्रीयता और समाज वाद — आचार्य नरेन्द्र देव
6. बुन्देली काव्य परम्परा — डॉ. बलभद्र तिवारी
7. संस्कृति के चार अध्याय — रामधारी सिंह दिनकर
8. कांग्रेस का इतिहास भाग 2 — डॉ. पट्टाभि सीतारमैया
9. बुन्देली लोक काव्य, भाग 3, — डॉ. बलभद्र तिवारी
10. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन — डॉ. देवराज
11. ऐतिहासिक भौतिकवादी — ब. केलने और म. कोवाल जोन,
12. भाषाविज्ञान — डॉ. रामस्वरूप खरे
13. भारत का भाषा सर्वेक्षण खण्ड नौ — डॉ. ग्रियर्सन
14. हिन्दी भाषा का इतिहास — डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
15. राजस्थानी लोकोक्ति संग्रह — डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल
16. बुन्देली कहावत कोश — सम्पादक - कृष्णानन्द गुप्त
17. स्वरूप फाग संकलन — डॉ. रामस्वरूप खरे
18. स्वरूप गारी संकलन — डॉ. रामस्वरूप खरे
19. बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास — गोरेलाल तिवारी
20. बुन्देलखण्ड का इतिहास — दीवान प्रतिपाल सिंह

21. आदि भारत	प्रो. अर्जुन चौबे काश्यप
22. बुन्देलखण्ड का इतिहास	पं. चतुर्भुज शर्मा
23. दिल्ली सल्तनत (799-1526)	डा. ए.एल. श्रीवास्तव
24. चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास	डा. अयोध्या प्रसाद पाण्डेय
25.अंधकार युगीन भारत	काशी प्रसाद जायसवाल
26.बुन्देलखण्ड का पुरातत्त्व	डा. एस.डी. त्रिवेदी
27.दिल्ली सल्तनत	डा. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव
28. बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन	राधाकृष्ण एवं सत्यभामा बुन्देली
29.दिल्ली सल्तनत	आर.के. सक्सेना
30. तबकातये अकबरी	निजामउद्दीन अहमद
31. मुगलकालीन भारत	आशीर्वादी लाल
32. भारत में मुगल साम्राज्य	एस.आर. शर्मा
33. जहीरुद्दीन मोहम्मद बाबर- बाबरनामा	श्रीमती ए. एस. बेवरिज
34. आइने अकबरी	अबुल फजल
35. अकबरी दरबार, भाग दो	रामचन्द्र वर्मा
36.जहाँगीरनामा (अनुवाद) द्वितीय संसस्करण	ब्रजरत्न दास
37.नबाव शमशुद्दौला शाहनवाज खाँ और उनके पुत्र अब्दुल हई	मंअसिर-उल-उमरा (अनुवाद)बेवरिच
38.बुन्देलखण्ड केशरी वीर छत्रसाल	श्रीयुत् 'विश्व'
39. मराठायाचे पराक्रम	डी.बी.परसनीस
40.मराठों का नवीन इतिहास, भाग दो	जी.एस. सरदेसाई
41.गोविन्दपंत बुन्देलयांची कैफियात	आर.के. लघाटै
42.मध्य प्रदेश का इतिहास	आर.बी. हीरालाल
43.पानीपत	टी.एस. शेजवलकर
44.बुन्देलखण्ड केशरी महाराज छत्रसाल बुन्देला	डा. भगवान दास गुप्ता

45.मराठों का नवीन इतिहास, द्वितीय भाग — जी.एस. सरदेसाई

46. बुन्देलखण्ड का वृहत इतिहास — डा. काशी प्रसाद त्रिपाठी

47. पुरातत्त्व विमर्श — डॉ. एस.एन. पाण्डेय

48. पृथ्वी से पुरातत्त्व — मोर्टिमर व्हीलर

49.भारत का संविधान — डी.डी. वसु

50. संविधान — सुभाष कश्यप

51. प्राचीन भारत का इतिहास — श्रीमाली और झा

52. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति — के. सी. श्रीवास्तव

53. प्राचीन भारत — रामशरण अग्रवाल

54. प्राचीन भारतीय मुद्राएँ — परमेश्वरी लाल गुप्ता

55. भारतीय स्थापत्य — डॉ. द्विजेन्द्र नारायण शुक्ला

56. जनपद जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन — डॉ. हरिमोहन पुरवार

57. समरांगण सूत्रधार

58. भारतीय वास्तुकला इतिहास — डॉ. के. डी. वाजपेयी

59. प्रतिमा विज्ञान — डॉ. इन्दुमती मिश्रा

60. विष्णुपुराण की भूमिका — एच.एच. विल्सन

61. भारतीय मूर्तिकला — डॉ. आर. एन. मिश्रा

62. कला और कलम — डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल ,

63. हिन्दी शब्द सागर

64. 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम और जनपद जालौन — डॉ. डी. के. सिंह

65. पाण्डुलिपि विज्ञान — डॉ. सत्येन्द्र

66. भारतीय साहित्य — पं. उदयशंकर शास्त्री

67. विश्व इतिहास की झलक

68. दतिया जिले में पत्र पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण	डॉ. कामिनी, डॉ. सीताकिशोर, डॉ.श्यामबिहारी
69. प्राचीन भारतीय लिपिमाला	गौरीशंकर ओझा
70. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति	महामहोपाध्याय, गौरीशंकर ओझा
71.प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर	प्रो. डॉ. वासुदेव उपाध्याय
72. हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्य कला शैली	कादरी असगर अली
73. प्रणाम विलास	
74. ब्राह्मण पुराण	
75. सांस्कृतिक धरोहर	अर्जुन
76 . युगों-युगों में कालपी	प्रो. के.डी. वाजपेयी
77. पुरातन गाथाओं का शहर	डॉ. राजेन्द्र कुमार
78. कालपी महात्म्य	रूप किशोर टण्डन
79. कालपी शरीफ़ के ओलिया इकराम	रहीम बख्श सिद्दीकी
80. तीर्थभूमि कालपी	बिन्देदीन पाठक
82. लोकमंगल	सं. राजाराम पाण्डेय
83. लोकसेवा	अखिलेश विद्यार्थी
84. बुन्देलखण्ड दर्शन	मोतीलाल अशान्त
85. चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास	डॉ. अयोध्या प्रसाद पाण्डेय
86. रामपुर राज्य का इतिहास	रसूल अहमद सागर
87. कुश राजवंश प्रदीप	राजा कृष्णपालजू देव
88. हिन्दू राजशास्त्र	अम्बिका प्रसाद वाजपेयी
89. कालपी महात्म्य	रूपकिशोर टंडन

90. युगों-युगों में कालपी — डॉ. के.डी. वाजपेयी

91. भारतीय मुद्राएँ — पी.एल. गुप्ता

92. ऋग्वेद

93. प्राचीन भारत का सामा. एवं आर्थिक इतिहास — डॉ. ओमप्रकाश

94. रामायण

95. वन्डर दैट वाज इंडिया (अद्‌भुत भारत) — ए. एल. बाथम

96. भारतीय मुद्राएँ — पी.एल. गुप्ता

97. कालपी की पवित्र भूमि — के.बी. लाल

98. मनुस्मृति

99. प्राचीन आहत मुद्राएँ — परमेश्वरी लाल

100. शुक्रनीति

101. अष्टाध्यायी

102. षडविशं ब्राह्मण

103. श्वेताश्वर उपनिषद

104. महाभाष्य

105. अग्निपुराण

106. रूपप्रद कला के मूल आधार — शर्मा एवं अग्रवाल

107. भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास — लोकेश चंद्र शर्मा

108. भारतीय चित्रकला — वाचस्पति गैरोला

109. बुन्देली चित्रकला — डॉ. हरिमोहन पुरवार

110. बुन्देलखण्ड का लोकजीवन

अंग्रेजी ग्रंथ

1. जालौन गजेटियर — ब्रोकमेन
2. हिस्ट्री आफ हिन्दू मेडीवल इण्डिया — सरजार्ज इनवर्ट
3. इंडिया टुडे एण्ड टुमारो — रजनी पाम दा
4. मेन इन दी मार्डन एज — कार्ल यास्पर्स
5. द प्लेस आफ द थ्योरी आफ सिविलिजेशन इन द सोशियालाजी आफ कल्चर — डान मार्टिन्डेल
6. द स्टडी आफ काम्पलेक्स कल्चर्स, टूवर्ड्स ए सोशियालाजी आफ कल्चर इन इण्डिया — प्रो. एस.सी. दुबे
7. द स्टडी आफ काम्लेक्स कल्चर्स — प्रो. एस.सी.दुबे
8. फोक कल्चर एण्ड ओरल ट्रेडीशन — एस.एल. श्रीवास्तव
9. द हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ इण्डियन पीपुल — मजूमदार और पुशलकर
10. एनीसियेन्ट इण्डिया — आर.सी. मजूमदार
11. कल्चर हिस्ट्री आफ बुन्देलखण्ड — एम.एल. निगम
12. कापर्स इन्सिक्रिप्शन इन्डीकेरम भाग तीन — प्लीट
13. हिस्ट्री आफ चन्देलाज — एन. एस. बोस
14. द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्ड्यिा, भाग तीन — कर्नल वेलजली हेग
15. कॉइन — परमेश्वरी लाल गुप्ता
16. क्लासीकल एण्ड मेडीवल इंडियन आर्ट — स्टेला क्रेमरिश

17. द स्टूडेन्ट इंगलिश डिक्शनरी

18. द अमेरिकन पीपुल्स एनसाइक्लोपीडिया

19. द एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना

20. आर्चीव्स एण्ड रिकार्ड्स : व्हाट आर दे — पूर्णेन्दु बसु

21. स्टडी ऑफ इंडियन सिविलाइजेशन — हैवेल

22. हिस्ट्री ऑफ इंडियन एण्ड ईस्टर्न आर्किटेक्चर — फर्ग्यूनस एवं बर्जेस

23. ग्लिम्पसेज ऑफ प्रेक्टीकल वास्तु — बी.एन. रेड्डी

24. रिपोर्ट ऑफ अ टूर इन बुन्देलखण्ड एण्ड रीवा (1883-84) कनिंघम

25. ट्रीटीज इंगेजमेन्ट एण्ड सनद रिलेटिंग टू इंडिया एण्ड नेवरिंग कन्ट्रीज, भाग-3 — सी.यू. एचीसन

26. ए ब्रीफ अकउन्ट ऑफ जगम्मनपुर

27. विग्निंग्स ऑफ बुद्धिस्ट आर्ट — फाउलर

28. ए सिल्वर कॉइन ऑफ चन्द्रगुप्त — ए.एल. श्रीवास्तव

29. हिस्ट्री ऑफ बंगाल ,

30. आर्किओलॉजी ऑफ एरच- डिस्कवरी ऑफ न्यू डाइनेस्टीज ओमप्रकाश

31. ऋग्वेदिक कल्चर — ए.सी. दास

32. जनरल आफ अशियाटिक आफ बंगाल

33. आर.वी. रसेल-सागर गजेटियर

34. सेलेक्शन फाम द पेशवा दफ्तर न्यू सिरीज वाल्यूम 3 — पी.एम. जोशी

समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ

1. दैनिक जागरण, कानपुर
2. दैनिकस्वतंत्र भारत, कानपुर
3. अमरउजाला, कानपुर
4. दैनिककर्मयुगप्रकाश, उरई
5. नईदुनिया, भोपाल
6. दैनिक मध्यदेश
7. दैनिक दीवान
8. दैनिक भास्कर
9. प्रगति दर्पण
10. त्रिपथगा
11. लोक संस्कृति विशेषाँक, सम्मेलन पत्रिका
12. गंगा पुरातत्त्वांक
13. धर्मयुग
14. सारस्वत (जनपद जालौन विशेषांक)
15. क्रोंच रश्मि, वार्षिक पत्रिका, म.प्र. महाविद्यालय कोंच
16. कालपी कीर्ति अंक
17. कल्याण तीर्थांक
18. समारोह पत्रिका (जनपद जालौन)
19. काली शोध केन्द्र स्मारिका
20. प्रांकुर (हिन्दी मासिक)

परिशिष्ट-2

चित्र एवं नक्शे
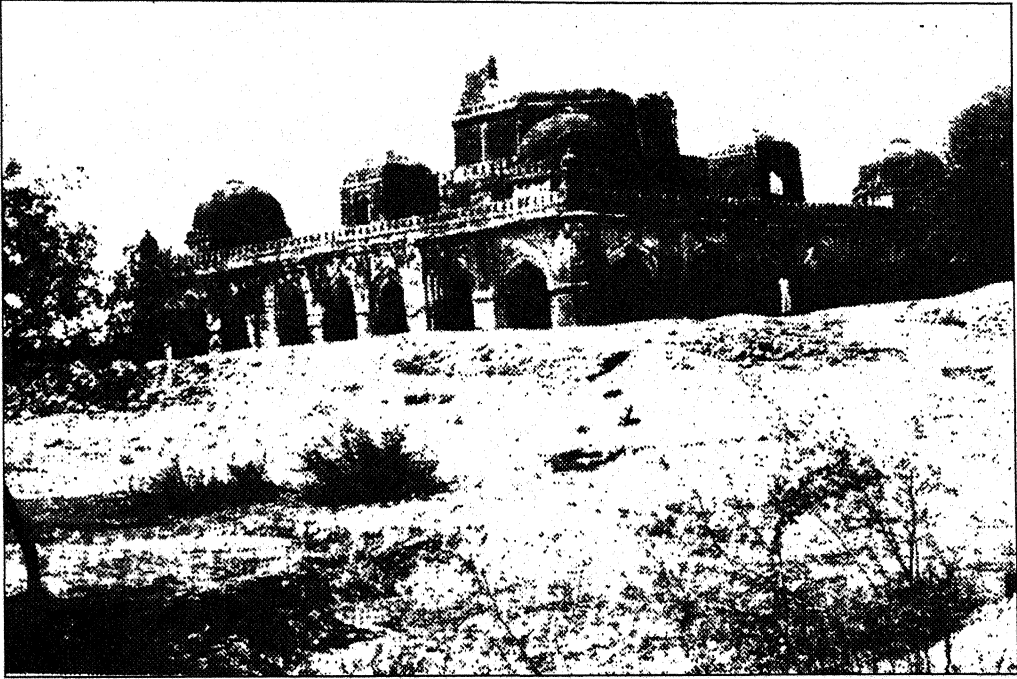
चौरासी खम्भा के भग्नावशेष, कालपी (जालौन)
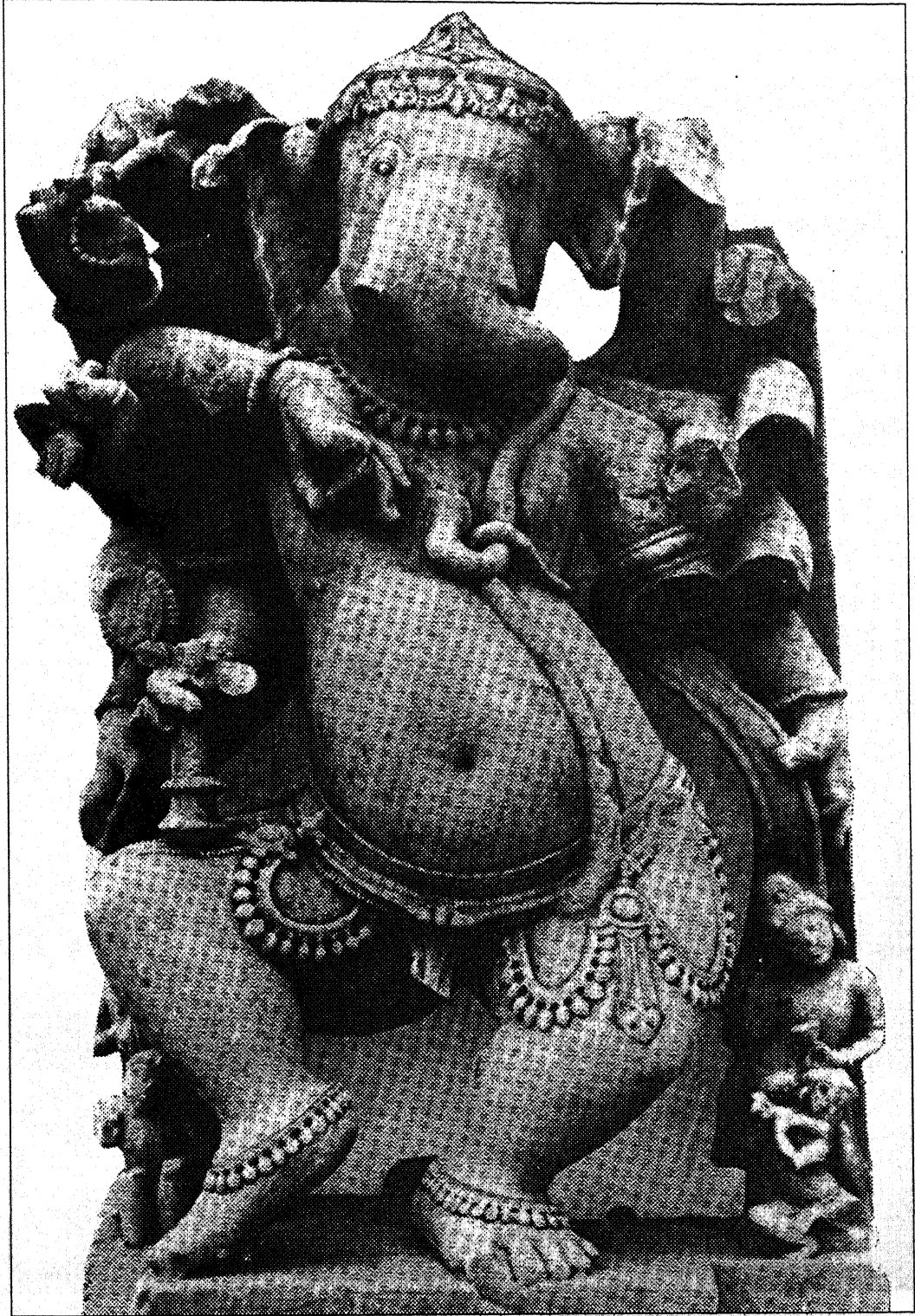
नृत्य गणपति, सीरोनखुर्द, 10वीं शती ई.
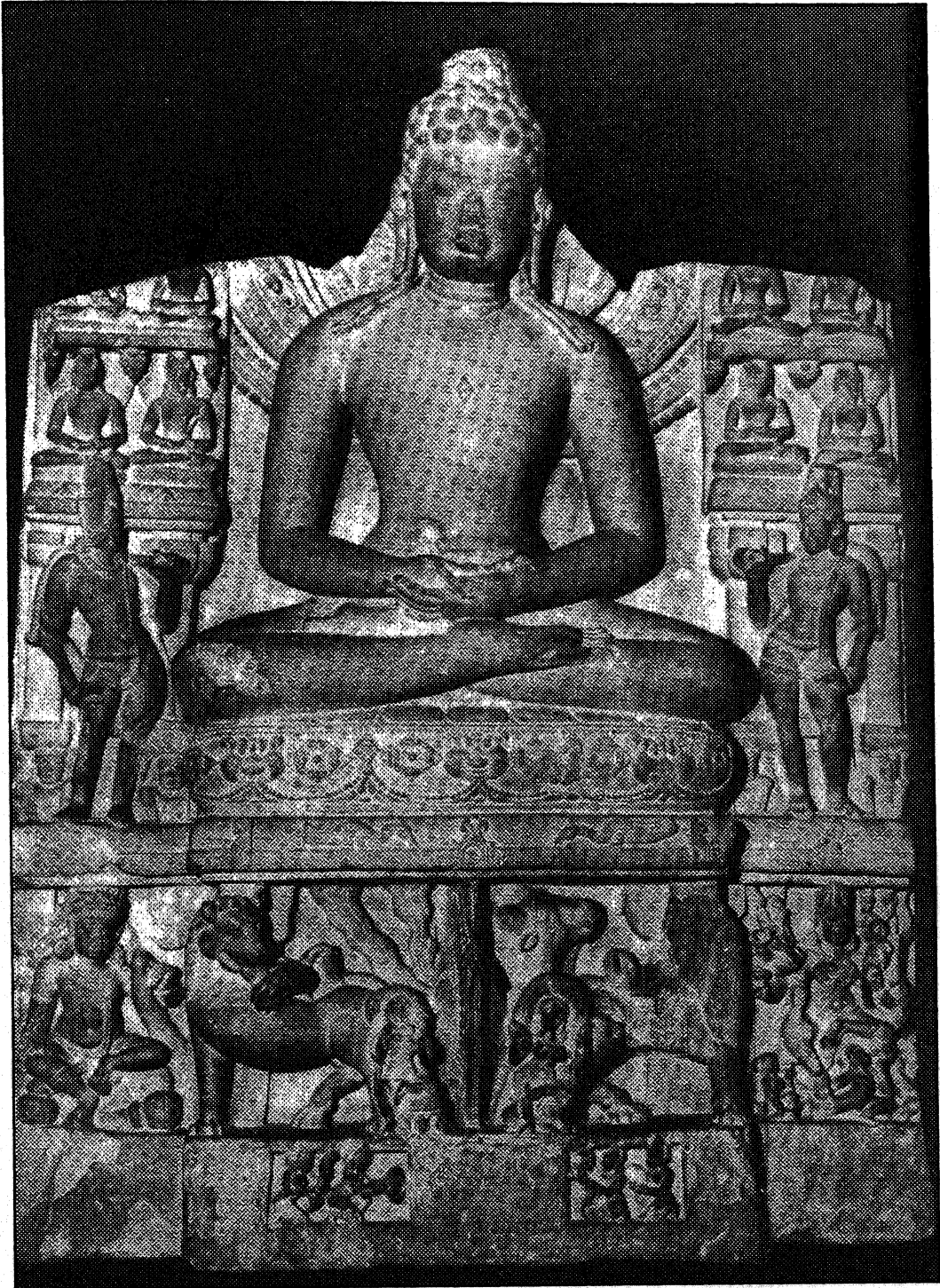
प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभनाथ, जालौन, 10वीं शती ई.

सिंहवाहिनी

नृत्य गणपति

विष्णु

वराह
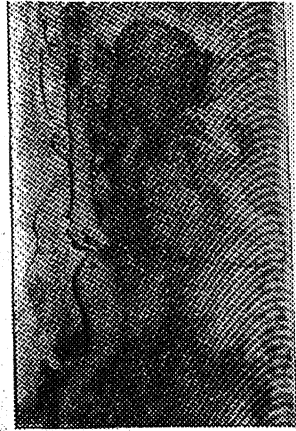
नृसिंह

सिंहवाहिनी, नृत्य गणपति, विष्णु, वराह एं नृसिंह

(10वीं शती)

मंसिल माता मंदिर, तिलक नगर, उरई से प्राप्त यह देव प्रतिमायें विशेष पुरातात्विक की हैं। पुरातत्वविदों की दृष्टि में उपेक्षित इन प्रतिमाओं में भगवान विष्णु की भव्य किन्तु खण्डित प्रतिमा भारतीय कला का सुन्दर उदाहरण है। अतिभंगी मुद्रा में विष्णु वनमाला धारण किये हैं। कटि में कटिबंध एवं मेखला, गले में ग्रैवेयक, हाथों में भुजबंध अंगद एवं केयूर धारण किये हुए हैं। नीचे चार आयुध पुरूष हैं। शिरिष चक्र एवं पार्श्व-पट्टिकाओं में अलंकृत मूर्तियां हैं।

चित्रित उत्तम चरित का एक पृष्ठ, 19वीं शती ई.

1
2
3
5
10
4
6
7
8
9
11
12
13
14
15
16
17
18
19
20
21
22
23
24
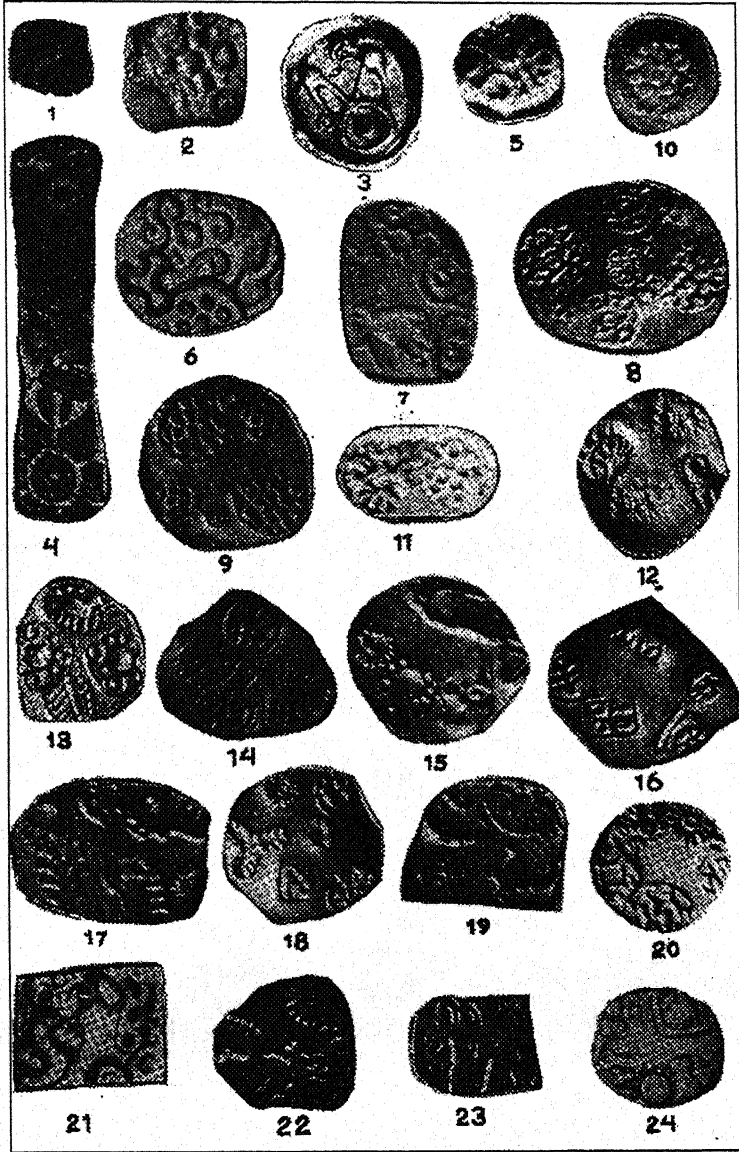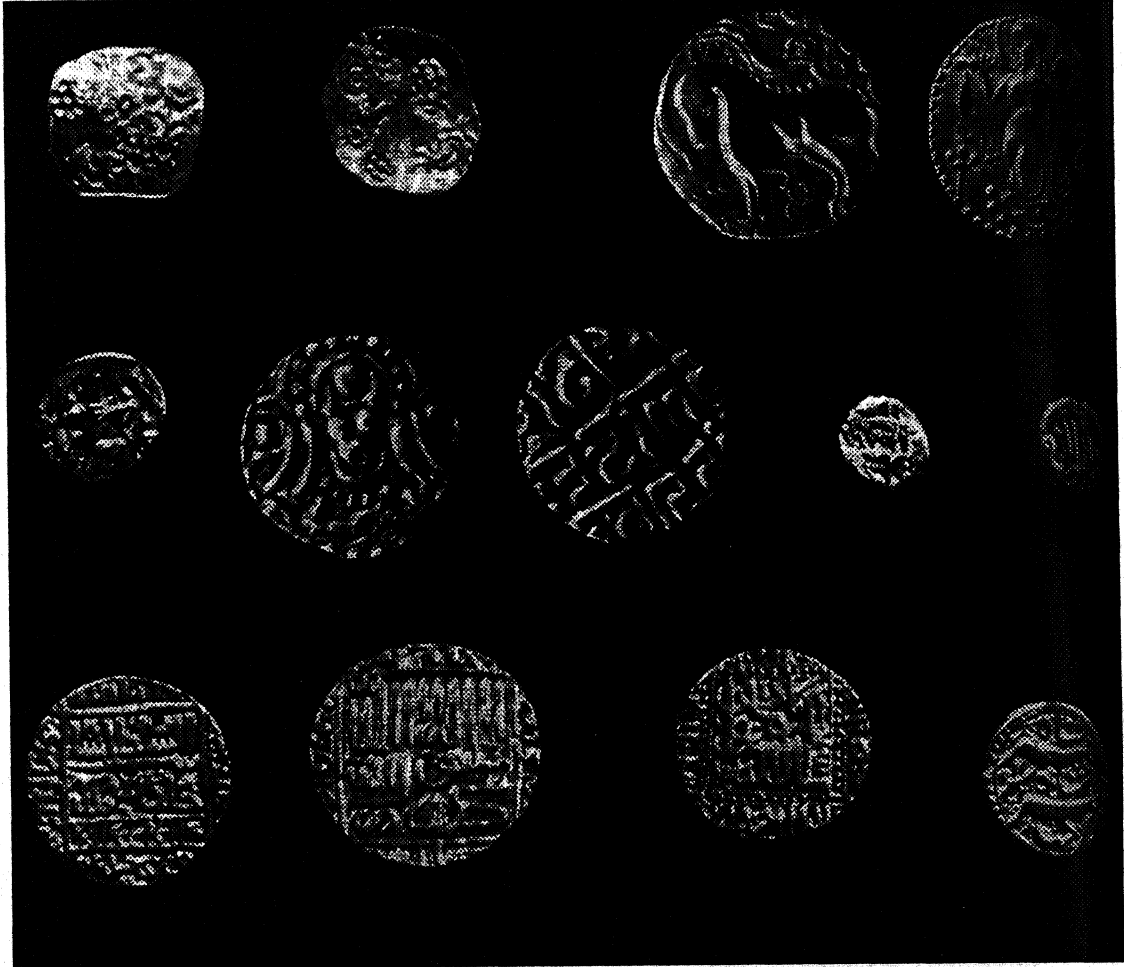
बुन्देलखण्ड क्षेत्र से प्राप्त सिक्के
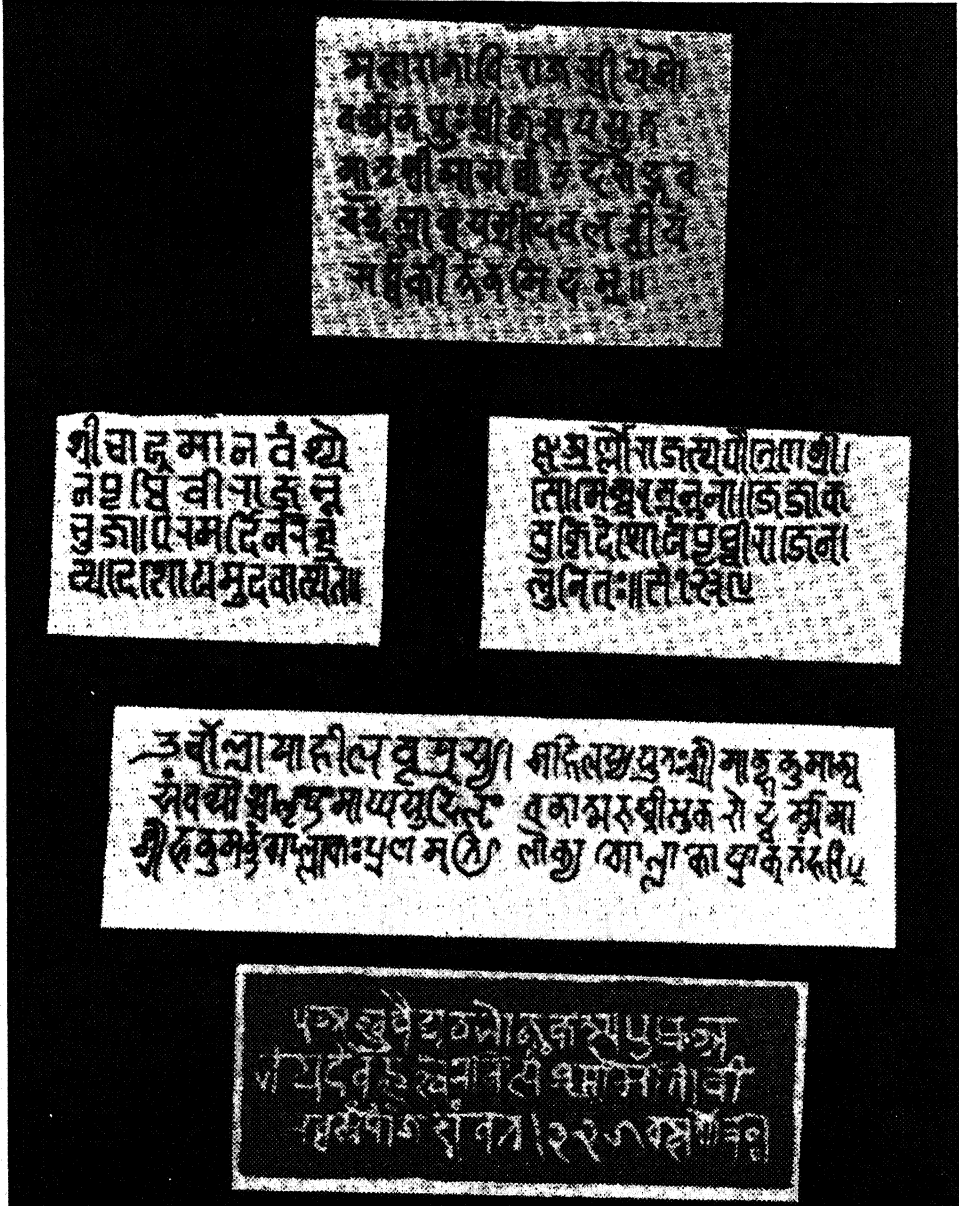
नागरी में उत्कीर्ण अभिलेख

पंचानन लिंग

गणपति